समता की आख
चरित्र की पांख

समता की आंख चरित्र की पांख

आचार्य तुलसी

आदश साहित्य सघ, चूरू (राजस्थान)

सपादिका साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

स्वर्गीय श्री चुन्नीलालजी गोगड की पुण्य स्मृति मे उनकी धमपत्नी
श्रीमती राजादेवी गोगड तथा सुपुत्र श्री भेरचन्द नारायणदास गोगड
पाली (राजस्थान) के सौजन्य से प्रकाशित

प्रकाशक कमलेश चतुर्वेदी, प्रबन्धक आदश साहित्य सघ, चूरू (राजस्थान) / मूल्य पचीस रुपये / तृतीय सशोधित सस्करण, १९९० / मुद्रक पङ्कज प्रिण्टर्स, दिल्ली

Samta kee Ankh Charitra kee Pankh *by* Acharya Tulsi
Rs 25 00

पूर्ववचन

किसी महानगर म आग लग गई। वहा दो अनाथ व्यक्ति रहते थे। एक पगु था और दूसरा अधा। आग से डरे-सहमे नागरिक बचाव के लिए इधर-उधर दौडने लगे। पगु व्यक्ति उनको दौडते हुए देख रहा था, पर वह दौडने मे असमर्थ था। आग बढ़ती बढ़ती उसके निकट आई और उसे भस्मसात कर दिया। इधर अधा व्यक्ति बचाव के लिए दौड रहा था। पर दृष्टि के अभाव म वह आग की लपटो के पास चला गया। उसकी जीवन लीला समाप्त हो गई। इस घटना का साकेतिक उल्लेख करते हुए कहा गया है—

हय नाण कियाहीण हया अन्नाणओ किया।
पासतो पगुलो दड्ढो धावमाणो य अधओ॥

आचारहीन ज्ञान पगु है और ज्ञानहीन आचार अधा है। पगु आग को देखता हुआ भी जल जाता है और अधा दौडता हुआ भी आग की चपेट म आ जाता है।

आख भी उपयोगी है और पाख (पाव) भी उपयोगी है। जब तक दोनो का सयोग नही होता है, सफलता नही मिलती। एक चक्के से रथ नही चलता, वैसे ही केवल आख या पाव के सहारे गन्तव्य तक पहुच नही हो सकती—

सजोगसिद्धीइ फल वयति न हु एगचक्केण रहो पयाइ।
अधो य पगू य वणे समिच्चा ते सपउत्ता नगर पविट्ठा॥

कुछ लोग राजा के भय से नगर छोडकर चले गए। वे किसी जगल मे जाकर रहने लगे। एक बार वहा डकैतो ने हमला किया। लोग जान बचाने के लिए भाग गए। दो अनाथ व्यक्ति वहीं रह गए। उनम एक अधा था और दूसरा पगु। डकैत लौट गए।

जगल मे लोगो द्वारा आग जलाई गई थी। हवा के योग मे उसने दावानल का रूप ले लिया। वे दोनो भयभीत हो गए। अधा व्यक्ति अपने बचाव के लिए दौडा। वह अग्नि की दिशा म दौड रहा था। उसे अग्नि की ओर जाते देख पगु

ने कहा—अरे भाई ! उधर मत जाओ। अग्नि उधर ही है। अधे ने पूछा—मैं किधर जाऊ ? पगु ने कहा—मैं चल नहीं सकता। इसलिए तुम्हे दूर तक रास्ता दिखाने मे असमर्थ हू। यदि तुम मुझे अपने कधे पर बिठा लो तो मैं तुमको अग्नि, सर्प, काटे आदि सभी बाधाओ से दूर रखते हुए सुखपूर्वक नगर मे पहुचा दूगा। अधे ने पगु का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उसने पगु को कधे पर बिठा लिया। एक के पास दृष्टि थी और दूसरे के पास गति। दोनो मिलकर कुशलता से नगर मे पहुच गए।

यह ससार एक अटवी है। इसमे क्रोध की आग जल रही है। अभिमान के नाग फुफकार रहे हैं, माया के काटे बिछे पड़े हैं। लोभ का सागर लहरा रहा है। मनुष्य इन समस्याओ से घिरा हुआ है। कुछ लोग इन या इन जसी अनेक अनेक समस्याओ को देख रहे हैं, समझ रहे हैं। पर उनमे इनसे जूझने का सामर्थ्य नही है। वे न तो इनको अपने पथ से हटा सकते हैं और न इन्हें पार ही कर सकते हैं।

कुछ लोगो के पास सामर्थ्य है। वे चल सकते हैं और बहुत कुछ कर सकते हैं। पर उनके पास दृष्टि नही है। वे समझ नही पाते कि क्या करें, कब करें और कहा से अपनी यात्रा का प्रारभ करें ? पगु और अधे की तरह ये दोनो अलग-अलग रहकर लक्ष्य की प्राप्ति में सफल नही हो सकते। सफलता के लिए दृष्टि और सामर्थ्य का योग अपेक्षित है। सीधे शब्दो मे आंख और पाव का सयोग आवश्यक है।

दर्शन हो और उसके अनुरूप आचरण न हो, यह अधूरापन है। आचरण हो और उसके पीछे कोई दर्शन न हो, यह भी अधूरापन है। कोरा दर्शन जीवन को रूपान्तरित नही कर सकता और कोरा आचरण मानदण्ड नही बन सकता। दर्शन की धरती पर उगा हुआ आचरण का पौधा अच्छी तरह से फलता फूलता है।

अणुव्रत किसी सामयिक परिस्थिति से सप्रेरित आन्दोलन या घोष मात्र नही है। इसका अपना पूरा दर्शन है। अणुव्रत के गीतो मे उस दर्शन को गुम्फित करने का प्रयत्न किया गया है। अणुव्रत की अपनी स्वतन्त्र आचारसहिता है। लोक-जीवन उस आचारसहिता में ढल यह उस दर्शन की प्रेरणा है। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि समता अणुव्रत का दर्शन है और चरित्रनिर्माण उसका रचनात्मक पहलू है।

लोग अणुव्रत दर्शन को समझें और उसकी आचार सहिता का पालन करें, इस दृष्टि से समय समय पर लिखित रूप मे हमने अपने विचार दिए। उन विचारो का सकलन 'उदबोधन' नाम से किया गया। उसकी दो आवृत्तिया पाठको तक पहुच चुकी हैं। तीसरी आवृत्ति का प्रसग उपस्थित हुआ तो उसमे कुछ सामग्री और जोड़ दी गई। उदबोधन की परिवर्धित सामग्री 'समता की आख चरित्र की पाख' इस नए नाम और नए परिवेश के साथ पाठको के हाथ मे पहुच

रही है। आकार छोटा और कथ्य बड़ा—इस लक्ष्य से तैयार की गई यह पुस्तक उन लोगों के लिए अधिक उपयोगी हो सकती है, जो व्यस्तता के कारण स्वाध्याय में कम समय लगा पाते हैं। सहज, सरल भाषा और कथात्मक शैली में लिखे गए ये छोटे छोटे गद्य किसी भी वर्ग के पाठकों के लिए बोधगम्य हो सकते हैं।

इस पुस्तक के सकलन, सपादन और सवधन में साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा का श्रम लगा है। पाठक इस पढ़कर नैतिक मूल्यों के प्रति नई आस्था का निर्माण करें, निर्मित आस्था को घनीभूत बनाएं और आचरण की दिशा में अपने कदम आगे बढाए, यही इसके स्वाध्याय की सार्थकता है।

सिरियारी
१६ दिसम्बर १९९०

आचार्य तुलसी

समता की आख·
चरित्र की पाख

जो चलता है, पहुच जाता है

धर्म और जीवन-व्यवहार किसी बिन्दु पर पहुचकर एक हो जाते है तो व्यक्ति की आध्यात्मिक चेतना का जागरण हो सकता है। किन्तु जब इन दोनो की दूरी बढती जाती है तो अध्यात्म विस्मृत हो जाता है और व्यक्ति की चेतना वहिर्मुखी हो जाती है। बहिर्मुखता की स्थिति मे कोई भी व्यक्ति ऐसे धरातल का निर्माण नही कर सकता, जिस पर धर्म की पौध लहलहा सके। धर्म पुरुषार्थ का प्रतीक है। धार्मिक व्यक्ति परमात्मा के अस्तित्व पर पूर्ण आस्था रखता हुआ भी अपने कर्तृत्व पर पूरा भरोसा रखता है। अपनी प्रत्येक क्रिया का जिम्मेवार वह स्वय को मानता है। इसके विपरीत कुछ लोग हर प्रवृत्ति के साथ भगवान को जोडते देते हैं।

इलेक्ट्रिकल इजीनियरिंग के छात्र से प्रोफेसर ने मौखिक परीक्षा मे एक प्रश्न पूछा—'स्विच दबाते ही पखा कैसे चलने लगता है?' छात्र ने उत्तर दिया—'सब भगवान की कृपा है।' इस प्रकार व्यक्त अव्यक्त किसी काम के लिए परोक्ष सत्ता की कृपा पर निर्भर रहना अध्यात्म चेतना की स्वीकृति नही हो सकती। अध्यात्म कर्म की प्रेरणा है। आध्यात्मिक व्यक्ति कभी निष्क्रिय हो ही नही सकता। बाहर की अपेक्षा भीतर वह अधिक सक्रिय रहता है। भीतरी सक्रियता उसके व्यवहार मे फलित होती है। व्यवहार जितना परिष्कृत होता है, वह उतना ही धार्मिकता का परिचायक होता है। धर्म और व्यवहार की निकटता ही अध्यात्म है। अध्यात्म-शून्य धर्म या नैतिकता वास्तव मे धर्म या नैतिकता की पहचान नही है।

अणुव्रत धर्म और व्यवहार के बीच का सेतु है। इस सेतु पर आरोहण किए बिना धर्म व्यवहारिक नही बन सकता और व्यवहार

धर्म सवलित नही हो सकता। धर्म और व्यवहार की भूमिकाए भिन्न हैं। धम की भूमिका मे व्यवहार नही आ सकता और व्यवहार की भूमिका मे धर्म नही जा सकता। अपनी अपनी भूमिकाओ मे सबद्ध रहते हुए भी ये एक-दूसरे का सहयोग कर सकते हैं। इनके सहयोग का अथ इतना ही है कि धर्म व्यवहार को परिमार्जित करता है और व्यवहार धम को अभिव्यक्त करता है। परिमार्जन और अभिव्यञ्जन का यह क्रम चेतना के जागरण की सहज सिद्ध प्रक्रिया है।

अणुव्रत जीवन की पूणता नही है। महाव्रत भी अग्रिम भूमिकाओ पर पहुचने के बाद ही जीवन को पूर्णता देते हैं। फिर भी ये पूणता की ओर ले जाने वाली सीधी राहे हैं। इन राहो पर चलने वाला पथिक कही भटकता नही। इस दृष्टि से इनका अपना मूल्य है, और पूणता के पथ पर आगे बढने के इच्छुक व्यक्तियो को इन मार्गों का आलम्बन लेना ही होता है। माग अपने आप मे अवस्थित है। उस पर एक व्यक्ति चले या एक हजार व्यक्ति चलें, कोई अन्तर नही पडता। अतर आता है चलने और न चलने वाले के जीवन मे। जो चलता है मजिल तक पहुच जाता है और जो ठहर जाता है वह पिछड जाता है। कही कही ठहराव भी आवश्यक होता है, पर जिस ठहराव मे पुन गति की सभावना नही रहती, वह चेतना को कुठित कर देता है। कुठित चेतना मे विकास के अनावृत द्वार भी बन्द हो जाते है। वहा रहती है एक स्थितिपालकता, जो न तो व्यक्ति को आत्म तोष दे सकती है और न ही अध्यात्म का अनुभव करा सकती है। ऐसी स्थिति मे अणुव्रत के सहारे जीवन की उलझनो को समाहित किया जा सकता है। अणुव्रत के द्वारा प्राप्त होने वाला समाधान प्रत्यक्षत आर्थिक समस्याओ का समाधान नही होता पर परोक्ष रूप मे उसमे व्यक्ति की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक—सभी स्थितिया प्रभावित होती हैं। इस दृष्टि से अणुव्रत का समाधान अधिक स्थायी और अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

असन्तुलन के कारण

एक ग्रामीण व्यक्ति डॉक्टर के पास गया और बोला –'चश्मा लगाने के बाद मैं पढ सकूगा ?' डॉक्टर ने उत्तर दिया—'हा, तुम चश्मा लेने के बाद फर्राटे से पढ सकोगे।' ग्रामीण व्यक्ति अपने अभिभावकों की समझदारी पर गर्व करता हुआ बोला—'मेरी शिक्षा पर एक पैसा भी खर्च नही हुआ। अजकल के लोग भी कितने मूर्ख है! अपने बच्चो की पढाई पर वे हजारो-लाखो रुपये खर्च करते है। बच्चो को स्कूल भेजने के बजाय वे उन्हें एक चश्मा ही क्यो नही दिला देते ?'

ग्रामीण की बात सुनकर डॉक्टर की हसी छूट गई। उसने तो समझा था कि उसके सामने कोई मरीज खडा है, जिसकी आखो की ज्योति कम हो गई है। पर वह तो एक निरक्षर देहाती था। जिस व्यक्ति को अक्षरो का भी ज्ञान न हो, वह चश्मा लगाकर कैसे पढ सकता है!

आज का मनुष्य ऐसी ही कुछ भूल कर रहा है। वह चाहता है तनाव से मुक्त होना और उसके लिए दौड-धूप इतनी करता है कि तनाव कम होने के स्थान पर बढता जाता है। तनाव का मूलभूत कारण है मानसिक असन्तुलन। मानसिक असन्तुलन तब होता है जब व्यक्ति एक साथ अधिक उलझनो मे उलझ जाता है। उसके पास समय कम होता है और काम अधिक होता है। कम समय मे अधिक काम करने की उसमे क्षमता नही होती, फलत वह एक काम अधूरा छोड दूसरे में लगता है। दूसरा काम पूरा किए बिना ही तीसरे मे जुड जाता है तथा एक और काम सामने आने पर उसे भी बीच मे ही छोड देता है। इस प्रकार एक भी काम पूरा नही हो पाता और व्यक्ति मानसिक दृष्टि से असन्तुलित हो जाता है।

असन्तुलन तब हो जाता है जब व्यक्ति परिवार के साथ सामञ्जस्य नही बिठा सकता। छोटी-छोटी बात को लेकर परस्पर स्वार्थो मे टकराव होता हैं। बडे और छोटे सदस्यो मे पारस्परिक सौहार्द नही रहता। सब अपनी-अपनी बात पर अडे रहते हैं। सब म अपने अह को ऊपर रखने की कशमकश चलती रहती है। सहिष्णुता का अभाव होता है, और होती है पारस्परिक विश्वास की कमी। ये सब ऐसे कारण है जो चाहे-अनचाहे व्यक्ति के सन्तुलन को समाप्त कर देते हैं। सन्तुलन टूटा कि तनाव उस पर हावी हो गया। तनाव की स्थिति मे वह कुछ भी करता है, उसका सही परिणाम बहुत कम आता है।

अभाव और अतिभाव भी असन्तुलन के मुख्य निमित्त हैं। मनुष्य का समूचा जीवन पदार्थ-सापेक्ष है। भोजन, मकान, वस्त्र आदि उसकी न्यूनतम आवश्यकताए है। शिक्षा और चिकित्सा की सुविधा भी उसे चाहिए। यह सब उपलब्ध नही होता है तब व्यक्ति का सन्तुलन गड बडा जाता है और वह गलत माग पर कदम बढा लेता है।

अतिभाव विलासिता का प्रतीक है। विलासी व्यक्ति के सोचने-समझने की अपनी सीमाए हैं। उन मीमाओ मे वह भौतिक दृष्टि से सदा भरा-भरा रहता है, पर आध्यात्मिक दरिद्रता उसे भीतर ही भीतर कचोटती है। उस भीतरी पीडा का शमन करने की कोई प्रक्रिया उसके पास नही होती, फलत वह असन्तुष्ट रहता है। असतोष असन्तुलन का एक प्रमुख कारण है। इस कारण को समाप्त करने का उपक्रम ही अणुव्रत है। अणुव्रत के आदर्शो के प्रति क्रियात्मक आस्था रखने वाला व्यक्ति तनाव से सत्रस्त इस युग मे तनाव-मुक्त, सुखी और शान्त जीवन जी सकता है। पर इसके लिए केवल चश्मा पहनने से काम नही चलेगा, परिश्रमपूवक शिक्षा प्राप्त करनी होगी। शिक्षा के मूलभत बीजो का अकुरण होने के बाद कोई भी उपकरण-सामग्री ज्ञान वृद्धि मे सहायक हो सकती है।

अणुव्रत : जीवन की मुसकान

एक भिखारी सडक पर भीख माग रहा था। अचानक वह हसने लगा। उसके निकट से गुजरने वाले एक व्यक्ति ने पूछा—'तुम हसने का रिहसल कर रहे हो या भीख माग रहे हो?' भिखारी अपनी हसी रोककर बोला -'भाई! मैं एक घण्टे से रो-रोकर भीख माग रहा था, पर आप मे से किसी ने मेरी ओर देखा ही नही। जब से हसने लगा, मेरे चारो ओर भीड इकट्ठी हो गई। आप भी तो अब ही मेरे पास पहुचे हैं। क्यो? मुझे अनुभव हो रहा है कि दुःख मे हाथ बटाने वाला कोई नही है। सुख मे अपने और पराये सभी निकट हो जाते है।'

हर मनुष्य मे यह अभीप्सा रहती है कि वह अधिक से अधिक लोगो का स्नेह, सम्मान और निकटता अर्जित करे। किन्तु यह तभी उपलब्ध हो सकती है, जब वह सुखी हो, शान्त हो और प्रसन्न हो। सुख और शान्ति की उपलब्धि के लिए मनुष्य अर्थ का सग्रह करता है, भौतिक सुख सुविधाए जुटाता है, परिवार बनाता है, और भी न जाने क्या क्या करता है। ऐसा करने से उसे सुखानुभूति होती है, पर क्षणिक। इन प्रक्रियाओ मे वह शान्ति की कल्पना करता है, किन्तु कल्पना यथार्थ का स्पर्श करने से पहले ही अन्तर्धान हो जाती है। ऐसी स्थिति मे मनुष्य विवश हो गया है ऐसी खोज करने के लिए जो उसे शाश्वत सुख की दिशा मे अग्रसर कर सके, शान्ति की कल्पना को यथार्थ का धरातल दे सके और एक जटिल समस्या का समाधान हो सके।

मेरे अभिमत मे 'अणुव्रत' वह खोज है, जो व्यक्ति की अभीप्सा को पूरा कर सकती है। अणुव्रत क्या है? अपनी वृत्तियो का शोधन, अपने आपका परिमार्जन। वृत्ति शोधन और आत्म-परिमार्जन की बात जब

शुरू हो जाती है तो अन्तर्मुखी होना ही पडता है। अन्तर्मुखता वह स्थिति हे, जहा पहुचकर सुख और शान्ति स्वय कृताथ हो जाती हैं। इसलिए अणुव्रत स्वीकार करने वाले साधक को अतर्मुखता की साधना करनी भी जरूरी है। जो मनुष्य ऐसा नही करता है, वह मन्द भाग्य है। क्योकि यह साधना मनुष्य शरीर मे ही सभव है। इस महत्त्व को नही समझने वाला व्यक्ति चन्दन की लकडी का इधन जलाकर वैडूर्य रत्न की स्थाली मे लहसुन पकाता है। अर्क वृक्ष की जड पाने के लिए सोने के हलो से पृथ्वी खोदता हे और कोद्रव धाय की सुरक्षा के लिए कपूर के पौधे काटकर बाड बनाता है।

इसी प्रकार जो व्यक्ति अपनी चेतना को मानव-शरीर मे अध्यारोपित पाकर भी अन्तर्मुखता के लिए प्रयत्नशील नही रहता है, वह इस शरीर का समुचित उपयोग नही कर पाता। क्योकि मानव-जीवन का उद्देश्य केवल जीवन यापन ही नही है। जीवन तो सभी प्राणी जीते हैं। पर जीना उन्ही का सार्थक ह जो कलात्मक जीवन जीते है और शाश्वत शान्ति को प्राप्त कर लेने का रास्ता खोज लेते है।

बन्धुओ ! आपको माग खोजने का परिश्रम करने की जरूरत नही है। एक बना-बनाया मार्ग आपके सामने है। इस पर जो जो चले हैं उन्होने अपने जीवन मे एक परिवतन पाया है। इस परिवर्तित जीवन पद्धति मे रुदन नही, मुसकान है। उस मुसकान के द्वारा अणुव्रती व्यक्ति अन्य लोगो को अपनी ओर आकृष्ट कर उन्हे भी मुसकराने का राज बता सकते हैं तथा मानव-जीवन को सार्थक बना सकते हैं।

अणुव्रत : एक प्रयोग

वर्षों तक गुरु के पावन सान्निध्य में रहकर शिष्य ने प्रशिक्षण प्राप्त किया। अब वह अपने घर जाना चाहता था। रास्ता उसके लिए अज्ञात था। उसने गुरु से अनुरोध किया—'गुरुदेव! आपको कष्ट न हो तो मेरा पथ-दर्शन करें, अन्यथा मैं कहीं भटक जाऊंगा।' गुरु ने शिष्य के हाथ में दीपक दिया और आगे हो गए। गुरुकुल के द्वार तक वे चलते रहे। उसके बाद शिष्य से कहा—'अब आगे मैं नहीं चलूंगा, तुम अपना मार्ग स्वयं खोजो। उस खोज में कहीं भटक भी जाओ तो घबराओ मत। एक दिन तुम अपनी मंजिल को पा लोगे।' शिष्य ने गुरु के चरणों में झुककर प्रणाम किया और आगे बढ़ने के लिए उद्यत हुआ, उसी समय गुरु ने फूंक देकर दीपक बुझा दिया। शिष्य विस्मित हो गया। एक क्षण रुककर वह बोला—'गुरुदेव! आप मेरे साथ यह कैसा मजाक कर रहे हैं? न आप साथ चलते हैं और न आगे का पथ-दर्शन देते हैं। अपना पथ मैं स्वयं देखूं, इसके लिए जो दीपक मेरे पास था उसे भी आपने बुझा दिया। मैं अब क्या करूंगा?'

गुरु मुसकराते हुए बोले—'शिष्य! डरो मत, मैं तुम्हें आत्म निर्भर देखना चाहता हूं। यह जो दीपक तुम्हारे पास था, तुम्हारा अपना जलाया हुआ नहीं था। तुम स्वयं पुरुषार्थ करो, स्वयं प्रकाश पाओ, स्वयं दीपक जलाओ और उसे हाथ में लेकर अपना मार्ग तय करो।'

अणुव्रत नैतिक जीवन जीने की इच्छा रखने वालों का गुरु है। वह भी मानव मानव के हाथ में आचार-संहिता का दीपक थमा रहा है। पर आगे चलकर वह कहता है कि इस दीपक को अपने भीतर से प्रज्वलित करो। भीतर का दीपक जले बिना बाहरी प्रकाश व्यक्ति को कहीं भी धोखा दे सकता है। भीतरी दीप जल गया तो कोई भी

परिस्थिति मनुष्य को अपने सकल्प से डिगा नही सकेगी। अन्यथा मनुष्य अपनी विखण्डित चेतना का बोझ ढोता हुआ अधकार की किसी भी परत के नीचे ऐसे दब जाएगा जिसमे वह पुन श्वास लेने की स्थिति मे ही न रहे।

अणुव्रत जीवन का विज्ञान है। इसका अध्ययन किए बिना सारा अध्ययन अधूरा है। अणुव्रत का विज्ञान समझ मे आ गया तो बहुत कुछ समझ मे आ गया। इसे समझने के लिए न किसी महाविद्यालय मे स्टडी करने की अपेक्षा है और न किसी लेबोरेटरी मे जाकर प्रयोग करने की जरूरत है। अणुव्रत आचार-सहिता स्वय ही प्रशिक्षक का काम करती है और उन प्रशिक्षित मूल्यो का प्रयोग करने के लिए प्रयोगशाला है व्यक्ति का जीवन। इस प्रयोगशाला मे प्रयोग की जो निष्पत्तिया होगी, वे प्रयोक्ता के लिए ही नही, अन्य लोगो के लिए भी बहुत काम की सिद्ध हो सकती है। इस दृष्टि मे अणुव्रत अपने आप मे एक विलक्षण प्रयोग है। इसके प्रयोक्ता अधिक जागरूकता से अपने प्रयोग आगे बढाते रहें, यह अपेक्षा है।

सुखी जीवन की चाबी

एक व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से बहुत सम्पन्न था, पर था कजूस। अपना और अपने परिवार का पेट काटकर उसने करोडो रुपये एकत्रित किए। उन सब रुपयो को उसने हीरो-पन्नो मे बदल लिया। सारे जवाहरात एक पेटी मे रखकर उसने ताला लगा दिया। उसे अपने बाल-बच्चो का भी भरोसा नही था। इसलिए पेटी की चाबी वह अपने सिरहाने रखकर सोने लगा। एक बार की बात है। रात्रि के समय उसके घर मे चोर घुस गए। उन्होने तिजोरी तोडी और जवाहरात की पेटी निकाली। इसी समय घर के लोग जाग गए। चोर पेटी लेकर भाग गए। लडको ने पिता को सम्बोधित कर कहा—'पिताजी ! आपके जीवन भर की इकट्ठी की गई सम्पत्ति चोर ले जा रहे है। पिता निश्चिन्तता से बोला—'पुत्रो ! तुम चिन्ता मत करो। ये चोर मूर्ख हैं। पेटी ले जा रहे हैं, पर चाबी तो मेरे पास है। बिना चाबी पेटी कैसे खोलेंगे और कैसे जवाहरात निकालेंगे ?'

आज के हमारे राजनेता भी सोचते हैं कि जब सत्ता की चाबी हमारे पास है तो हमारे चरित्र के आभूषणो की पेटी कोई चुराकर ले भी जाए तो क्या अन्तर पडेगा ? पर वे नही जानते कि पेटी का ताला टूट जाएगा तब चाबी का क्या उपयोग होगा ? जब किसी व्यक्ति के चरित्र की धज्जिया उड जाती है, तब उसके पास सत्ता की चाबिया भी कौन रहने देगा ? चरित्रहीन व्यक्ति कुर्सी की छीना झपटी मे अपने सिद्धान्तो को भी ताक पर रख देते है। उनके लिए मूल्य चरित्र का नही, सिद्धान्त का नही, कर्तव्य का नही और नीति का भी नही। नीति को वे धर्म का अग मानते है, इसलिए सत्ता हथियाने के लिए अनीति का सहारा लेकर चलते हैं।

राजनीति को श्रेष्ठता प्रदान करने के लिए लोकतन्त्र से बढकर कोई शासनतन्त्र अच्छा नही हो सकता। किन्तु आज लोकतन्त्रीय शासन-पद्धति मे जो विकृतिया आ गई है, वे किसी से अज्ञात नही हैं। एकतन्त्र में भी जो अराजकता असह्य होती है, वह जनतन्त्र मे फल-फूल रही है। इसका एकमात्र कारण यही है कि व्यक्ति चरित्रनिष्ठ नही रहा। यदि देश की जनता चरित्र का मूल्याकन करे और चरित्र-निष्ठ लोगो के हाथ मे देश की बागडोर सौंपे तो एक सीमा तक समस्या का समाधान हो सकता है। किन्तु चरित्रनिष्ठा के अभाव में समस्या समाहित होने के स्थान पर अधिक उलझती जाएगी। इस उलझन का एकमात्र समाधान है अणुव्रत।

अणुव्रत सुखी जीवन की चाबी है और मानवता की न्यूनतम मर्यादा की अवहेलना करने वाला व्यक्ति परिवार, समाज या राष्ट्र मनुष्यता के धरातल को तैयार नही कर सकता। व्यक्ति कदम रखता है, उसके नीचे से धरातल खिसक जाए तो वह आगे एक कदम भी नही बढ सकता। इसी प्रकार मानवता का धरातल ठोस न हो तो केवल कल्पना की उडानें भरकर मनुष्य सुखी जीवन कैसे जी सकता है? सुख का स्रोत कही बाहर नही, भीतर ही है, भीतर का वह स्रोत सूख जाता है तो व्यक्ति बाहर कितनी ही दौड-धूप करे, एक क्षण के लिए भी सुखानुभूति नही कर सकता। अणुव्रत आपको यही कहता है कि बाहरी भटकन को छोडकर एक बार अपने भीतर झाक लो। आत्म-ज्ञान और आत्म साक्षात्कार की एकमात्र यही प्रक्रिया है। इसके आधार पर ही व्यक्ति सुखी हो सकता है।

उच्चता का मानदण्ड

प्रसग लाडनू का है। उन दिनो हमारे सार्वजनिक कायक्रमो को लेकर काफी ऊहापोह चल रहा था। उसी सन्दर्भ मे सरावगी बन्धुओ के अनुरोध पर मैं उनके द्वारा आयोजित कायक्रम मे प्रवचन करने गया। वहा मुझे सुनने के लिए कुछ हरिजन भाई भी आए। शौचवादी लोगो ने इस पर आपत्ति की तो मैंने अपनी ओर मे टिप्पणी करते हुए कहा — "जब हम सार्वजनिक आयोजन करते है और उसमे सबको सुनने की सुविधा देते है तो कुछ लोगो के आगमन को प्रतिबन्धित कैसे कर सकते है? जो व्यक्ति इसमे मानसिक रूप से कठिनाई अनुभव करता हो, वह अपने बैठने के लिए ऐसे स्थान का चुनाव कर सकता है जहा उनका मन आश्वस्त हो। किन्तु यहा किसी को आने से नही रोका जा सकता।" मेरी बात सुनकर सब लोग शान्त हो गए और कार्यक्रम सुचारु रूप मे सम्पन्न हुआ।

इस घटना के कुछ समय बाद ही लाडनू क ठिकाने (साधु-साध्वियो के आवास-स्थान) मे हरिजनो के एक विशेष कायक्रम की घोषणा कर दी गई। प्रतिक्रियावादी व्यक्ति यह घोषणा सुनकर बिफर पडे। उन्होंने कहा— हम अपने धम स्थान मे अछूतो को नही आने देगे। वे आएगे तो हम उनका मार्ग रोक लेगे, ऐसा कर देंगे, वैसा कर देंगे ।" बात मेरे पास पहुची। मैंने व्याख्यान के समय इस सम्बन्ध मे अपना अभिमत रखते हुए कहा —"कुछ व्यक्तियो के मन मे स्पृश्य-अस्पृश्य का द्वन्द्व है। वे अपने धर्म-स्थान मे धम की बात सुनने के लिए आने वाले कुछ लोगो को रोकने का निणय ले रहे हैं। मै समझता हू कि ऐसा करने का किसी को अधिकार नही है। धर्मस्थान हर जिज्ञासु व्यक्ति के लिए खुला रहना चाहिए। मेरे इस स्पष्ट निर्देश के बाद भी कोई उन्हे

रोकेगा तो मैं कहता हू कि वह मुझे रोकेगा।"

मेरी इस स्पष्टोक्ति और दृढ निश्चय के प्रतिरोध मे कोई सामने आकर खडा नही हो सका। निश्चित समय पर कार्यक्रम हुआ। पचासो हरिजन बन्धु उसमे सम्मिलित हुए। उन्हे बैठने के लिए आगे स्थान दिया गया। इससे दो-चार व्यक्ति नाराज भी हुए, किन्तु यह तथ्य स्पष्ट हो गया कि जाति आदि के आधार पर किसी व्यक्ति को हीन या अस्पृश्य मानना मानवता के प्रति न्याय नही है। मनुष्य का उच्चता का मानदण्ड उसका आचरण है। उच्च कुलो मे उत्पन्न व्यक्ति भी यदि चरित्रहीन है तो उनकी उच्चता का क्या उपयोग - ?

अणुव्रत के मच से इस प्रकार के अभिक्रमो को हमने उठाया और अर्थहीन रूढ धारणाओ को तोडने का प्रयत्न किया। अब स्थिति यह बन गई है कि समाज मे ऐसे अनपेक्षित प्रश्नो के उपस्थित होने का प्रसग ही नही आता। भगवान महावीर ने अपने अनुभूत सत्य के आधार पर कहा था कि कोई व्यक्ति हीन या उच्च नही है। धार्मिक और नैतिक उपदेश सुनने का अधिकार मानव मात्र का है। जब तक इन आदर्शो की झलक जन-जीवन मे नहीं मिलती, मन मे एक पीडा होती है। किन्तु आज समाज इस दिशा मे आगे बढ रहा है और मानवीय मूल्यो को उचित प्रतिष्ठा दे रहा है, यह शुभ सकेत है।

प्रतिक्रिया का घेरा

घटना छापर की है । उन दिनो अणुव्रत आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ ही था। घर-घर मे इसकी चर्चा थी। जन-जन मे कुतूहल और जिज्ञासा के भाव उभर रहे थे। इसी सदर्भ मे अस्पृश्यता-निवारण की बात सामने आयी। इस काम को आगे बढाने के लिए हरिजनो के मोहल्ले मे जाकर उन्हे व्यसन मुक्त करना जरूरी था। इसके लिए मैंने एक मुनि को निर्देश दिया। आदेश का पालन करना उसका कर्तव्य था। पर मन की स्थिति बडी विचित्र हो गयी। उसने सोचा— न जाने मैंने ऐसी क्या गलती कर दी, जिसके परिणामस्वरूप मुझे यह आदेश मिला है। अन्यथा हरिजनो के मोहल्ले मे व्याख्यान कराने की आज क्या अपेक्षा हो गयी। विचारो की इस उधेडबुन मे वह सहमता हुआ हरिजनो के बीच मे गया। वहा उसने व्याख्यान दिया। मास-भक्षण, मदिरापान, जुआ खेलना, शिकार करना आदि दुर्व्यसनो के दुष्परिणामो के बारे मे उन लोगो को जानकारी मिली। विचारो ने एक मोड लिया और वे कुछ व्यसनो से मुक्त हो गए।

मुनि कार्यक्रम सम्पन्न कर वापस आया। उसके साथ लगभग चार सौ हरिजन भाई थे। वे बाहर खडे हो गए। मैं स्वय बाहर गया और उन्हे उपदेश सुनाने लगा। आगन्तुको मे से कुछ भाई चरण-स्पर्श करना चाहते थे। मैंने उनके अभिप्राय को समझा और अपनी ओर से कोई प्रतिरोध या आपत्ति न करते हुए उन्हे वैसा करने दिया। वे लोग इससे प्रभावित हुए। आज तक जिनको मन्दिरो और धर्मस्थानो मे प्रवेश ही नही मिला, आज वे एक धर्माचार्य का चरण स्पर्श कर अपनी मनुष्यता को कृतार्थ मान रहे थे।

इस घटना से मेरे सम्बन्ध मे दो प्रकार की प्रतिक्रिया हुई। मेरे

निकटस्थ श्रद्धालु श्रावकों की प्रतिक्रिया थी—जो व्यक्ति अनादिकाल से अस्पृश्य माने जाते रहे हैं, जिनका समाज में कोई मूल्य नहीं है, उन लोगों को धार्मिक व्यक्तियों के स्तर पर ले आना, सामाजिक वर्जनाओं को तोड़कर उन्हें कोई मूल्य देना कहां तक उचित है?

दूसरे प्रकार के व्यक्ति थे सार्वजनिक कार्यकर्ता। उनके मूल्यांकन का निष्कर्ष था—'कौवा चले हंस की चाल', गांधीजी के आदर्शों का अनुकरण कर उन कट्टक्तियों के माध्यम से उन्होंने मेरे विचारों और प्रवृत्तियों को जनता के सामने प्रस्तुत किया।

मैं इन दोनों प्रतिक्रियाओं के मध्य में तटस्थ भाव से अपना काम करता रहा। अस्पृश्यता-निवारण का कार्यक्रम आगे बढ़ा। दलित वर्ग में काम होता रहा। वे लोग व्यसन मुक्त और सस्कारी जीवन जीने की दिशा में कुछ आगे बढ़े और हमारे काम का उचित मूल्यांकन हुआ। उस दिन व्याख्यान देने हेतु जाने से पूर्व जिस मुनि को अपनी किसी भूल के प्रायश्चित की अनुभूति हो रही थी, उसकी प्रतिक्रिया कितनी सुखद हुई यह उसी के शब्दों से जाना जा सकता है। उसने कहा—"गुरुदेव! मैंने मन-ही-मन आपकी आशातना की, आपके निर्देश को दूसरे रूप में लिया और विवशता की अनुभूति के साथ वह कार्यक्रम सम्पन्न किया। किन्तु अब मुझे प्रतीत होता है कि आपने मुझ पर विशेष कृपा कर कृतार्थ कर दिया। आपके इस सुचिन्तित अणुव्रत मिशन के एक विशेष अभिक्रम के प्रारम्भ में मुझे उसके साथ जुड़ने का अवसर मिला -इससे अधिक मेरा क्या सौभाग्य हो सकता है! मैं अपने जीवन के अधिक-से-अधिक क्षण इस कार्य के लिए समर्पित कर सफल बनाना चाहता हूं।"

ऐसी विभिन्न प्रतिक्रियाओं और परिस्थितियों में हम अपना काम आगे बढ़ाते रहे। उस समय बहुमुखी आलोचनाओं से घिरा हुआ अणुव्रत, आज जन-जन को, आत्मालोचना का पथ दिखा रहा है और दिखाता रहेगा, ऐसा विश्वास है।

आत्मनिग्रह का पथ

बच्चा धूप मे खेल रहा था। वहा उसने अपनी प्रतिच्छाया देखी। उसने प्रतिच्छाया की चोटी पकडने का प्रयत्न किया, पर सफल नही हुआ। ज्यो ही वह चोटी की ओर बढता, चोटी और आगे खिसक जाती। उसने काफी दौड भाग की, किन्तु चोटी को नही पकड सका। इसी बीच कोई समझदार आदमी उधर से गुजरा। बालक की स्थिति से परिचित होकर वह वही खडा रह गया और बोला, 'तुम्हे इस धूप मे दौडते बच्चे की चोटी पकडनी है तो पहले अपनी चोटी पकडो। तुम्हारा काम हो जाएगा।' बच्चे ने वैसा ही किया। उसकी समस्या को समाधान मिल गया।

जो व्यक्ति दूसरो को समझाना और सुधारना चाहते हैं उन्हें समझ और सुधार का यह क्रम अपने आप से शुरू करना चाहिए। जो व्यक्ति दूसरो से अपने काम में व्यवधान नही चाहते, उन्हे अपनी ओर से भी किसी को बाधा नही पहुचानी चाहिए। यह उभयमुखी दृष्टि ही व्यक्ति को सत्य की ओर ले जा सकती है।

अपने दिल्ली-प्रवास मे शाहदरा-प्रवासियो के अनुरोध पर मैं वहा गया। रात्रिकालीन प्रवास के लिए हमे वहा के पुस्तकालय मे स्थान मिला। प्रतिक्रमण के बाद सामूहिक वदना का समय हुआ। सब संत मिलकर एक स्वर से वदना करने लगे। वदना के स्वर पुस्तकालय भवन मे प्रतिध्वनि हो गए। इसी समय भीतर से एक व्यक्ति आया और बोला—'आप यह क्या कर रहे है?' उसे बताया गया कि यहा जैन मुनियो की सामूहिक वदना हो रही है। यह सुनकर वह बोला, 'यह क्या वदना! हमे डिस्टर्ब कर रहे हैं। हमारा अध्ययन बन्द हो गया। यह पुस्तकालय है या कोई प्रार्थना सभा?'

उस भाई की मन स्थिति की सूचना पाते ही मैंने सन्तो से कहा—'आज मौन वदना करो। हमारी जिस प्रवृत्ति से किसी के काम मे बाधा पहुचती हो, वह प्रवृत्ति हमे नही करनी है। हम अपने कार्य मे दूसरो की बाधा नही चाहते, इसी प्रकार हम स्वय भी किसी के बाधक न बनें।' मेरा निर्देश मिलते ही सन्तो के स्वर उनके ध्वनि-यन्त्र मे ही सिमट गए। उस दिन की मौन वदना मे एक अतिरिक्त अनुभूति थी। क्योकि किसी की परेशानी कम करने के लिए हमने अपने एक निश्चित क्रम मे परिवर्तन किया था।

यह प्रसग कुछ लोगो को अटपटा लग सकता है, क्योकि जो व्यक्ति धम के रूढ मूल्यो से चिपककर बैठे हैं वे किसी नये परिवतन की बात न सोच सकते हैं, न सुन सकते है। फिर कर सकने की तो स्थिति ही उत्पन्न नही हो सकती। पर मुझे पूरा आत्मविश्वास है कि हम किसी भी अर्थहीन रूढ परम्परा मे परिमार्जन और परिवतन करने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। अणुव्रत आन्दोलन भी हमारे परिमार्जित दृष्टिकोण की निष्पत्ति है।

अणुव्रत के माध्यम से मैं धार्मिक और मानवीय मूल्यो मे विश्वास रखने वाले सभी चि तनशील व्यक्तियो को प्रेरणा देना चाहता हू कि वे दुराग्रह जैसी वृत्तियो से उपरत होकर आत्म-निग्रह का रास्ता अपनाए आत्म निग्रह या आत्मानुशासन के द्वारा ही व्यक्ति प्रतिच्छाया की चोटी पकडकर अपनी समस्या का समाधान कर सकता है।

अणुव्रत : एक सार्वजनिक मच

अपनी दक्षिण भारत की यात्रा के मध्य मैं गुजरात गया। अणुव्रत मिशन के माध्यम से मैंने लोक-जीवन मे प्रवेश किया। लोक-चेतना, ऊर्ध्वारोहण करने के लिए मैंने मानवीय मूल्यो की पुन प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया और एक सीमा तक उसमे सफल भी हुआ। मेरी सफलता का एकमात्र कारण था व्यापक दृष्टिकोण। मानव जाति के व्यापक हितो का दृष्टिकोण जब निर्मित हो जाता है तब जाति, रग, भाषा और सम्प्रदाय की भावना अपने आप गौण हो जाती है। मैं अपनी प्रवचन-सभाओ मे ऐसे प्रयोग करता रहता हू जिससे कट्टरपथी विचारको को भी मुक्तभाव से सोचने का अवसर मिलता है।

गुजरात के किसी शहर मे मैं एक दिन रुका। वहा सावजनिक प्रवचन का आयोजन था। इसके लिए पूरे शहर मे माइक द्वारा घोषणा कर दी गयी। सूचना पाकर काफी लोग एकत्रित हुए। उनमे कुछ दलित वर्ग के भाई भी थे। वे जिज्ञासु भाव से आए और श्रोताओ के लिए बिछी हुई दरियो पर बठ गए।

मध्याह्न का समय था। मैंने एक मुनि को कार्यक्रम प्रारम्भ करने का निर्देश दिया। कायक्रम शुरू हुआ और उसके साथ ही सभा मे हलचल मच गयी। मैं भीतर विश्राम कर रहा था। पता चलते ही बाहर गया और वहा की स्थिति का अध्ययन कर स्तब्ध रह गया।

बात इस प्रकार बनी—उस आयोजन की व्यवस्था करने वाले भाइयो ने श्रोताओ के बैठने हेतु मदिर की दरिया लाकर बिछा दी। आगन्तुको मे जो हरिजन थे, उनको उन दरियो पर बैठे देखकर व्यवस्थापक उत्तेजित हो गए और सभा मे हलचल हो गयी। मैंने उन लोगो को सम्बोधित कर कहा—'भाइयो! आपने ये दरिया किसलिए

बिछवाई है ? आगन्तुको के लिए ही तो ? क्या ये आगन्तुक नही हैं ? क्या आपने शहर मे कराई गयी घोषणा मे इनको आने के लिए मना किया था ? आपने स्वय इनको आमन्त्रित किया और इस प्रकार का व्यवहार कर क्या इन्हे अपमानित नही कर रहे हैं ?'

मेरे द्वारा उठाए गए इन प्रश्नो को उत्तरित करने के लिए उनके पास कोई दलील नही थी। मैंने फिर पूछा —'आपके यहा पचायत है क्या ?' उन्होने अब इस प्रश्न पर अपनी सहमति व्यक्त की। मेरा अगला प्रश्न था—'उसमे किसी जाति विशेष के व्यक्ति हैं या सभी वर्गों के हैं ? यदि सब वर्गों के व्यक्ति पचायत मे हैं और वे एक साथ उठते-बैठते हैं तब इन लोगो ने क्या गुनाह कर दिया ? आपके बच्चे स्कूल मे हरिजन बच्चो के साथ बैठकर पढ सकते हैं, ट्रेन मे आप एक सीट पर बैठकर यात्रा कर सकते हैं किन्तु धर्मस्थान मे एक दरी पर नही बैठ सकते और वह भी धर्मगुरुओ की सभा मे। यह न धर्म के प्रति न्याय है, न इनके प्रति न्याय है और न हमारे प्रति। यह इनका नही, मेरा अपमान है, मेरा तिरस्कार है। यदि यहा ऐसी स्थिति बनती है तो मैं प्रवचन नही करूगा।'

मेरे कथन का उन पर असर हुआ। उन्हे अपनी भूल का अनुभव हुआ और बिना किसी प्रतिवाद के सभी आगन्तुक लोगो ने प्रवचन सुना। ऐसी कोई भी घटना अणुव्रत दर्शन की मौलिकता और व्यापकता को प्रमाणित करती है। यह दर्शन हमे भगवान महावीर से मिला है। इसको हम जितना प्रायोगिक रूप देंगे, जैन धर्म और मानव धर्म के मूल्यो की उतनी ही वैज्ञानिक प्रतिष्ठा होगी। अणुव्रती कार्यकर्ताओ को इस दिशा मे विशेष प्रयत्न करने की अपेक्षा है।

धर्म • एक अखण्ड सत्य

घटना उन दिनो की है जब मैं बिहार की यात्रा पर था। मेरी यात्रा के विश्वजनीन उद्देश्यो से प्रभावित होकर लगभग सभी धर्म-सम्प्रदायो के प्रमुख और अनुयायी व्यक्ति सम्पर्क मे आते रहते थे। एक दिन एक बहुत बडे पादरी प्रवचन सुनने के लिए आए। प्रवचन सुनकर उन्होने प्रशसात्मक लहजे मे कहा—'आचार्यजी! आप विषय का प्रतिपादन बहुत अच्छा करते हैं और काम की बाते भी बहुत बताते हैं, फिर भी मैं एक बात पूछना चाहता हू कि आपने कभी बाइबिल पढी या नही?' मेरे सकारात्मक उत्तर से उत्साहित होकर वे बोले—'बाइबिल के प्रति जनता मे गहरा आकर्षण है क्योकि उसमे महाप्रभु ईसू ने ऐसी विलक्षण बातें बतायी हैं, जिनकी कोई तुलना नही है।' अपने कथन को प्रमाणित करते हुए उन्होंने कहा—'महाप्रभु क्राइस्ट का उपदेश है कि तुम अपने दोस्तो के साथ दोस्ती करते हो, यह अच्छी बात है पर उससे भी आगे की बात यह है कि तुम अपने दुश्मनो के साथ भी दोस्ती करो।'

यह सुनकर मैं बोला—'ईसू क्राइस्ट ने यह बहुत अच्छी बात बताई है।' मेरी इस टिप्पणी पर टिप्पणी करते हुए उन्होने कहा—'आचार्यजी! यह बात अच्छी ही नही, इतनी अच्छी है कि किसी दूसरे दर्शन मे मिलती ही नही है।'

पादरी महोदय की इस अहं चेतना को झकझोरने की दृष्टि से मैने कहा—'आपका कथन ठीक है, पर भगवान महावीर ने इससे भी ऊची और महत्त्वपूर्ण बात कही है। उनके अभिमत से शत्रु के साथ मित्रता का व्यवहार करना तो मानवता की पहली भूमिका है। इससे आगे की बात यह है कि मनुष्य किसी भी प्राणी को अपना दुश्मन समझे ही

नही। प्राणी मात्र के प्रति मैत्री की मगल भावना का सिद्धान्त कितना विलक्षण है! ऐसे और भी अनेक तथ्य तीर्थंकरो, आप्त पुरुषो, पैगम्बरो, अवतारो, पोप-पादरियो, धर्माचार्यों और महापुरुषो ने विश्लेपित किए हैं, किन्तु सही रूप मे इनका अनुगमन करने वाले कितने लोग हैं ?'

अब तो पादरी महोदय के काटो तो खून नही। उन्हे इस बात का स्पष्ट अनुभव हो गया कि प्रत्येक धर्म मे बहुत ऊची-ऊची बातें बताई गयी है। तत्त्वत धर्म एक व्यापक और अखण्ड सत्य है। इसके मौलिक स्वरूप को विभाजित किया ही नही जा सकता। सम्प्रदाय की सीमाए सुविधा और व्यवस्था के लिए है इनको व्यवस्था मे अधिक महत्त्व देने वाले व्यक्ति धम के सही स्वरूप का बोध नही कर सकते।

अणुव्रत की आचार-सहिता ऐसे ही धार्मिक मूल्यो का प्रतिनिधित्व करती है, जो हर व्यक्ति के लिए अनुमोदनीय और आचरणीय हैं। यही कारण है कि किसी भी सम्प्रदाय मे आस्था रखने वाला व्यक्ति अणुव्रत के नियम स्वीकार करने मे किसी प्रकार की झिझक का अनुभव नही करता। अणुव्रत सबके लिए है, इसलिए सबके जीवन मे अवतरित होकर ही यह अपनी असाम्प्रदायिकता को प्रमाणित कर सकता है।

—

प्रामाणिक जीवन का प्रभाव

बम्बई-प्रवास के समय न्यायाधीश श्री चादमल वोहरा उपासना मे बैठे थे। अग्रिम यात्रा के सम्बन्ध मे जिज्ञासा करते हुए उन्होने पूछा—'आप आगे कहा पधारेंगे ?' मैंने कहा, 'पूना, सतारा जा रहे है।' वोहराजी बोले—'मै पहले सतारा रह चुका हू। वहा के लोगो से मेरा अच्छा सम्पर्क है। मैं उन्हे पत्री से सूचना कर दूगा ताकि वे लोग आपके प्रवचनो से लाभ उठा सकें।' उनके कथन की मेरे मन पर कोई विशेष प्रतिक्रिया नही हुई।

जिस समय मैं सतारा पहुचा, अगवानी के लिए उपस्थित लोगो की भीड देखकर चकित रह गया। रात्रिकालीन कार्यक्रम मे लगभग दो हजार की उपस्थिति थी। मैंने उन लोगो से पूछा कि आप यहा कैसे पहुच गए ? उन्होने उत्तर दिया—'वोहराजी के पत्र से हमे आपके आगमन की सूचना मिल गई।' यह सब देख-सुनकर मेरे मन पर प्रतिक्रिया हुई कि सतारा की जनता मे चादमलजी का जो प्रभाव है वह उनके बाह्य व्यक्तित्व का नही, आन्तरिक साधना का है प्रामाणिक जीवन का है। अन्यथा एक पत्र की सूचना से लोगो पर इतना प्रभाव कैसे हो सकता था ?

रात्रिकालीन प्रवचन मे मैंने अणुव्रत के सदर्भ मे धर्म की व्याख्या करते हुए कहा—'धर्म का सम्बन्ध जीवन की पवित्रता से है, मानवीय मूल्यो से है और चेतना के जागरण से है। धर्म किसी धर्मग्रन्थ या धर्म-स्थान मे बन्दी नही हो सकता। उसका अनुबन्ध अन्तश्चेतना की क्रान्ति से है। जीवन के समूल परिवर्तन से है। कोई व्यक्ति धार्मिक कहला-कर मनुष्य को धोखा देता है, रिश्वत लेता है, छुआछूत की भावना

रखता है, धर्म के नाम पर अंधविश्वासों को पोषण देता है, और भी न जाने क्या क्या कर लेता है। मेरे अभिमत से ऐसा व्यक्ति न धार्मिक हो सकता है, न नैतिक हो सकता है और न सामाजिक ही हो सकता है।'

मेरी यह बात सुनकर सभा में पीछे बैठा हुआ एक युवक उठकर आगे आया। लोगों की प्रश्नायित आंखें उस पर टिक गयीं, वह किसी भी प्रतिक्रिया से प्रभावित हुए बिना सीधा मेरे निकट पहुंचकर बोला—'आचार्यजी! एक बात मेरी भी सुनिए। मैं विचारों से कम्युनिस्ट हूं। धर्म-कर्म में मेरा कोई विश्वास नहीं है। साधु-सन्तों के प्रति मेरे मन में किंचित् भी आस्थाभाव नहीं है। आज तक कभी मैंने उनके चरणों में सिर नहीं झुकाया। धर्म को मैं ढकोसला समझता था। आज आपने जिस प्रकार धर्म को परिभाषित किया, मैं अतिभूत हो गया। इस व्याख्या से मैं अपने आपको धार्मिक मानता हूं और आज पहली बार आपके प्रति श्रद्धा से विनत होता हूं।

इस घटना के बाद मेरी यह धारणा और अधिक पुष्ट हो गयी कि धर्म के सम्बन्ध में जमी हुई भ्रान्त धारणाओं के निरसन हेतु अणुव्रत एक अमोघ प्रक्रिया है। अणुव्रत विचार-दर्शन प्रबुद्ध वर्ग को मानवीय मूल्यों के प्रति आकृष्ट कर सकता है और लोक-जीवन की दिशा बदल सकता है।

धार्मिक कौन ?

धम के मम्बन्ध मे अनेक लोगो की अनेक प्रकार की धारणाए है। हर व्यक्ति अपनी धारणा को सही मानकर उसका प्रसार करता है और दूसरे की धारणा का निरसन करता है। हर धारणा के पीछे कोई न कोई आधार होता है। कुछ आधार तर्क से अबाधित होते है, किन्तु कुछ आधार ऐसे भी होते है, जो तर्क के सामने खडे ही नही रह सकते। फिर भी व्यक्ति अपनी धारणा को पुष्ट करता है और उसे प्रमाणित करने का प्रयास करता है।

कुछ मित्रो की एक सगोष्ठी मे प्रसग चल पडा कि कौन कितना धार्मिक है ? धम के पक्षधर व्यक्तियो ने अपनी धार्मिक आस्था को अभिव्यक्ति देते हुए अनेक प्रकार से धर्म को परिभाषित किया। कुछ व्यक्तियो ने धम को रूढ परपरा और अन्धविश्वास से अधिक कुछ न बताते हुए उसकी मखौल उडाई। गोष्ठी मे एक व्यक्ति जो अब तक मौन बैठा था, खडा हुआ और बोला—'मुझे भी अपनी बात रखने का अवसर दिया जाए।' दूसरे व्यक्ति चुप हो गए तब उसने बोलना प्रारम्भ किया 'मित्रो ! मै एक धार्मिक कुल मे जन्मा हू, इसलिए मेरे धार्मिक सस्कार बहुत गहरे है। यही कारण है कि मैं किसी भी परिस्थिति मे धम को नही छोड सकता। वैसे मैं भी आपकी तरह ससारी प्राणी हू, व्यवसाय करता हू, परिवार का पोषण करता हू, इसलिए समय पर झूठ बोलना पडता है, करो की चोरी तो साधारण बात है, बडी चोरी भी कभी कभार हो जाती है। किसी को धोखा देना पडता है, अपने बाल बच्चो के लिए सग्रह भी करना ही होता है और आदत की लाचारीवश सुरा सुन्दरी के आकषण मे फस जाता हू, किन्तु सब

कुछ करने के बावजूद मैंने अपना धम कभी नही छोडा '

सभा मे विस्मय-मिश्रित हसी के मध्य एक युवक खडा हुआ और बोला—'इतना सब कुछ कर लेने के बावजूद आपने धम नही छोडा, ऐसा विलक्षण धर्म कौन-सा है आपका ?'

धार्मिकता का दम्भ भरने वाला वह व्यक्ति गर्वोनत होकर बोला—'मैंने सब कुछ किया, पर आज तक किसी अछूत के हाथ का पानी नही पीया। मैंने शराब भी पी ली, पर मदिर जाना नही छोडा। मैं चोरी करने के लिए गया तो सतो का आशीर्वाद लेकर गया। तुम लोगो मे क्या धार्मिकता है ? अछूनो के साथ बैठते हो, जाति परपरा को तोडकर अपने बच्चो की शादी करते हो और कभी भगवान का चरणामृत ही नही लेते।'

धर्म और धार्मिकता की यह नयी व्याख्या सुनकर वहा उपस्थित लोगो ने दातो तले अगुली दबा ली। ऐसे धार्मिक होने से तो अधार्मिक रहना ही अच्छा है—इस निर्णय के साथ उन्होने गोष्ठी विसर्जित की। ऐसे व्यक्ति धर्म के सदभ मे जब अणुव्रत की बात सुनते हे और जाति, वण, रग, लिंग, प्रान्त, भाषा आदि सीमाओ मे मुक्त मानव धम का उद्घोष सुनते हैं तो भाव-विभोर हो उठते है। रूढ और जीण शीण धम, जो मानवीय मूल्यो का भी सुरक्षा नही दे सकता, मानव समाज का त्राण कैसे कर सकता हे ? अणुव्रत के मच से धमक्राति की बात उठी है जो धर्म की उपयोगिता और वैज्ञानिकता को प्रमाणित करने के लिए एक नया आयाम उद्घाटित कर रही है।

उपासना और आचरण

कुछ समय पूर्व एक बहन प्रवचन सुनने आयी। प्रवचन सुनकर वह मेरे पास पहुची और अपने मन की व्यथा खोलती हुई बोली—'गुरुदेव! वर्षो से तडपते-तडपते आज आपके वचन सुनने को मिले है। कितनी अभागिन हू मैं! सौभाग्य से मुझे जन शासन मिला, ऐसा धर्म सघ मिला और ऐसे गुरु मिले, पर मैं किसी प्रकार का लाभ नही उठा सकती। ससार मे मुझे कोई कमी नही है, सारी सुख सुविधाए उपलब्ध है, फिर भी धर्म के क्षेत्र मे मैं एकदम कोरी हू। कभी-कभी तो मैं अपनी स्थिति से बेचैन हो जाती हू पर अब तक भी मेरी समस्या का समाधान नही हुआ है। आज मैं बहुत बडी आशा लेकर आयी हू। आप मुझे मार्ग सुझाए और मेरी मुसीबत हल करें।'

बहन के शब्दो मे पीडा थी और उसका प्रतिबिम्ब उसके चेहरे पर भी पड रहा था। मैंने उसको आश्वस्त करते हुए पूछा—'बहन! तुम इतनी जिज्ञासु हो, श्रद्धालु और इतनी तत्पर हो, फिर तुम्हारी धार्मिक गतिविधियो मे कौन सी बाधा आ जाती है, जिससे तुम इतनी व्यथित हो रही हो?'

मेरी बात सुनकर बहन की आखे गीली हो गयी। वह बोली—'गुरुदेव! मेरे सामने सबसे बडी बाधा है समय की। सयुक्त परिवार मे रहती हू, परिवार बडा है, बच्चे छोटे हैं, इसलिए न सामायिक कर पाती हू, न माला फेर पाती हू न स्वाध्याय कर पाती हू और तपस्या करने की शक्ति भी मुझमे नही है। अब आप ही बताइए, मैं क्या करू?'

मैंने उस बहन की द्विविधा को समझा और उसे तोडने का प्रयास

करते हुए पूछा—'बहन ! तुम कभी गुस्सा तो नही करती ?' उसने नकारात्मक उत्तर देते हुए कहा—'सामान्यत ऐसा कोई प्रसग ही उपस्थित नही होता। कभी कभार कोई स्थिति बनती है तो मैं सहन कर लेती हू।' मेरे अगले प्रश्न थे—'कभी बच्चो को पीटती तो नही ? बडो के सम्मान मे कमी तो नही करती ? झूठ तो नही बोलती ? किसी की चुगली तो नही करती ? अपने और दूसरे बच्चो मे भेदभाव तो नही रखती ? दूसरे की वस्तु चोर वृत्ति से तो नही उठा लेती ? समाचार के नियमो का अतिक्रमण तो नही करती ?'

मेरे प्रश्नो को उत्तरित करती हुई वह बहन बोली—'गुरुदेव ! वैसे मेरे परिवार का वातावरण बहुत अच्छा है। सबमे परस्पर सौहार्द है। झूठ, चोरी जैसी कोई गलत आदत मुझमे नही है। मेरे जीवन मे कमी है तो एक ही है कि मैं अपनी इच्छानुसार धर्माराधना नही कर सकती।'

बहन की इस भ्रान्त धारणा का निवारण करने के लिए मैंने उसको धर्म की सही परिभाषा समझायी। उपासना और आचरण धर्म के इस उभयात्मक स्वरूप का बोध देकर उसे बताया कि उपासना भी आवश्यक होती है किन्तु आचरण उन्नत हो, उस स्थिति मे उपासना पक्ष दुर्बल होने पर भी व्यक्ति अधार्मिक नही हो जाता। मैंने देखा, यह बात सुनकर बहन के मुख पर शान्ति की झलक आ गयी।

एक बहन क्या, अनेक भाई-बहने ऐसी भ्रान्तियो से घिरे हुए हैं। अणुव्रत उन सबकी भ्रान्तियो को तोडने का एक उपक्रम है। यह व्यक्ति के जीवन को ऊचा उठाने वाले, वृत्तियो को पवित्र बनाने वाले और निरपेक्ष शान्ति का अनुभव कराने वाले धर्म का पथ दिखाता है।

आनन्द का सागर

चीन की जेल के एक कक्ष मे तीन बन्दी एक साथ रहते थे। एक दिन कोई उच्चाधिकारी जेल का निरीक्षण करने आया। जब वह उन तीन व्यक्तियों से मिला तो उसने पूछा—'तुम लोग जेल मे क्यो आये ?'

पहला बन्दी बोला—'मेरे पास एक घडी थी। वह हमेशा धीरे चलती थी। समय की सही सूचना न मिलने के कारण मैं कार्यालय मे देरी से पहुचता था। मुझ बन्दी बनाते समय मुझ पर यह आरोप था कि मैं काम से कतराता हू, आलस्य करता हू। इसलिए ऑफिस मे समय पर नही पहुचता।'

दूसरा बन्दी बोला—'महोदय! मेरी घडी फास्ट चलती थी। इस लिए मैं समय से बहुत पहले कार्यालय पहुच जाता। मुझे इसी अपराध मे बन्दी बनाया गया। मेरा अपराध था कि मैं समय का मूल्याकन नही करता।'

तीसरे बन्दी ने आत्म-निवेदन करते हुए कहा—'सर! मेरी घडी ठीक समय देती थी। मैं ठीक समय पर कार्यालय पहुचता। मेरी नियमितता पर टिप्पणी करते हुए मुझ पर आरोप लगाया गया कि तुम्हारे पास घडी बाहर की है। तुमने व्यक्तिगत सुविधा के लिए चीन के पैसे का दुरुपयोग किया है। चीन मे बनी हुई घडी को छोड बाहर की घडी खरीदी है। अत तुम्हें जेल जाना होगा।'

तीनो व्यक्तियो की परिस्थितिया भिन्न थी। पर आरोप लगाने वालो ने सबको एक ही श्रेणी मे खडा कर जेल भिजवा दिया। व्यक्ति सोच सकता है कि कानून की अपनी सीमाए है, पर जो लोग कानून को अपने हाथ मे लेकर उचित को अनुचित और अनुचित को उचित प्रमाणित कर देते है, उनके सामने हमारी प्रामाणिकता का क्या मूल्य

है ? प्रतिकूल परिस्थिति मे यह चितन अस्वाभाविक नही है। किन्तु जो व्यक्ति परिस्थिति मे भी अधिक मूल्य चरित्र को देते हैं, वे कभी ऐसा नही सोच सकते।

अणुव्रत स्वीकार करने वाले व्यक्तियो के सामने भी परिस्थितिजन्य विवशता उत्पन्न होती है। कुछ व्यक्ति घुटने टेक देते हैं और कुछ व्यक्ति परिस्थितियो को परास्त कर आगे बढ जाते हैं। उन लोगो को सघर्षहीन जीवन सपाट तलहटी सा प्रतीत होता है। इसलिए व अपने सिद्धातो की सुरक्षा के लिए हर सम्भव सघर्ष को मोल लेने के लिए उद्यत रहते है।

अणुव्रती व्यक्ति अपने स्वीकृत व्रतो का निष्ठापूर्वक पालन कर जितने प्रमुदित होते हैं, उनकी उपेक्षा नही कर सकते। क्योकि व्रता की उपेक्षा कर व पदार्थ सापेक्ष सुख पा सकते हैं किन्तु निरपेक्ष सुख की अनुभूति वहा क्षीण हो जाती है। अणुव्रत वस्तु-निरपेक्ष आनन्द की दिशा मे पहला पदन्यास है। जितने कदम आगे बढेंगे, आनन्द की मात्रा भी बढती रहेगी। एक दिन वह भी आयेगा जब अपनी सब सीमाओ को तोडकर आनन्द का सागर लहरा उठेगा और व्यक्ति उसमे आकण्ठ निमग्न होकर आनन्दमय बन जाएगा।

अनुपमपाथेय

मनुष्य का यात्रा पथ कितना लम्बा है ? और कितना छोटा है ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए मनुष्य की मन स्थिति का अध्ययन करना जरूरी है। मनुष्य विश्वास और स देह—इन दो प्रकार की स्थितियो में गुजरता है। विश्वास का अपना मूल्य है, पर हर स्थिति मे वह उपयोगी नही होता। काल का विश्वास नही होना चाहिए। जो व्यक्ति काल का विश्वास कर धर्माचरण मे प्रमाद करता है वह कभी भी धोखा खा सकता है। काल के प्रति अविश्वस्त रहने पर भी अपने प्रति, सत्य के प्रति और अपनी साधना के प्रति गहरा विश्वास होना चाहिए।

विश्वास का विरोधी शब्द है सन्देह। सन्देह की परिणति जिज्ञासा के रूप मे हो तो वह विकास मे साधक है। किन्तु सशयशीलता गति मे बाधा है। 'वितिगिच्छा समावन्नेण चित्तेण णो लहइ समाहिं'—सदिग्ध चित्त से समाधि की प्राप्ति नही होती। जो व्यक्ति जितना अधिक सशयशील रहता है, वह अपने मन की शान्ति और समाधि से उतना ही दूर होता जाता है।

एक भारतीय व्यवसायी विदेश पहुचा। वहा उसने अमेरिका मे व्यवसाय शुरू किया। एक दिन वह अपने ऑफिस मे बैठा था। उसके कुछ मित्र उससे मिलने आए। वह मित्रो मे बात करता और हर पाच मिनट के बाद भारत मे फोन करता। एक मित्र ने दूसरे मित्र से पूछा—'फोन करने का भी नशा होता है या इनके पास इतना अधिक काम है कि हर पाच मिनट के बाद इनको इतने निर्देश देने होते है ?' आपसी फुसफुसाहट के बीच एक मित्र ने उसी को सबोधित कर पूछ लिया—'भाई तुम फोन पर किससे बात कर रहे हो ?' वह बोला—

'अपनी पत्नी से।' यह सुनकर एक विदेशी मित्र ने कहा—'भारतीय लोगो के पारिवारिक सम्बन्ध बहुत मधुर होते हैं। तभी तो ये इतनी व्यस्तता मे भी अपनी पत्नी को विस्मृत नही कर पा रहे हैं।'

एक अन्य मित्र ने चुटकी लेते हुए जिज्ञासा की—'क्या वास्तव मे तुम अपनी पत्नी को इतना प्यार करते हो कि उसे एक क्षण के लिए भी भुला नही पाते ?' अपने मित्रो की जिज्ञासा, कुतूहल और प्रश्न का उत्तर देते हुए उसने कहा—मै अपने घर पर बार-बार फोन करके यह जानना चाहता हू कि मेरी पत्नी मुझे छोडकर कही चली तो नही गयी है ?'

यह एक छोटी-सी घटना इस तथ्य का उद्घाटन करती है कि स देह की स्थिति व्यक्ति को सुख और शान्ति से जीने नही दे सकती। यदि मनुष्य को शान्ति काम्य है और उसके मन मे अपनी मजिल तक पहुच पाने की तडप है तो उसे स देह की दरारो को भरकर विश्वास का सेतुबध बाधना ही होगा। विश्वास के अभाव मे चलते समय पाव लडखडा जाएगे और जीवन यात्रा मे अवरोध उपस्थित हो जाएगा।

अणुव्रत आपकी जीवन-यात्रा मे अनुपम पाथेय है, आपके चैतन्य जागरण का आधार है। उसके प्रति आप घनीभूत विश्वास उत्पन्न करके ही पथ-गत बाधाओ से जूझ सकते है और अपने गन्तव्य तक पहुच सकते हैं।

समता की पौध

जीवन का उपवन आनन्द के फलो और शान्ति के फूलो से भरा-भरा रहे, यह हर चिंतनशील व्यक्ति को काम्य है। फल-फूल समता की पौध पर ही आ सकते हैं। व्यक्ति के जीवन मे समता है, समरसता है, प्रत्येक परिस्थिति मे सतुलित रहने की क्षमता है तो वह किसी भी क्षण आनन्द की अनुभूति कर सकता है। समता के अभाव मे सुख दु ख बन जाता है और कडी से कडी साधना से भी कोई ईप्सित परिणाम नही आ सकता। समता की पृष्ठभूमि पर घटित होने वाली हर प्रवृत्ति व्यक्ति को ऐकान्तिक और आत्यतिक आनन्द की अनुभूति करा सकती है।

चीन का एक प्रसग है। वहा के राजा क्वाग ने अपने प्रधानमत्री सुनशूआओ को एक आरोप मे प्रधानमत्री पद से हटा दिया। कुछ समय बाद वह आरोप निराधार प्रमाणित हुआ। राजा ने उसको पुन प्रधानमत्री का दायित्व सौप दिया। कालान्तर मे कोई घटना घटी और सुनशूआओ कोउसके पद से हटा दिया गया। इस प्रकार पद-त्याग और पद-प्रदान की शृखला काफी लम्बी होती चली गयी। प्रधानमत्री के मित्रो और परिचितो मे फुसफुसाहट होने लगी। विरोधी लोगो ने ताने कसने शुरू किए पर प्रधानमत्री तटस्थ भाव से अपना काम करता रहा।

प्रधानमत्री की इस मन स्थिति ने महाराज क्वाग को भी विस्मित कर दिया। उन्होंने एक दिन एकान्त क्षणो मे अपने प्रधान सचिव की पीठ थपथपाते हुए कहा—'अमात्यराज! मैंने कई बार आपको अपने पद से अलग कर दिया और पुन वही काम सभला दिया। इससे

आपने किसी प्रकार का अपमान अनुभव नही किया ? मैंने ऐसे समय मे भी आपको प्रसन्न और विषण्ण होते हुए नही देखा। क्या आपके मन पर इसका कोई असर नही है ?'

मत्री ने राजा के द्वारा उपस्थित प्रश्नचिह्न को विराम देते हुए कहा—'राजन् ! आपने जब-जब मुझे अपने दरबार मे प्रधानमत्री का पद दिया, तब मैंने सोचा—राजा द्वारा प्राप्त सम्मान को अस्वीकार नही करना चाहिए और इसी चिंतन के साथ मैं अपना काम सभाल लेता। जब-जब आपने मुझे पद से हटाया, तब मैंने सोचा—इस समय राज्य को मेरी सेवा की अपेक्षा नही है, इसलिए मुझे दूसरा काम करना चाहिए। बस इन्ही दो विन्दुओ के आधार पर मैं हर बार आपके निर्देश का पालन करता रहा।'

कितना अर्थपूर्ण है प्रधानमत्री का यह जीवन-प्रसग ! जब तक व्यक्ति के जीवन व्यवहार मे समता की पुट नही लगती है, जब तक वह अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियो मे सम रहने का अभ्यास शुरू नही करता है, तब तक वह अणुव्रत के आदर्शों को भी पूर्ण रूप से आत्मसात नही कर सकता। क्योकि युग के प्रवाहपाती दृष्टिकोण को छोडकर नैतिक मूल्यो को आत्मगत करने के लिए समत्व की भूमिका को सुदृढ बनाना ही होगा। समत्व की भावना से भावित हुए विना अनैतिक मूल्यो के साथ होने वाले सघर्ष मे सफल होना असभव नही तो दु सभव अवश्य है।

सत्य की चावी : नैतिकता

किसी वडे शहर मे पचास मजिल का एक विशाल भवन वना। उस भवन का उपयोग राजकीय कार्यालयो के रूप मे होने लगा। हजारो व्यक्ति वहा काम करते थे। वैज्ञानिक उपकरणो से वहा काम करने वाले व्यक्ति श्रम और समय दोनो की वचत कर लेते थे।

प्रात काल आठ वजे का समय ऑफिस का समय था। उस विशाल भवन के आसपास साइकिल, स्कूटर और कारो की अच्छी भीड थी ही, लोगो का भी खासा जमघट जुड गया। वैसे उनके पास पाच मिनट का भी समय नही था, पर भवन की लिफ्ट खराव हो जाने के कारण वे लोग अपने कार्यालयो मे नही पहुच सके, अत भीड होनी स्वाभाविक थी।

कुछ समय तक लिफ्ट ठीक होने की प्रतीक्षा की गई किन्तु जव उसके ठीक होने की सभावना नही रही तो पचासवी मजिल पर काम करने वाले लोगो ने मिलकर तय किया कि कहानी कहते-कहते चढाई प्रारम्भ की जाए। इस प्रकार यह लम्बी यात्रा सहज ही पूरी हो जाएगी।

कहानी का क्रम शुरू हुआ। एक एक मजिल पर अपने-अपने क्रम से कथा कही जाने लगी। चार-पाच मजिल की चढाई के वाद एक साधारण कर्मचारी ने कथा का क्रम भग करते हुए, बीच मे ही कहा— 'मुझे एक आवश्यक वात कहनी है।' कथा-श्रवण के रस मे व्यवधान उपस्थित करने वाले को रोकते हुए कुछ व्यक्ति वोले—'अभी चुप रहो, तुम्हारा क्रम आए तव अपनी वात वताना।' वह वापस कुछ वोले, इससे पहले ही कथा का क्रम पुन प्रारम्भ हो गया।

एक-एक कर उनचास मजिले पार हो गयी। अव उस व्यक्ति का

क्रम था। बोलने का अवसर पाकर वह बोला—'मुझे तो इतना ही कहना है कि ऑफिसो की चाबियो का गुच्छा पहली मजिल पर ही छूट गया है।' इतना सुनते ही सब लोग विस्फारित नेत्रो से उसे देखते रह गए और बोले—'काश ! तुम यह बात पहले ही बता देते।' उसने कहा—'मैं तो कब से बताने के लिए उतावला हो रहा हू, पर आप लोगों ने मुझे बोलने ही कब दिया ?'

यह एक कहानी है। इससे एक रहस्य का उद्घाटन होता है कि मजिल तक पहुचने पर भी ताला खोलने की चाबी न हो तो अदर प्रवेश नही हो सकता। इसी प्रकार सत्य की चाबी नैतिकता है। जब तक वह हाथ मे नही आती है, व्यक्ति सत्य के द्वार मे प्रवेश नही कर सकता। नैतिकता की चाबी प्राप्त करने के लिए अणुव्रत आचार सहिता का अनुसरण करना अपेक्षित है। अणुव्रत आदर्श जीवन का आधार ही नही, सत्य का प्रवेशद्वार भी है। भय और आशका से मुक्त होकर आत्म विश्वास के साथ नैतिकता की चाबी हस्तगत करने वाला व्यक्ति ही अपनी मजिल तक पहुचकर ताला खोल सकता है और सत्य से साक्षात्कार कर सकता है।

व्रत : बन्धन नहीं, कवच है

भारतीय सस्कृति व्रत-प्रधान सस्कृति है। व्रत-निष्ठ लोगो ने व्रत को सुरक्षा-कवच मानकर उसे धारण किया है। युद्ध मे लडने वाला सैनिक यदि कवच पहनकर जाता है तो वह अपने आपको अधिक सुरक्षित अनुभव करता है। इसी प्रकार व्रती व्यक्ति अनैतिक दस्युओ के बीच रहता हुआ भी स्वय को अधिक सरक्षित मानता है। व्रतो की इस महत्ता और उपयोगिता के बावजूद कुछ स्वतत्र मनोवृत्ति के व्यक्ति उन्हे बन्धन-रूप मे स्वीकार करते हैं। इसीलिए वे व्रत-ग्रहण मे कठिनाई अनुभव करते हैं। स्वतन्त्रता की यह मनोवृत्ति उन बन्दरो की वृत्ति जैसी प्रतीत होती है, जिसने उनका जीवन खतरे मे झोक दिया।

बन्दरो का एक व्यापारी नौका से समुद्र-यात्रा कर बन्दरो का विक्रय करने जा रहा था। बन्दर नौका पर बैठे थे। एक तट पर व्यापारी ने लगर डालकर नौका को खडा कर दिया और स्वय नौका से उतरकर अपने किसी मित्र से मिलने चला गया। काफी देर तक जब व्यापारी नही लौटा और तट पर लोगो की भीड बढने लगी तो उसे लक्ष्य कर एक बन्दर बोला—'साथियो! ये मनुष्य कितने स्वतन्त्र है। इच्छानुसार घूमते है, खाते हैं और मौज करते हैं। किन्तु ये लोग हमको इतना परतन्त्र रखते हैं। देखो, हमारा मालिक हमे समुद्र मे एक प्रकार से बन्दी बनाकर चला गया है। हम लोग ऐसा ही जीवन जीते रहे या कुछ पुरुषार्थ कर स्वतन्त्रता का सुख अनुभव करें?'

एक बन्दर के इस प्रश्नचिह्न ने अन्य सब बन्दरो को चौका दिया। उन्होने उत्सुकता व्यक्त करते हुए कहा—भैया! बात तो तुमने बडी अच्छी बताई है। अब यह भी तो बताओ कि स्वतन्त्र हो कसे सकने

है?" उस बन्दर ने अपनी बुद्धिमत्ता प्रदर्शित करते हुए सुझाव ि
'देखो, समुद्र में ये कितनी नौकाएं घूम रही हैं। इन पर यात्र
वालो के मुख पर कितनी मस्त मुसकान है। हम भी नौका पर
है, फिर भी कितने मायूस हैं। कितना अच्छा हो हम भी अपनी
को स्वतंत्र कर लें! हमारी नौका इस एक रस्सी से बंधी हुई
सब मिलकर प्रयत्न करें और इस रस्सी को तोड दे, फिर देख
कितने स्वतन्त्र हो जाते हैं!"

बन्दर का सुझाव सबको पसन्द आ गया। उन्होंने मिलकर
किया और लंगर को तोड डाला। अब क्या था, नदी के अनुरू
नौका उन्मुक्त रूप से बहने लगी और सब बन्दर खुशी से उछल
अब वे अपने मालिक के नियन्त्रण से मुक्त थे।

नौका कुछ दूर चली और एक चट्टान से टकराकर टूट
बच्चो की तरह उन्मुक्त किलकारियां भरने वाले वे सभी बन्दर
मे डूबकर अपने प्राणो से हाथ धो बैठे। योग्यता के बिना मिल
स्वतन्त्रता भी अहितकर हो जाती है।

व्रतो को बंधन मानकर उन्हे अस्वीकार करने वाले अ
स्वीकृत व्रतो को नौका के लंगर की भांति तोडने वाले व्यक्ति क्ष
स्वतन्त्रता का अनुभव तो कर सकते हैं, पर ऐसा करके वे दीघका
परतन्त्रता को ही आमन्त्रित नही करते, एक लम्बी कष्ट-परम्पर
निमन्त्रण दे बैठते हैं।

अणुव्रत आपको यह सुझाता है कि व्रत बन्धन नहीं है, ि
मुक्त होने के लिए आपको छटपटाना पड़े। व्रत वह सुरक्षा-कव
जिसे धारण कर आप जीवन के हर विकट मोर्चे पर विजयी
सकते है।

जहा अनैतिकता, वहा तनाव

शहर के बाहर राजपथ पर बुढिया का एक मकान था, जो राहगीरो के लिए विश्राम-स्थान के रूप मे काम आता था। बुढिया सहृदय थी। वह आगन्तुको को स्थान और भोजन की सुविधा ही नही देती थी, आन्तरिक स्नेह देती थी। एक बार जो राहगीर वहा ठहर जाता, वह जब कभी उस मार्ग से गुजरता, वही ठहरना चाहता था। यात्रियो को स्थान और भोजन उससे अच्छा भी सुलभ हो सकता था, किन्तु बात बात मे स्नेह उडेलने वाली उस वृद्धा की ममता अन्यत्र कही सुलभ नही थी। इसीलिए प्रतिदिन अनेक राहगीर बुढिया के मकान मे आकर टिक जाते थे।

एक दिन एक युवक वहा रातभर विश्राम करने के लिए आया। उसने पूछा—'अम्मा! रात-रात रहना है, सोने के लिए एक खटिया भर की जरूरत है। बोलो, किस मूल्य पर मिलेगी?' बुढिया ने कहा—'एक खटिया का दो रुपये लेती हू।' आगन्तुक युवक ने कहा—'मा! अगर मैं खटिया न लेकर यो ही विश्राम करू तो मुझे क्या चुकाना होगा?' वृद्धा बोली—'चार रुपये।' यह बात सुन युवक विस्मित हो गया। उसने प्रश्नाहू आखो से बुढिया को देखते हुए कहा—'अम्मा! कैसी विचित्र बात करती हो? सोने के लिए खाट लू तो दो रुपये और नीचे जमीन पर शयन करू तो चार रुपये। यह कैसी बुद्धिमता है तुम्हारी? चार रुपये देकर जमीन पर कौन सोएगा?'

वृद्धा शात भाव से बोली—'बेटा! तुम ठीक कहते हो, पर म भी कुछ समझपूर्वक बात कर रही हू। तुम जानते हो मेरे यहा राहगीर आते रहते है। यदि वे पलग पर सोते हैं तो उतना ही स्थान रोकते हैं। किन्तु पलग की सीमा छूटते ही वे पूरे कमरे पर अधिकार कर सकते

हैं। पलग मे एक सीमा है, सकीर्णता है। विशालता और उदा
तुला मे सकीर्णता का मूल्य अधिक कैसे हो सकता है ?" युवक
अभिप्राय को समझ गया और कम मूल्य पर एक पटिया की
सीमित हो गया।

अणुव्रत जाति, वर्ग, देश और प्रान्त की सीमाओ को अ
कर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए एक अन्तहीन धरातल
करता है। इसके आदश जितने व्यापक हैं, उतने ही उपयोगी ह
मजदूर की झोपडी स लेकर ससद भवन तक अणुव्रत की ग
ध्वनित हो रही है। वर्तमान के इस अनिश्चय और तनावभरे
वरण मे अणुव्रती व्यक्ति निश्चिन्त और तनावमुक्त जीवन जी
है। क्योंकि उसका चिन्तन सयत है, प्रवृत्ति सयत है और
सयत है। वैचारिक, प्रवृत्यात्मक और अभीप्सामूलक अस
व्यक्ति को अनैतिकता की ओर प्रेरित करता है। जहा अनैति
वहा भय है, सत्रास है, अनिश्चय है और तनाव है। जीवन के
पर मजिलगामी पथ की खोज मे रहने वाले व्यक्ति के लिए
वह राजपथ है, जो उसे दीर्घकालीन भटकन से उबारकर गति
सक्षम है।

आदर्श समाज की नीव का पत्थर

कौरवो और पाण्डवो के मध्य हुए घमासान युद्ध महाभारत की समाप्ति के बाद पाण्डवो का मन ग्लानि से भर गया। अपने ही स्वजनो को अपने शस्त्रास्त्रो से प्रतिहत करने के बाद जब वे युद्ध-भूमि से लौटे, उनका अन्त करण विचलित हो गया। युद्ध मे सचित पाप का शोधन करने के लिए उन्होने तीर्थ-स्नान करने का निणय किया। अपने निर्णय पर श्रीकृष्ण की सहमति पाकर वे उसकी तैयारी मे लग गये। यात्रा से पूव जब वे श्रीकृष्ण से विदा लेने गये तो कृष्ण बोले—'तुम तीर्थ-यात्रा पर जा रहे हो। विशेप तीर्थो पर तुम लोग जल-स्नान भी करोगे, क्या मेरी इस तुम्बी को भी स्नान करा लाओगे ?'

'क्यो नही, हम एक बार करेंगे तो इसे तीन बार करायेंगे।' पाडवो ने पुलकित होकर उत्तर दिया। वे तुम्बी को साथ लेकर गये और महीना तक तीथ यात्रा करते रहे और जहा-जहा तीर्थभूत नदियो मे स्नान किया, तुम्बी को तीन-तीन बार स्नान कराना कही नही भूले।

तीथ यात्रा पूरी कर वे श्रीकृष्ण के पास पहुचे। कृष्णजी ने पूछा—'क्यो भाई ! तीथ-स्नान कर आये ?' पाण्डवो की सविनय स्वीकृति पाकर वे बोले—'मेरी तुम्बी का क्या हाल है ?' पाण्डवो ने तुम्बी श्रीकृष्ण को सौपते हुए कहा—'यह लीजिए आपकी तुम्बी।' श्रीकृष्ण ने तुम्बी का एक छोटा-सा टुकडा तोडकर जीभ पर रखा और कडवासे मुह की भगिमा प्रदर्शित करते हुए बोले—लगता है तुम मेरी तुम्बी को स्नान कराना भूल गये अन्यथा इतने तीर्थो के जल मे अवगाहन करके भी यह मीठी क्यो नही हुई ? पाण्डव कुछ मुसकराये और बोले—'जनादन ! आप भी आज कैसी बात कर रहे है ? यह कडवी तुम्बी जल स्नान से मीठी कैसे हो सकती है ' 'फिर तुम्हारी आत्मा जल-

स्नान से पवित्र कैसे हो जायेगी ?' श्रीकृष्ण के इस प्रतिप्रश्न ने पाण्डवो को गम्भीर बना दिया। वे अपनी गम्भीरता को तोडकर बोले—'यदि तीर्थों का जल पवित्र नही होता है और उसमे स्नान करने से पापो का शोधन नही होता है तो आपने हमको तीर्थ-यात्रा के लिए जाने से मना क्यो नही किया ?' श्रीकृष्ण का उत्तर था—'उस समय तुम्हारा मानस इतना विक्षिप्त था कि मैं कुछ भी कहता, वह तुम्हारी समझ मे ही नही आता।' 'फिर हमारी शुद्धि कैसे होगी ?' पाण्डवो द्वारा किए गए इस प्रतिवेदन पर श्रीकृष्ण ने जो समाधान दिया, वह आज भी अणुव्रत मे प्रतिध्वनित हो रहा है। श्रीकृष्ण का उत्तर था—

आत्मा नदी सयमतोयपूर्णा,
सत्यावहा शीलतटा दयोर्मी।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र !
न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा ॥

आत्मा नदी है, सयम जल है, सत्य उसका प्रवाह है, सदाचार उसके तट है और करुणा उस नदी मे मचलती लहर हैं। पाण्डुपुत्र ! तुम वहा निमज्जन करो। तुम्हारे लिए यही श्रेय है। क्योकि जल मे अन्तरात्मा का शोधन नही होता है। श्रीकृष्ण द्वारा निरूपित सयम सत्य, सदाचार और करुणा अणुव्रत के ही अगभूत तत्त्व हैं।

अणुव्रत युग की ज्वलन्त समस्याओ का समाधान है। इसमे आर्थिक सामाजिक राजनैतिक, धार्मिक और नैतिक --सभी क्रान्तियो का फलित विद्यमान है। जो व्यक्ति अणुव्रती बनता है, वह आदर्श समाज की नीव का एक मजबूत पत्थर बनता है। जिस दिन यह नीव भर जायेगी, स्वस्थ समाज सरचना के लिए एक ठोस धरातल उपलब्ध हो जायेगा।

आज देश जिस स्थिति से गुजर रहा है, अत्राण और असुरक्षा का भाव जन-जन मे व्याप्त हो रहा है। ऐसे समय मे त्राण और सुरक्षा का आश्वासन अणुव्रत के पास है। यदि राष्ट्र के अधिनेता और जनता सब मिलकर साथ-साथ अणुव्रत के पथ पर चलें तो एक बडा काम हो सकता है।

भय और प्रलोभन से ऊपर

मनुष्य एक प्रबुद्ध प्राणी है। वह अपनी बुद्धि का उपयोग अच्छे और बुरे दोनो प्रकार से करता है। जब उसका चिन्तन स्वस्थ होता है, तब वह अपना अपने समाज और राष्ट्र का हित समझकर काम करता है। अस्वस्थ चिन्तन दीर्घकालीन हित की बात को भुला देता है और व्यक्ति ऐसे काम करता है जिसमे उसकी बहिर्मुखी चेतना स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हो जाती है। ऐसे काम अधार्मिक व्यक्ति ही करते है, यह बात नही है। तथाकथित धार्मिक व्यक्ति भी जाने-अनजाने मे ऐसे काम कर बैठते है, जो उनके लिए भी हास्यास्पद और भयावह होते है।

किसी समय की बात है कि साधु के वेश मे जनता को ठगने वाले एक वचक ने घोषणा की कि मुझे अपनी साधना से एक देव की कृपा प्राप्त हुई है। देव ने मुझे कुछ टिकट दिये हैं। उन्हे खरीदने वाला व्यक्ति सीधा स्वर्ग मे जायेगा। एक टिकट का मूल्य एक रुपया है। लोग उसकी बातो मे आ गये। उन्होने स्वर्ग के प्रलोभन मे आकर टिकट खरीदने शुरू कर दिये। जब उस तथाकथित साधु के पास काफी पैसा इकट्ठा हो गया तो एक दिन वह उस राशि की गणना करने बैठा। उसी समय एक बदमाश व्यक्ति वहा पहुचा। उसने पिस्तौल दिखाकर सारा धन अपने अधीन कर लिया। जब वह धन लेकर लौटने लगा तो साधु चिल्लाया—'पापी! तू अवश्य ही नरक मे जायेगा।' बदमाश ने एक तीखी मुसकान फेंकते हुए कहा—'बाबा! घबराओ मत। मैंने तुम्हारा एक रुपये वाला टिकट पहले ही ले लिया है। इसलिए स्वर्ग मे तो मेरा रिजर्वेशन हो ही गया है।' सन्यासी विस्फारित नेत्रो से देखता रहा और आगन्तुक सारा पैसा लेकर

चलता बना।

जिस किसी ने इस घटना के बारे मे सुना, उसने साधु को कोसा। स्वर्ग का झूठा प्रलोभन देकर जनता से पैसा ऐठा। कह रहा था कि मुझे देव की कृपा मिली है। अब कहा गयी वह कृपा ? क्या स्वग और नरक कभी पैसे से मिल सकते है ?

जब व्यक्ति को यह ज्ञात हो जाता है कि मैं ठगा गया हू, तब उसे सिद्धान्त की ऊची बातें याद आती हैं। अन्यथा टिकट बेचने वाले का अपना स्वार्थ था, पर खरीदने वाले तो सोचते कि ऐसे स्वग मिलेगा तो इस धरती पर कोई मनुष्य रहेगा ही नही। नरक के द्वार सदा-सदा के लिए बन्द हो जायेंगे। जान-बूझकर नरक मे जाना कौन चाहेगा ? पर उस समय ये सब बातें याद ही नही रहती। यह एक प्रकार की भावुकता है, जो व्यक्ति को किसी भी बहाव मे बहा ले जाती है।

अणुव्रत आपको स्वग के प्रलोभन या नरक के भय से नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा नही देता। वह मनुष्य को सही माने मे मनुष्य बनने के लिए दिशा-दर्शन देता है। कोई व्यक्ति उससे लाभान्वित हो तो ठीक, अन्यथा अणुव्रत मिशन अपने आप मे सफल है। क्योकि वह नैतिक मूल्यो को समाज पर आरोपित नही करता। अन्त करण की प्रेरणा जिस क्षण जागृत हो जाती है, भय और प्रलोभन की सारी प्रक्रिया अकिंचित्कर होकर रह जाती है।

•

मूल्यांकन का दृष्टिकोण

भारतीय चप्पल कम्पनियो के दो दलाल किसी समय एक साथ विदेश पहुचे। दोनो ने वहा की स्थिति का निरीक्षण कर अपनी-अपनी कम्पनी को टेलीफोन पर सवाद दिया। पहले व्यक्ति के स्वर मे निराशा थी, वह उदास होकर बोला—यहा कम्पनी के माल की खपत नही होगी, क्योकि हमारे देश और इस देश की सभ्यता मे बहुत बडा अन्तर है। यहा कोई भी व्यक्ति चप्पल नही पहनता है, इसलिए मैं पहले प्लेन से देश लौट रहा हू।

दूसरे दलाल के मुख पर प्रसन्नता की झलक थी और था भाषा मे नया जोश। वह फोन पर अपनी कम्पनी से सम्पर्क करे उससे पहले ही उस देश के कुछ विशेष व्यक्तियो को पावो की सुरक्षा के लिए चप्पलो की उपयोगिता के बारे मे बता दिया और उसे तत्काल आर्डर मिल गये। उसने उत्साह प्रदर्शित करते हुए अपने अधिकारी को बताया कि वे अविलम्ब दो हजार जोडी चप्पलें भेज दें। यहा व्यवसाय बढने का पूरा अवकाश है। जिन लोगो ने हमारी चप्पलो के नमूने देखे हैं, वे उन पर मुग्ध हो रहे है और जल्दी से जल्दी अपने पावो की सुरक्षा करने के लिए उत्सुक हो रहे है। माल यहा पहुचता है। तब तक मैं अन्य लोगो के साथ सम्पर्क स्थापित करके अपना काम आगे बढाता रहूगा।

यह एक सामान्य घटना है। इसमे एक ही परिस्थिति ने दो भिन्न व्यक्तियो को भिन्न रूप से प्रभावित किया और उसका परिणाम भी भिन्न प्रकार से आया।

अपनी दक्षिण-यात्रा के मध्य मैं कन्याकुमारी से केरल की ओर जाने की सोच रहा था। उस समय मुझे कुछ लोगो ने बताया कि केरल

जाकर आप क्या करेंगे ? वहा अभी कम्युनिस्ट सरकार है । उन लोगो का धर्म कर्म मे कोई विश्वास नही है । वे लोग आपके अणुव्रत मिशन को सफल करने मे सहयोग नही कर सकेगे। इसके विपरीत कुछ व्यक्तियो ने कहा—धर्म और नैतिकता की अपेक्षा उन लोगों के लिए अधिक है, जो इनकी उपयोगिता अनुभव नही करते है। इस बात के साथ उक्त सन्दर्भ यथार्थ रूप मे घटित हो रहा है। एक ही परिस्थिति के विभिन्न कोण अलग-अलग रूप मे व्यक्ति को प्रभावित करते हैं।

नैतिक मूल्यों के सम्बन्ध मे भी भिन्न लोगो की भिन्न-भिन्न धारणाएं हैं। कुछ व्यक्ति उन्हे जीवन-विकास के लिए अनिवार्य रूप से व्यवहार्य मानते हैं और कुछ व्यक्ति उनकी अपेक्षा नहीं समझते। कोई कुछ भी समझे, सबके अभिमत एक बिन्दु पर आकर मिल ही जाए, यह जरूरी नही है। मेरी दृष्टि से नैतिक मूल्यो को जन-जीवन मे अवतरित करना बहुत जरूरी है। उन परिस्थितियो मे अधिक जरूरी है, जब नैतिकता या धर्म के सम्बन्ध मे जनता की आस्था विवाद-ग्रसित होती जा रही हो।

संघर्ष से शांति

एक घुड़सवार कहीं जा रहा था। रास्ते मे घोडे को प्यास लगी। सवार ने पानी की खोज की, पर पानी नही मिला। वह थोडा आगे बढा तो उसे एक रहट दिखाई दी। वह अपने घोडे को लेकर वहा पहुचा। रहट चलाने वाले भाई से उसने पानी पिलाने के लिए कहा। उसने रहट चलायी और उसकी घटिकाओ मे पानी भरने लगा। खाली घटिकाए जिस समय पानी से भरती, उनमे एक विशेष प्रकार की आवाज होने लगी। उससे घोडा चमक गया। घोडे को उछल-कूद करते देख घुडसवार बोला—'भाई! तुम यह खट्-खट् बन्द करो, मेरा घोडा पानी नही पीता है।' पानी निकालने वाले व्यक्ति ने कहा—'जब तक खट्-खट् है तब तक ही पानी निकल रहा है। आवाज बन्द होगी तो पानी भी बन्द हो जायेगा।'

पानी पीने के लिए रहट की आवाज को सहना जरूरी होता है, इसी प्रकार जीवन को ऊचा उठाने के लिए कुछ संघर्षों का मुकाबला करना भी आवश्यक है। अरणी की लकडी के दो टुकडो का परस्पर संघर्षण होने से आग निकलती है। अन्यथा उसी लकडी के हजारो टुकडे कर देने पर भी आग की एक चिनगारी भी नही फूट सकती। किसी भी संघर्ष के सामने घुटने टेकने की बात बहुत बडी पराजय है। पराजित व्यक्ति कभी सुखी नही हो सकता। क्योकि जब-जब वह आत्मलीन बनता है, पराभव का मनोभाव उभर आता है, जो व्यक्ति के सन्तुलन पर हावी होकर उसको विक्षिप्त बना देता है। यह मानसिक विक्षिप्तता न पैसे से समाप्त होती है, न भौतिक सुविधाओ से विरक्त होती है और न सत्ता से कुचली जा सकती है।

आगे बढकर संघर्ष का स्वागत करने वाला व्यक्ति कभी

परम्परित मूल्यमानको की तलाश मे नही रहता। क्योकि वह जानता है, ऐसी परम्पराए जिनका कोई सूत्र नही, जिनका कोई आधार नही, जीवन मे प्रतिष्ठित हो नही सकती। किसी भी परम्परा के सूत्र को खोजा जा सकता है, पर भावी सघर्ष के भय से उस खोज मे अपनी अनुभूति के आधार पर कोई सशोधन नही जोडना अन्त सघर्ष को मोल लेना है। व्यक्ति की आत्मा जिस स्थिति को सामान्यत स्वीकार नही करती, किन्तु किसी दबाव के कारण उसे वैसा करना पडता है, वहा एक आ तरिक द्वन्द्व पैदा होता है, जो शान्ति के माग मे सबसे बडी बाधा है।

विक्षेप, अस तुलन, अशान्ति, तनाव—ये सब मानसिक बीमारिया हैं। इनकी चिकित्सा भी मानसिक स्तर पर होगी, तभी कोई समाधान निकल पायेगा। अ यथा शरीर तत्र की ग्रन्थिया गडबडा जायेंगी। उनका स्राव ठीक नही होगा। उनकी क्रिया ठीक नही होगी और मनुष्य की मानसिकता स्वय एक समस्या बन जायेगी। इस समस्या का समाधान शरीर चिकित्सा के आधार पर नही, मनोचिकित्सा की पद्धति से ही किया जा सकता है।

अणुव्रत मनोचिकित्सा का प्रथम द्वार है। इस द्वार मे प्रविष्ट होने के बाद बीमारी अधिक जटिल नही होगी। क्योकि यह एक आयुर्वेदिक प्रक्रिया है। इसके द्वारा एलोपैथी की भाति आकस्मिक लाभ की कल्पना न कर, बीमारी का मूलोच्छेद करने वाली पद्धति को समझना चाहिए। आयुर्वेदिक पद्धति मे औषधि को कूट-पीसकर तैयार किया जाता है। लम्बे सघष की स्थिति से उसे गुजरना पडता है। इसी प्रकार एक मनोरोगी-समाज मे अणुव्रत के सिद्धान्तो को व्यावहारिक रूप देने के लिए किसी बडे सघर्ष की सम्भावना बनी रहती है। पर अणुव्रती व्यक्ति को यह मानकर चलना है कि जब तक सघर्ष है तब तक ही विकास की सम्भावना है। सघर्ष की भूमिका के पीछे हटने का अथ है विकास से पराड्मुख होना। जो व्यक्ति सघर्ष के साथ चलता रहता है, एक दिन सघष स्वय पीछे छूट जाता है और उसके जीवन मे ऐकान्तिक शान्ति का उदय हो जाता है।

मानदण्डो का वदलाव

मनुष्य अनन्त शक्ति सम्पन्न प्राणी है। उसके पास चेतना है, शक्ति है और है उसके प्रयोग की क्षमता। शक्ति का प्रयोग कर मनुष्य ने नये नये आविष्कारो को जन्म दिया। उसने सुख-सुविधा के इतने साधन आविष्कृत कर दिए, जिनके द्वारा वह एक सीमा तक प्रकृति-जयी भी वन गया है। पर इन सबके वावजूद उसके जीवन मे कपाय और वासना की इतनी गहरी पर्ते जमी हुई हैं जो उसे मानवीय मूल्यो का अवबोध नही करने देती। हीनता और उच्चता के कृत्रिम मानदण्ड उसके दृष्टिकोण को सम्यक् नही होने देते। जातिवाद का मिथ्या दर्प उसे समता की भूमिका पर उतरने नही देता। जब तक ये स्थितिया सुदृढ हैं, मनुष्य न तो स्वय शांति से जी सकता है और न दूसरो को जीने देता है।

पिछले कुछ दशको से हम प्रयत्नशील है समाज के मिथ्या मानदण्डो को वदलने के लिए। दूसरी ओर से भी कुछ प्रयत्न हुए है। फलस्वरूप सामाजिक चेतना के केन्द्र मे एक विस्फोट हुआ। लोगो के विचार वदले, व्यवहार वदले और उनके आधार पर समाज व्यवस्था मे भी परिवर्तन आने लगा है। इसका एक छोटा-सा निदर्शन मैं यहा प्रस्तुत कर रहा हू।

मेरे जोधपुर-प्रवासकाल मे एक कवि-सम्मेलन की आयोजना की गयी। उसमे शहर के कवियो को सामग्रिक रूप से निमन्त्रित किया गया था। एक हरिजन कवि भी कार्यक्रम मे उपस्थित हुआ। वह कवियो के लिए निर्धारित स्थान से हटकर एक ओर बैठने लगा। अणुव्रती कार्यकर्ताओ की दृष्टि उस पर टिकी। उन्हे उसके कवि होने की जानकारी थी, अत वे उसके पास पहुचे और उसे कवियो के साथ बिठा दिया। उसे जब कविता-पाठ करने के लिए कहा गया तो वह हर्ष और

विस्मय से अभिभूत हो गया । वह खडा होकर बोला—'आज मेरा भाग्योदय हो गया । मैं कवि हू । कविताए लिखता हू और पढता भी हू, पर अब तक कभी सार्वजनिक मच पर प्रस्तुत होने का अवसर नही मिला । आज मैं पहली बार श्रोताओ की इतनी बडी उपस्थिति मे खडा हुआ हू और अपने आपको कृतकृत्य अनुभव कर रहा हू ।'

इस घटना की वहा उपस्थित लोगो पर एक विशेष प्रतिक्रिया हुई । श्रद्धालु लोगो ने अपने समाज मे एक नया परिवतन देखा । किसी भी व्यक्ति को वे कितने प्रेम से अपना लेते हैं और उसकी विशेषताओ का अकन कर लेते हैं, यह सब दृष्टिकोण के परिमार्जन से ही हो सकता है । समूह चेतना मे बद्धमूल अर्थहीन मूल्यो को बदलना भी बहुत कठिन होता है । इसमे भी राजस्थान के अशिक्षित-प्राय महिला-समाज को अपने स्थान से मोडना तो और भी अधिक कठिन काम था, पर हमने अणुव्रत की मशाल हाथ मे लेकर अन्धकार भरी राहो पर प्रकाश की किरणे फैलायी । जिन लोगो ने उन प्रकाश किरणो मे अपने गन्तव्य और पथ का निर्धारण कर लिया, वे सही दिशा की ओर बढ चले तथा बढते जा रहे हैं । जो व्यक्ति अन्धकार मे ही जीने के अभ्यस्त थे और प्रकाश की प्रथम झलक से ही जिनकी आखे चुधिया गयी थी, वे आज भी उन रूढ मूल्यो की परिक्रमा कर रहे है । हमारा प्रयत्न है कि हम ऐसे लोगो को भी सम्यक् दृष्टि दें और उनके जीवन को आलोकमय बनने मे सहयोग दें ।

शाति की चाह किसे है ?

मनुष्य शाति की खोज मे यात्रा करता करता थक गया है, फिर भी वह शाति को उपलब्ध नही कर सका। खोज और यात्रा अब भी जारी है, पर कोई परिणाम नही आ रहा है। बडी जटिल स्थिति है यह। मनुष्य अनवरत परिश्रम करता है जिसके लिए, वही उससे दूर होती जा रही है। इस मानवीय समस्या को समाहित करने के लिए अर्हतो और सन्तो ने अपने-अपने समय मे नयी दिशा प्रस्तुत की है। फिर भी समस्या को स्थायी समाधान नही मिला है। अणुव्रत आन्दोलन भी वर्तमान युग मे शाति के अभिप्सु व्यक्ति का पथ दर्शन कर रहा है, किन्तु मनुष्य को शाति नही मिल रही है। आखिर इसका रहस्य क्या है ? इस प्रश्न को उत्तरित करने से पहले मैं आपको एक कहानी बता रहा हू।

दो मित्र कही जा रहे थे। बातचीत के सदभ मे शाति और आनन्द का प्रश्न चल पडा। एक मित्र ने कहा—'भाई, आज हम कलियुग मे जी रहे हैं, इसलिए शाति की बात करना ही व्यर्थ है। जप-तप, योग, ध्यान, सत्सग—सब कुछ करके थक गया हू मैं तो, पर शाति नही मिलती।'

दूसरा मित्र बोला—'तुम्हारे कथन को गलत प्रमाणित करना मेरा उद्देश्य नही है, फिर भी मुझे ऐसा लगता है कि शाति आज भी उपलब्ध हो सकती है, पर उसे पाने की चाह नही है, चाह है तो प्रयत्न नही है।'

बात मित्र के जची नही। उसने कहा—'शाति की चाह नही है, यह बिलकुल तथ्यहीन बात है। अशान्ति से घुट-घुटकर आदमी मर रहा है और तुम कहते हो कि शाति पाने के लिए को कोई प्रयत्न नही होता है। बहस काफी आगे बढ गयी। जब उसकी समाप्ति का कोई आसार

दिखाई नही दिया तो पहले मित्र ने एक सुझाव रखा, जो दूसरे को भी मान्य हो गया।

सुझाव के अनुसार वे दोनो मित्र एक गाव में घर-घर घूमे और मनुष्य की अशाति के मूल हेतुओ की एक सूची तैयार की। वे जहा भी जाते, एक प्रश्न पूछते—'क्या आप दुखी हैं ? आपको किसी वस्तु की जरूरत है ?' इस प्रश्न के उन्हे विविध उत्तर मिले। किसी ने कहा—'पुत्र की जरूरत है। किसी ने धन की आवश्यकता बतायी। किसी ने बीमारी से छुटकारा चाहा और किसी ने चाहा लम्बा आयुष्य। किसी व्यक्ति को यश-प्रतिष्ठा की भूख थी और किसी को जरूरत थी रहने के लिए मकान की। जितने लोग, उतनी ही अपेक्षाए उनकी सूची में अकित हो गयी, पर केवल 'शाति' किसी भी व्यक्ति की चाह नहीं थी।

मित्र को अपने मित्र की बात से सन्तोष हो गया और इस प्रश्न का समाधान भी मिल गया कि मनुष्य को शाति क्यो नही मिल रही है। अणुव्रत आदोलन अपनी भूमिका के प्रति सजग है, पर जब तक मनुष्य उसके नैतिक आदर्शो पर चलना नही चाहेगा तब तक वह शाति का स्वप्न ही देख सकता है, उसका साक्षात् अनुभव नही कर सकता।

मिलावट भी पाप है

राजस्थान की यात्रा के मध्य मैं एक छोटे-से गाव मे गया था। वहा के निवासी प्रवचन सुनने आए। प्रवचन सपन्न कर मैं बैठा और एक काय-निवृत्त सेनाधिकारी ने निकट आकर वार्तालाप शुरू कर दिया। मैं उसकी बात सुनने मे लीन था, उधर एक जैन भाई बार-बार मेरा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर रहा था। आखिर उससे रहा नही गया और उसने पीछे से आकर मेरे पाव का अगूठा दबाया। मैंने उसकी ओर मुडकर देखा तो वह बोला—'आचायजी ! आप क्या कर रहे है ? जो व्यक्ति आपके पास बैठा है, वह शराबी है। एक धर्माचार्य और शराबी के बीच कैसा वार्तालाप ?' मैंने इस बात पर ध्यान नही दिया और अपना काम आगे बढाया। बातचीत के मध्य मैंने पूछा, 'आप क्या करते हैं ?' वह व्यक्ति बोला— पहले सेना मे काम करता था, अब रिटायर हो गया हू।' जीवन क्रम के सबध मे पूछने पर उसने कहा— 'मैं अपने पिछले जीवन मे शराब बहुत पीता था, अब धीरे धीरे कम कर रहा हू।' मैंने शराब से होने वाले दुष्परिणामो की चर्चा की और उसके सकल्प बल को प्रोत्साहन देते हुए सर्वथा शराब छोड देने का निर्देश दिया। दो क्षण अपने आत्मबल को तोलकर उसने सदा सदा के लिए शराब छोड दी। अब वह अणुव्रती बन गया।

सेनाधिकारी से निपटकर मैं उस जैन भाई की ओर मुडा। मेरा पहला प्रश्न था –'तुम क्या करते हो ?' वह उत्साहित होकर बोला— 'आचार्यजी ! मैं जैन श्रावक हू। मेरा खान-पान बिलकुल शुद्ध है। मास भक्षण की तो बात ही दूर, मैंने कभी शराब का स्पर्श नही किया। इन वर्षो मे मैंने रात्रि-भोजन भी छोड दिया " इत्यादि इत्यादि।

मेरा दूसरा प्रश्न था—"धधा क्या करते हो ?" वह बोला—

"गाव मे ही किराणा की दूकान है।" मेरे प्रश्न का अगला हिस्सा था—"तोलमाप मे कमीवेशी तो नही करते ?" इस प्रश्न पर वह सहम गया और वोला—"आचार्यजी ! हम गृहस्थ हैं। ऐसा करना ही पडता है।" मेरे प्रश्नो का क्रम टूटा नही था। मैंने फिर पूछा—"मिलावट तो नहीं करते ? ग्राहक को धोखा तो नही देते ? टैक्स की चोरी तो नहा करते ?" उसका एक ही उत्तर था—"हम गृहस्थ हैं। ऐसा किए विना काम कैसे चल सकता है ?"

मैंने अपनी पूरी शक्ति से प्रयत्न किया कि वह अपनी व्यावसायिक अनैतिकता को छोडकर अणुव्रती वन जाए, किन्तु वह अपनी स्थिति पर अटल रहा। मेरी एक भी बात मानने के लिए वह तैयार नहा हुआ। उसके चिंतन की सकीर्णता पर टिप्पणी करते हुए मैंने कहा—"शराब पीने वाले एक सेनाधिकारी से वात करने से मेरा आचार्यत्व कम हो जाता है और अपने ही भाइयो के साथ धोखाधडी करने वाले व्यक्ति के साथ वातचीत करने से मेरा महत्त्व नही घटता ! यह एकागी दृष्टिकोण क्या मूल्य रखता है। शराब पीना पाप है, पर मिलावट और धोखाधडी पाप नही है, यह कितनी अधूरी समझ है ? कितना अज्ञान है ? जव धार्मिक कहलाने वाले व्यक्तियो की यह स्थिति है, तब धर्म से विमुख व्यक्तियो की क्या स्थिति होगी ? जब तक धर्म को इन रूढ मूल्यों से मुक्त नही किया जाएगा, उससे कोई विशेष परिणाम नहा आ सकेगा। अणुव्रत इस दिशा मे सक्रिय है। इससे समाज मे नया चेतना आएगी, ऐसा सभावना है।"

समन्वय का मच

भगवान् महावीर ने हमको एक सूत्र दिया कि जो प्रवृत्ति तुम्हे प्रिय नही है, वह दूसरो के प्रति भी अकरणीय है। भगवद्‌वाणी का अनुशीलन करने वाला हर व्यक्ति इस सूत्र से परिचित हो सकता है, पर अपने जीवन की प्रयोगशाला मे इसका प्रयोग करने वाले ही इसके परिणाम से परिचित हो सकते हैं।

मेवाड का घटना-प्रसग है। कानोड गाव से विहार करके हम आगे जा रहे थे। साथ मे काफी लोग थे। वे जोर-जोर से नारे लगा रहे थे। मुझे पता चला कि हमारा जुलूस जिस ओर आगे बढ रहा है, उस माग मे अन्य सम्प्रदाय के मुनियो का व्याख्यान हो रहा है। मैं दो क्षण के लिए रुका और अपने श्रावको को सम्बोधित कर बोला—'नारे ब द कर दिए जाए।' प्रश्न उपस्थित हुआ—'क्यो ?' मैंने कहा—'आगे मुनियो का प्रवचन हो रहा है। नारे लगाने से श्रोताओ को सुनने मे बाधा पहुचेगी।'

मेरे इस कथन को उन्होने दूसरी दृष्टि से लिया और वे बोले—'आज यह नयी बात क्यो उठी ? सदा से ही तो हम ऐसा करते आए है। हम उन्हे बाधा पहुचाना नही चाहते, पर अपने उल्लास को कैसे रोक सकते है ?' मैंने उनको समझाने की दृष्टि से कहा—'तुम्हारी धर्म-सभा मे तुम्हारे साधु साध्वियो का प्रवचन होता है उस समय दूसरे लोग नारे लगाते हुए वहा से गुजरें तो तुम्ह कैसा लगेगा ?' मेरी यह बात उनके अन्त करण को छू गयी और वे बिलकुल मौन हो गए।

इतने लोगो का वह लम्बा जुलूस उस स्थान के आगे से गुजरा और एक शब्द भी सुनाई नही दिया। दर्शक चकित रह गए। दूसरे सम्प्रदाय के लोगो पर इस बात का इतना गहरा असर हुआ कि वे हमारे कार्य-

क्षमो मे सहयोग की भावना प्रदर्शित करने लगे। यह समन्वय का रास्ता है। यह सह-अस्तित्व का मार्ग है। एक व्यक्ति अपने पडौसी की कठिनाई को समझकर उसे अपनी ओर से नही उलझाता है या उसका फल निकालने का प्रयास करता है तो वह भी उससे प्रभावित हुए बिना नही रह सकता।

अणुव्रत के मच से हमने समन्वय का प्रयोग किया। जिन लोगो के साथ हमारा वैचारिक मतभेद था, उनको भी हमने उनके चिन्तन के सदभ मे समझने का प्रयत्न किया। जो व्यक्ति हमारे आलोचक थ, उनको हमने तटस्थ भाव से देखा। सापेक्षता और तटस्थता का यह उदार दृष्टिकोण भगवान् महावीर की अनुपम देन है। यह देन हमें विरासत मे मिली है। हम इसे सुरक्षित रखे और इसका उपयोग करें। ऐसा करके ही हम इस युग मे भगवान् महावीर के दर्शन को उजागर कर सकते है।

अणुव्रत आचार-सहिता का आधार भी भगवान् महावीर का वही चिरन्तन दर्शन है, जो जन जन को स्वार्थ चेतना से ऊपर उठाकर आत्मौपम्य की तुला पर लाकर खडा करता है। इसमे उन सब प्रवृत्तियो को नियन्त्रित करने की प्रेरणा है, जिनसे व्यक्ति मानवीय मूल्यो की अवहेलना कर अपने कृत्रिम स्वार्थ को पोषण देता है। स्वार्थ चेतना का विघटन या आत्म तुला से तोलने की वृत्ति का विकास ही मनुष्य को मनुष्यता के स्तर पर टिकाकर रख सकता है।

आदर्श जीवन की पद्धति

अणुव्रत आन्दोलन ने हमारे कार्यक्षेत्र को विस्तार दिया, यह तथ्य निर्विवाद है। पहले हमारे कार्यक्रम एक सीमित परिवेश मे होते थे। न तो हमारे कार्यकर्ताओ मे इतना साहस था कि वे सार्वजनिक कार्यक्रम आयोजित कर सकें और न जनता मे इतना उदार दृष्टिकोण था कि वह किसी सम्प्रदाय विशेष के आचार्य को सुन सके। दृष्टिकोण की सकीर्णता और साहस की कमी के कारण पारस्परिक दूरिया बढती गयी और एक-दूसरे के प्रति भ्रान्त धारणाए पनपती गयी। किन्तु जब से अणुव्रत के माध्यम से व्यापक जनसम्पर्क और वैचारिक आदान-प्रदान होने लगा, भ्रान्त धारणाओ का निराकरण हुआ है तथा एक स्वस्थ वातावरण निर्मित हो चुका है।

अपनी कलकत्ता-यात्रा के मध्य मैंने एक चातुर्मास कानपुर किया। वहा अणुव्रत के मच से अनेक कार्यक्रम आयोजित हुए। उनमे एक आयोजन था सर्वधर्म सद्भाव का। उस आयोजन मे सब धर्मो के प्रमुख प्रतिनिधियो को आमन्त्रित किया गया। सिक्ख, मुसलमान, ईसाई, वैदिक, जैन आदि अनेक धर्मों के धर्मगुरु वहा उपस्थित हुए। अहिंसा के सम्बन्ध मे चर्चा चली। सभी ने अपने धार्मिक दृष्टिकोण से अहिंसा का प्रतिपादन किया। सबके विचार सुनकर एक मौलवी खडे हुए और बोले—'सब धर्मो के प्रतिनिधियो की एक मच पर उपस्थिति कानपुर के इतिहास का प्रथम प्रसग है। यहा आने से पहले हमारे मन सदिग्ध थे। कुछ बद्धमूल धारणाओ ने हमको भ्रान्त बना रखा था। हम अपने धर्म को श्रेष्ठ मानकर दूसरे धर्मो के प्रति उपेक्षा के भाव रखते थे और जैन धर्म के बारे मे तो न जाने हमने क्या क्या सुन रखा था। आज हमारी भ्रान्तिया टूटी हैं और जिज्ञासाए बढी है। कुछ

समाधान हमे मिल गए हैं और जो बाकी रहे है, उनके लिए मार्ग खुल गया है। हमें पारस्परिक निकटता बढाकर हर तथ्य को गहराई से समझना चाहिए और दूसरे धर्मों की अच्छी बातो को स्वीकार करना चाहिए।'

मुस्लिम धर्म मे कट्टर आस्था रखने वाले मौलवी महोदय के इन विचारो से सारी सभा को समन्वय की दिशा मिल गई। सब लोगो ने इस बात को अनुभव किया कि अणुव्रत हम सबको एक-दूसरे के निकट ला सकता है। यदि अणुव्रत मच यह कार्यक्रम आयोजित नही करता तो हमारी धारणाओ मे परिवर्तन की कल्पना ही नही की जा सकती।

अणुव्रत का कार्यक्रम प्रस्तुत करते समय मेरे मन मे यही भावना थी कि धर्म के शाश्वत और मौलिक तत्त्व, जो कि हर धर्म मे उपस्थित है, व्यक्ति व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करे, इस दृष्टि से एक ऐसी आचार-सहिता की अपेक्षा है, जो सबमान्य हो सके। अनेक आवर्तना परिवर्तनो के बाद अणुव्रत की जो आचार-सहिता स्थिर की गयी, वह व्यक्ति के लिए आचरणीय है। जो व्यक्ति उसे तटस्थ दृष्टिकोण से समझता है, उसे अनुभव होता है कि जिस धर्म मे उसकी आस्था है उसी का सार यहा सग्रहीत है। यही कारण है कि अणुव्रती बनने वालो मे जैनो की अपेक्षा अजैन व्यक्ति अधिक हैं। मैं चाहता हू कि अणुव्रत जन-जीवन को आलोक से भरता रहे और एक आदर्श जीवन पद्धति सुझाता रहे।

अनुभव के दर्पण मे

मनुष्य की स्वाथ-चेतना जितनी प्रखर होती है, वह अपनी जाति के लिए उतना ही घातक प्रमाणित होता है। स्वार्थ मनुष्य की ज्ञान ज्योति को आवृत कर देता है। वह सब कुछ देखता हुआ भी उसे अन-देखा कर चलता रहता है। चित्त विक्षेप से घटित होने वाली घटनाओ के मूल में भी स्वार्थ चेतना का पूरा हाथ रहता है। जब तक व्यक्ति स्वार्थ के चगुल से नही निकल पाता, तब तक उसे यह भी भान नही रहता कि वह जो कुछ कह रहा है, वह कितना उचित है ? कितना अनुचित है ?

सम्राट् सिकन्दर ने किसी समय कुख्यात डाकू पकडने का आदेश दिया। उस डाकू ने पूरे पजाब मे आतक फैला रखा था। उसका नाम सुनते ही मन भय से काप उठता। सिकन्दर ने उसके लिए पुरस्कार घोषित किया। आखिर एक दिन उसे बन्दी बनाकर सिकन्दर के सामने उपस्थित किया गया। सिकन्दर ने सामने खडे डाकू को सम्बोधित कर पूछा—'तुम्हारे अपराधो के लिए क्या सजा दू ?' डाकू सहजभाव से बोला—'जो सजा आप अपने को दे।' सिकन्दर यह सुनकर तमतमा उठा। वह अपने आवेश को प्रदर्शित करता हुआ बोला—'मैं सम्राट् और तू डाकू। मेरे साथ तेरी क्या तुलना ? सिकन्दर के इस तर्क को निरस्त करते हुए डाकू ने कहा –'आप भी डाकू है और मैं भी डाकू हू। आप देश लूटते है, मैं व्यक्तियो को लूटता हू। आप लाखो लाखो लोगो की हत्या करते हैं मैं कभी कभार एक-दो हत्याए कर लेता हू। आप अमीर और गरीब सबको लूटते है। मैं केवल अमीरा को लूटता हू, और लूट का धन गरीबो मे बाट देता हू। अब आप ही इस वात का निणय करें कि हम दोनो मे बडा डाकू कौन है ?'

डाकू के इस निर्भीक उत्तर ने सिकन्दर को झकझोर डाला। उसने अनुभव किया कि उसके भीतर भी एक क्रूर डाकू बैठा है जो दिन रात उसे क्रूरता की ओर अग्रसर कर रहा है। सिकन्दर की स्वार्थ चेतना एक आकार लेकर सामने आयी। उसे अपने दुष्कृत्यो का बोध हुआ। उसने डाकू को बिना कोई दण्ड दिए ससम्मान मुक्त कर दिया।

व्यक्ति जब तक राग द्वेष की ग्रन्थियो को उलझाता रहता है, स्वार्थ भावना से ऊपर नही उठ पाता। स्वार्थ-साधना के लिए चलाए गए अभियान मे वह न किसी की करुण पुकार सुनता है, न किसी की पीडा को पहचानता है और न किसी को व्यथित करने से सकुचाता है। ऐसे व्यक्तियो को अणुव्रत उद्बोधन देता है। 'आत्मन प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्'—जो प्रवृत्ति अपने लिए अनुकूल नही है, उसे दूसरो के प्रति भी नही कहना चाहिए। शोषण और संग्रह की वृद्धि उन लोगो के लिए कितनी दुखद होती है, जो दिन भर परिश्रम करके भी अपने परिवार के लिए दो समय की रोटी नही जुटा पाते। रिश्वत हो चाहे मिलावट, करो की चोरी हो चाहे कूटसाक्षी—ये सब प्रवृत्तिया ऐसी हैं जो अपने लिए भी घातक हैं और सामने वाले के लिए भी। अणुव्रत ऐसी हर प्रवृत्ति को प्रतिहत करने की बात कहता है। अपेक्षा है उस बात को सुनकर जीवन व्यवहार मे लाने की।

सम्यक् दर्शन का पृष्ठपोषक

मनुष्य का दृष्टिकोण जब तक सही नही होता तब तक वह सही को गलत मान लेता है और गलत को सही। यह एक प्रकार का मतिभ्रम है। मति भ्रम की स्थिति मे रस्सी को साप और सीप को चादी समझने की बात तर्कशास्त्र की प्रमुख चर्चा है। मनुष्य जब धर्म और अधर्म की व्याख्या मे भी इसी मति-विभ्रम से ग्रस्त हो जाता है तब उसे जीवन की समस्याओ का सही समाधान नही मिलता।

बर्नार्ड शॉ एक बार अपने मित्रो के साथ बैठे बात कर रहे थे। बात करते-करते वे गम्भीर हो गये और बोले—'मित्रो, एक ज्योतिर्विद ने मेरे बारे मे जो भविष्यवाणी की थी, वह आज सत्य हो गयी।'

मित्रो ने उत्सुक होकर भविष्यवाणी के सम्बन्ध मे जिज्ञासा की।

शॉ कुछ उदास होकर कहने लगे—'उसने कहा था—आपको कभी लकवा हो जाएगा। आज वह घटित हो गया। मैं बहुत देर से अपने एक पैर मे चिकोटी काट रहा हू, पर मुझे किसी प्रकार की अनुभूति नही हो रही है।'

यह सुनकर एक मित्र बोला—'क्षमा करना, आप अपने पाव मे नही, मेरे पाव मे चिकोटी काट रहे थे। मैं उस दर्द से परेशान हो रहा हू, पर सकोचवश आपको कुछ कह नही सका।' बर्नार्ड शॉ समेत उनके सभी साथी खिलखिलाकर हस पडे।

मैं सोचता हू कि स्थिति मात्र हसकर टाल देने जैसी नही है। मनुष्य धर्म की आराधना करे और उसका कोई परिणाम नही आये या प्रतिकूल परिणाम आये, इसका अर्थ यही होगा कि उसने धर्म के नाम पर अधर्म की आराधना की है। क्या कोई व्यक्ति सही औषधि का सेवन करने और उचित अनपान का ध्यान रखने पर भी बीमार रह

सकता है ? यदि ऐसी स्थिति है तो स्वीकार करना होगा कि रोग का निदान सही नही हुआ है। निदान सही है तो चिकित्सा समुचित नहीं है। सम्यक् निदान और सम्यक् चिकित्सा के बावजूद बीमारी बढता है, उसके दो कारण हो सकते हैं—पथ्य का अभाव और बदपरहेजी।

क्रोध, लालसा, अहकार, वचना आदि मानसिक रोगो के लिए विनम्रता, ऋजुता आदि औपधियो का सेवन करना जरूरी होता है। इन औपधियो के साथ पथ्य है ध्यान, स्वाध्याय, कायोत्सग आदि। जो व्यक्ति पथ्य की उपेक्षा कर कुपथ्य कर लेता है, कुसग, प्रमाद आदि के प्रभाव मे आ जाता है वह कभी स्वस्थ होने का स्वप्न भी नही देख सकता।

अणुव्रत सम्यक् दशन का पृष्ठपोपक है। आचरण की बात दशन के साथ जुडी हुई है ही। जो व्यक्ति अपने जीवन को स्वस्थ बनाना चाहता है, जिसे अपने व्यवहारो का उदात्तीकरण करना है, उसे अणुव्रत के पथ पर चलना ही होगा। अन्यथा अनेक घुमावदार मोडो को पार करने के बाद भी मजिल की दूरी कम नही हो सकेगी।

परिस्थितिवाद एक बहाना

कुछ विचारकों का अभिमत है कि वर्तमान युग की जटिलताओं में जीने वाला कोई भी व्यक्ति नैतिक नहीं रह सकता। यदि वह राज्य-कर्मचारी है तो रिश्वत के बिना उसका जीवन ही नहीं चलता। ऐसे विचार कुछ व्यक्तियों के मस्तिष्क से उद्भूत होकर समाज मे संक्रात होते हैं। सामाजिक स्तर पर ये धारणाए पुष्ट होती हैं और हर व्यक्ति का यह विश्वास दृढ हो जाता है कि स्टैण्डर्ड का जीवन जीने के लिए व्यक्ति को कुछ अनैतिक उपक्रम अपनाने ही पडते है।

मेरी दृष्टि से यह युग और परिस्थिति का बहाना दुर्बल मनोवृत्ति का सूचक है। मनुष्य का मन प्रबल हो तो वह किसी भी स्थिति से निपटने का साहस जुटा लेता है। मन की दुर्बलता अच्छी मे अच्छी परिस्थिति मे भी व्यक्ति को अपने स्वीकृत आदर्शों से स्खलित कर सकती है। इसके विपरीत पुष्ट और प्रबल मन प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थिति मे भी व्यक्ति को उदात्त जीवन जीने की शक्ति और प्रेरणा दे सकता है।

एक अफसर अपने मकान की छत पर खडा था। उसने देखा, एक भिखारी सामने वाले मकान के आगे खडा भीख माग रहा है। मकान मालिक द्वारा दुत्कार दिये जाने पर वह शान्त भाव से आगे बढ गया। अफसर का दिल पसीजा। उसने भिखारी को आवाज दी, पर वह उसे अनसुना कर चलता रहा। अफसर ने अपने नौकर के हाथ भिक्षा भेजी। भिखारी ने यह कहते हुए भिक्षा अस्वीकार कर दी कि इसमे रिश्वत का पैसा लगा है।

नौकर ने लौटकर भिखारी की कही हुई बात सुना दी। अफसर को बहुत बुरा लगा। उसे अपने आप पर गुस्सा आ गया। वह मन

ही मन सोचने लगा—एक ओर भीख मागता है, दूसरी ओर एसी शेखी बघारता है। रिश्वत न लू तो कैसे निभ सकता है? इतना बडा परिवार, बच्चो की पढाई, मेहमानो का ताता, पुत्रियो का विवाह आदि-आदि कैसे हो सकता है बिना रिश्वत के

समय बीत रहा था। उसी क्रम से अफसर के मन की बेचैनी बढ रही थी। बार-बार उस भिखारी की आकृति उभरकर उसके सामने आ जाती, जो उसे उसकी रिश्वत लेने की दुर्बलता पर चिढाती हुई प्रतीत होती। तीव्र मानसिक उद्विग्नता ने उसको विवश कर दिया रिश्वत छोडने के लिए। आखिर एक दिन उसने सकल्प कर लिया। रिश्वत छोडते ही उसकी आर्थिक स्थिति डावाडोल हो गई। बच्चों की उच्च शिक्षा बन्द। घर का राग-रग समाप्त। मित्रो की वाह वाही शून्य मे समाहित। सब-कुछ बदल गया। कुछ व्यक्तियो ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा—'इस उम्र मे यह नासमझी की बात मत करो। आज के युग मे रिश्वत के बिना जीना दूभर है। व्यर्थ की मुसीबत मे क्या फस रहे हो?'

अफसर का मन एक क्षण के लिए भी विचलित नही हुआ। अपार समृद्धि की उपलब्धि मे जो सुख नही मिला वह आज उसे अभावो के बीच मिल रहा था। अनिर्वचनीय सुख, असीम शान्ति और एक विशिष्ट आत्मतोष की अनुभूति मे उसके बीते जीवन का अनुताप धीरे धीरे पिघलकर वह रहा था और वह प्रतिदिन अपने रिश्वत न लेने के सकल्प को पुष्ट करता जा रहा था। कोई भी परिस्थिति उसे अपने सकल्प से डिगा नही सकी। कोई भी आकर्षण उसके मन मे स्थान नही पा सका। अब वह निर्द्वन्द्व जीवन जी रहा था। क्योकि वह भौतिक समृद्धि की आसक्ति से मुक्त होकर आत्मिक समृद्धि की वृद्धि करने मे लीन हो गया था।

मन का अँधेरा : व्रत का दीप

गृहस्वामिनी कही वाहर जा रही थी। अपराह्न का समय था। उसने अपने सेवक को निर्देश दिया—'मैं आवश्यक कार्य हेतु बाहर जा रही हू। मकान की निगरानी तुम्ह रखनी है। ध्यान रहे मकान मे अधेरा न घुस जाए।' गृहस्वामिनी चली गयी। सेवक अपनी स्वामिनी के आदेश की क्रियान्विति पर विचार करने लगा। उसने सोचा—घर मे मैं अकेला आदमी हू। अधकार का मुकाबला कैसे कर सकूगा? अच्छा हो घर बन्द कर ताला लगाकर बाहर चला जाऊ। पीछे से अन्धकार आयेगा भी तो घर बन्द देखकर लौट जायेगा।

सेवक ने बडी सावधानी से घर का हर द्वार और खिडकी बन्द कर दी। मुख्य द्वार बन्द कर बाहर से ताला लगा दिया और स्वय निश्चिन्त होकर बाजार चला गया। वापस लौटकर आया तो देखा--गृहस्वामिनी भी उस समय घर पहुच रही है। वह बडी तत्परता से ताला खोलकर भीतर गया। वहा उसे कुछ भी दिखायी नही दिया। घर मे अन्धकार पूरा अधिकार कर चुका था। वह चितातुर हो वही बैठ गया। स्वामिनी घर मे प्रविष्ट होते ही बोली—'तुमने मेरे आदेश का पालन नही किया।' सेवक गिडगिडाता हुआ बोला— अम्मा! मै यही सोच रहा हू। पर मुझे पता नही चला कि अन्धकार घर मे घसा कैसे? मकान की चाबी तो मेरे पास थी।'

स्वामिनी अपने सेवक की नासमझी पर मुसकराती हुई कहने लगी—'जो कुछ हुआ वह तो हो गया। अब तुम इसे बाहर निकालो।' सेवक डडा लेकर अन्धकार को मारने दौडा। मारते-मारते उसके हाथ छिल गये, पर अन्धकार वहा जमा रहा। अखिर स्वामिनी ने कहा— 'दीपक जलाओ, अन्धकार स्वय डरकर भाग जायेगा।' सेवक ने वैसा

ही किया। पूरा घर प्रकाश से भर गया।

मनुष्य का मन भी अन्धकार जैसी कलुषित वृत्तियो से भरा पडा है। काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, छल, अभिमान, वचना, क्रूरता आदि न जाने कितनी वृत्तिया मानवीय चेतना के हर तल पर सघन अधकार की परते चढाती जा रही हैं। मनुष्य उनसे मुक्त होना चाहता है। इसलिए दिन-रात उनके साथ लड रहा है। पर सब कुछ उलटा ही होता जा रहा है। ज्यो-ज्यो वह अपनी वृत्तियो का दमन करता है, वे उतनी ही तीव्रता से उभरकर सामने आती हैं। चारो ओर से हताश हो वह इसी प्रतीक्षा मे बैठा है कि कोई उसे भी मन का अधेरा दूर भगाने की प्रक्रिया सुझाए। प्रक्रिया के अभाव मे वह जीवन भर सघर्ष करके भी उस पर विजय प्राप्त नही कर सकेगा।

मनुष्य के मन-मदिर मे व्याप्त अधकार को निरस्त करने के लिए अणुव्रत का दीप जलाना होगा। जिस क्षण यह दीप प्रज्वलित हो उठेगा, अवाछित वृत्तियो का अधेरा उलटे पावो दौड जाएगा। इस दृष्टि से अपेक्षा है आज अणुव्रत के आलोक को जन-जन तक पहुचाने की। इस आलोक को पाने के लिए किस सीमा तक तडप है मनुष्य के मन मे, यह थाह लेना आवश्यक है। क्योकि तडप के अभाव मे उपलब्ध प्रकाश का भी कोई उपयोग नही हो सकता। प्रकाश की खोज में सलग्न प्राणो की प्यास बुझाने वाला अणुव्रत सचमुच ही ज्योति का पुञ्ज है, रश्मियो का समवाय है।

अनैतिकता का चक्रव्यूह

एक फकीर था फरीद नाम का। गाव के लोग उसे बहुत मानते थे। वह भी सबके साथ बहुत आत्मीयता रखता था। एक दिन गाववासी एकत्र हुए। उन्होंने फकीर को सम्बोधित कर कहा—'फरीद ! अकबर तुम्हे पूरा सम्मान देते हैं। वे तुम्हारी किसी बात को नही टालते। अकबर से कहकर गाव मे एक स्कूल बनवा दो।'

फरीद गाववासियो के आग्रह को टाल नही सका। किसी दिन वह सुबह सुबह अकबर से मिलने गया। वहा उसने देखा—अकबर अपनी मस्जिद मे नमाज पढ रहा है। वह चुपचाप पीछे खडा हो गया। अकबर की नमाज पूरी हुई। उसने हाथ ऊपर उठाकर कहा—खुदा ! मेरे धन को बढ़ा। मेरी सपदा को बढा। मेरे राज्य को बढा।'

फरीद ने यह सब सुना और वह वापस लौटने लगा। अकबर ने पीछे मुडकर देखा—फरीद लौटकर जा रहा है। वह दौडकर गया और फरीद का रास्ता रोककर बोला—'कैसे आये ? क्यो लौट चले ?' फरीद मुसकराता हुआ बोला—'तुम्हे सम्राट अकबर समझकर तुम्हारे पास कुछ मागने के लिए आया था। पर यहा आकर देखता हू तुम खुद फकीर हो। एक भिखारी से भिखारी को क्या मिल सकता है ? यह सोचकर बिना ही कुछ मागे लौट रहा हू।'

यह एक घटना है जो आज की परिस्थितियो के सन्दर्भ मे अपना विशेष मूल्य रखती है। मनुष्य कुछ पाना चाहता है, तथाकथित बडे लोगो से। उसको अभीप्सा रहती है कि वह सदाचार के सस्कार अर्जित करे, नैतिक-मूल्यो को प्रतिष्ठा दे और अपनी सास्कृतिक परपरा को अक्षुण्ण रखे। किन्तु जब वे देखते हैं कि देश के विशिष्ट व्यक्तियो के सस्कारो मे भी असत् आचरण के प्रतिबिम्ब उभर रहे हैं, उनकी

नैतिकता मे आस्था नही है और वे अपनी सास्कृतिक गरिमा को धूलि धूसरित कर मनमानी करने लगे हैं, तब वे लोग जीवन की ऊचाई तक पहुचाने वाली सोपान पर पाव टिकाकर भी पीछे लौट जाते हैं। उनके चिन्तन का बिन्दु रहता है—जिनके हाथ मे अधिकार है, जब वे लोग भी फिसल रहे हैं तो हम किस खेत की मूली हैं ? इस प्रकार आचारहीनता का यह स्रोत ऊपर से बहता है और नीचे तक आता हुआ उन सबको आप्लावित कर देता है, जो उसकी राह मे खडे हैं।

मस्जिद से लौटते हुए फरीद का रास्ता रोका अकबर ने, पर उससे यह नही कहा कि तुम जाओ मत। मैं अपना भिखारीपन छोड कर तुम्हारी इच्छा पूरी कर दूगा। ठीक इसी प्रकार अनैतिकता के चक्रव्यूह मे फसते हुए लोगो को देखकर भी देश के कणधार उन्हें आश्वस्त नही करते हैं कि तुम इस व्यूह मे मत फसो, हम अपनी दिशा बदल रहे है।

प्रतिकूल वातावरण और दुर्बल चित्तवृत्ति मनुष्य को जितनी तीव्रता से पतन की ओर ले जाती है, उसे थामने वाला कोई तत्त्व है तो वह है अणुव्रत। छोटे-छोटे सकल्पो के सहारे चित्तवृत्ति को पुष्ट बना प्रतिकूल वातावरण के साथ जूझने का सबक सिखाने वाला अणुव्रत आपसे इतनी ही अपेक्षा करता है कि आप किसी प्रवाह मे न बहे। हर परिस्थिति मे स्वय को स्थिर और सन्तुलित रखकर आप जीवन के हर मोर्चे पर विजय का वरण कर सकते हैं। अब समय आ गया है, जो जन-जीवन को रूपान्तरित करने मे अणुव्रत की भूमिका को अधिक स्पष्टता से निर्देशित कर सकता है।

शोषण : सामाजिक बुराई

लगभग दो दशक पूर्व मैं बगाल की यात्रा पर था। बगाल में मेरा चातुर्मासिक प्रवास था कलकत्ता। उन दिनो वहा अणुव्रत की चर्चा प्रबल थी। समाचारपत्रो मे अणुव्रत के सवाद पढकर सभी वर्गो के व्यक्तियो मे जिज्ञासा जगी। कुछ व्यक्ति प्रवचन में आते और कुछ साक्षात्कार के लिए अतिरिक्त समय लेते। उनमे कुछ बगाली मुसलमान भाई भी थे। वे एक दिन मेरे पास आकर बोले—'आचार्यजी! हम अणुव्रती बनना चाहे तो, आप बनाएगे या नही?'

आगन्तुक भाइयो के प्रश्न वाचक चिह्न को विराम देते हुए मैंने कहा—'अणुव्रत जाति, वर्ण, लिंग, रग, प्रान्त या भाषा किसी भी विभाजन मे विश्वास नही करता। वह मानव मात्र को आत्म-सयम की ओर प्रेरित करता है। आपकी इच्छा अणुव्रती बनने की होगी और आप उतना सयम कर सकेंगे तो हमे कोई कठिनाई नही होगी।'

भाइयो ने अपनी समस्या को स्पष्ट रूप मे रखते हुए कहा—बात यह है कि हम मुसलमान हैं। मुस्लिम होने के कारण हम मासाहार करते है। यद्यपि प्रतिदिन मास-भोजन करना जरूरी नही है, किन्तु हमारे 'कुरान शरीफ' के अनुसार मास वर्ज्य नही है। इसलिए परम्परा की दृष्टि से कुछ प्रसगो मे वह अनिवार्य हो जाता है। हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि आप एक मासाहारी व्यक्ति को अणुव्रती बना लेंगे क्या?'

मैंने कहा—'अणुव्रती के कई स्तर हैं। आप एक नियम के अतिरिक्त सब नियम स्वीकार कर सकते हैं तो उस सीमा तक अणुव्रती भी बन सकते हैं। मासाहार आप प्रतिदिन तो करते नहीं हैं। इसके लिए एक सीमा निर्धारित की जा सकती है। आप यह लक्ष्य बनाए कि

महीने मे कम से कम पचीस दिन मासाहार नही करेंगे और पाच दिन का जो अपवाद रखा है, उसे भी छोडने का लक्ष्य रखेंगे।'

मुसलमान भाइयो ने यह सुनकर प्रसन्नता व्यक्त की। अणुव्रत के उदारवादी दृष्टिकोण का उल्लेख करते हुए उसकी प्रशसा की। मासाहारी व्यक्ति अणुव्रती वन सकते हैं, यह एक नयी वात थी। कुछ लोगों ने यह वात सुनी, वे उलझ गये। उन्होंने बहुत तीव्रता के साथ प्रश्न उठाया—'जैन धर्म मासाहार को सर्वथा त्याज्य मानता है। मासाहारी व्यक्ति कभी धार्मिक नही हो सकता, फिर एक मासाहारी मुसलमान अणुव्रती कैसे वन सकता है ?'

आगन्तुक लोगो की आकृति पर आक्रोश का भाव स्पष्ट परिलक्षित हो रहा था। मैंने उनके उपालम्भ को सुना और उनको समझाते हुए कहा—'भाइयो ! एक व्यक्ति शोपण करता है, स्मगलिंग करता है, ग्राहको को धोखा देता है, वह धार्मिक हो सकता है, पर एक मासाहारी धार्मिक नही हो सकता, इसमे कहा तक औचित्य है ? मेरे अभिमत से मासाहारी व्यक्तिगत बुराई है, जबकि शोपण और तस्करी सामाजिक बुराई है। दोनो बुराइयो मे कोई तुलना भी नही है। फिर व्यक्ति अपनी दुवलता को स्वीकार करता है, उसे छोडने का लक्ष्य रखता है, उसकी सीमा करता है, वह धार्मिक क्यो नही वन सकता ?'
मेरे इस प्रश्न का उत्तर उन लोगो के पास नही था। वे मौन हो गये। तटस्थ समालोचको ने उदार दृष्टिकोण का स्वागत किया और उसे हर सामाजिक व्यक्ति के लिए आवश्यक वताया।

अहिंसा का मूल्य

अहिंसा जीवन का सर्वोपरि मूल्य है। सामूहिक जीवन मे व्यवस्था बनाये रखने के लिए अहिंसा का विशिष्ट उपयोग है। अहिंसक दृष्टि-कोण के बिना पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन प्रशस्त नही हो सकता। फिर भी लोग अहिंसा के बारे मे भ्रान्त रहते है। उसके सही स्वरूप को समझने वाले व्यक्ति बहुत कम होते है। जो लोग अपनी आवश्यकता-पूर्ति करने के लिए सामने वाले प्राणी के जीवन का मूल्य नही समझते, वे अहिंसा का मूल्य भी नही समझ सकते।

हमारे अजमेर-प्रवास का प्रसग है। एक दिन महाविद्यालय का एक विद्यार्थी मेरे पास आया और बोला—'आचार्यजी ! मैंने आपका प्रवचन सुना है। आपने अपने प्रवचन मे अणुव्रत की जो व्याख्या की, वह मुझे बहुत अच्छी लगी। किन्तु अणुव्रत का पहला नियम मेरी समझ मे नही आया। उसका पहला नियम है -'मैं चलते-फिरते निरपराध प्राणी का सकल्पपूर्वक वध नही करूगा।' यदि हम जानवर को सकल्प-पूर्वक नही मारेंगे तो हमारा शस्त्र चलाने का अभ्यास कैसे होगा ? हम सेना मे काम करेंगे और शस्त्र नही चलायेंगे तो देश के लिए युद्ध कैसे लडेंगे ? इसलिए आपका यह नियम अव्यावहारिक है। इसे आप हटा दीजिये।

उसकी पूरी बात सुनकर मैंने कहा—'मनुष्य को शस्त्राभ्यास करना है, इसलिए वह निरपराध प्राणियो का शिकार करे, यह बात उसकी समझ मे आ सकती है, पर मरने वाले प्राणी की समझ मे नही आती। दूसरी बात यह है कि सग्राम मनुष्य को करना है और मनुष्य

के साथ करना है। फिर पशु पर गोली चलाने से मनुष्य को मारने का अभ्यास कैसे होगा ? मनुष्य पर वार करने का प्रशिक्षण तो मनुष्य का निशाना बनाने से ही मिल सकता है। अन्यथा दूसरे प्राणी को अथवा किसी निर्जीव पदार्थ को लक्ष्य करके भी अभ्यास हो सकता है। सजीव प्राणी की ही बात है, फिर मनुष्य को लक्षित कर वह अभ्यास क्यों नहीं किया जा सकता ?

'मनुष्यों मे तुम भी एक मनुष्य हो। कोई शस्त्र चलाने का अभ्यास करने वाला व्यक्ति तुम्हें कहे—'भाई ! मेरा तुम्हारे साथ कोई द्वेष नही है। मैं तुमको मारना भी नही चाहता। किन्तु स्थिति यह है कि मुझे शस्त्र चलाने का अभ्यास करना है, इसलिए मैं तुम्हें निशाना बना रहा हू। क्या तुम उस बात को स्वीकार कर लोगे ?' विद्यार्थी मेरे इस तर्क से एक बार तो सहम गया। फिर बोला—'यह तो नहीं हो सकता।'

मैंने उसको समझाते हुए कहा—'जैसे तुम्हारा जीवन तुम्हें प्रिय है वैसे ही दूसरे प्राणियों को भी अपना जीवन प्रिय है। हिंसा हर परिस्थिति मे हिंसा ही है। आवश्यकता की परिधि मे हिंसा अहिंसा नहीं हो सकती। शस्त्र चलाने का अभ्यास करना एक बात है और यथासभव हिंसा से अपना बचाव करना दूसरी बात है। केवल प्रवाह में वहकर किसी भी सिद्धान्त की आलोचना नही करनी चाहिए। हर सिद्धान्त की पृष्ठभूमि और परिणाम के आधार पर ही उसे व्यवहार्य या अव्यवहार्य कहा जा सकता है।' विद्यार्थी ने इस तथ्य के साथ अपनी सहमति व्यक्त की और कुछ सकल्प स्वीकार किये।

अणुव्रत की गूंज

मनुष्य सतुलन और असतुलन दोनो का केन्द्र है। मनुष्य जितना असतुलित होता है, शायद ही कोई अन्य प्राणी हो। इसी प्रकार मनुष्य का सतुलन भी अपने आप मे बेजोड होता है। असतुलन की मात्रा जितनी बढती है, उसे प्रतिहत करने के साधन की खोज उतनी ही तीव्रता से की जाती है। अणुव्रत भी एक ऐसा ही अभिक्रम है जो मनुष्य के मानसिक असतुलन का नियन्ता है।

मनुष्य के असतुलित मन से बुराइया जन्म लेती है। असतुलन की समस्या शाश्वत समस्या है, इसलिए बुराइया भी शाश्वत है। फिर भी इनके स्तर मे उतार-चढाव आता रहता है। बुराई के अनुपात से समाधान के स्तर मे अन्तर रहता है।

नहर का पानी सतत बहता रहता है। बहाव को तीव्र करने के लिए उसे वेग भी दिया जाता है। 'अणुव्रत उद्‌बोधन' सप्ताह का अभिक्रम अणुव्रत-कार्य को वेग देने के लिए ही है। वास्तव मे अणुव्रत शाश्वत सत्य है। यह व्यक्ति को भेद से अभेद की ओर ले जाने वाला है। भाषा, जाति, वर्ण, प्रान्त, राष्ट्र, सम्प्रदाय आदि तत्त्व विभाजक है। इन्हे आधार मानकर चलने वाला व्यक्ति अभेद से भेद की ओर जाता है। अणुव्रत इन सब भेदो से ऊपर उठकर मनुष्य मात्र को आत्म सयम की प्रेरणा देता है।

इस बार अणुव्रत एक स्वल्पकालीन ठहराव के बाद फिर से अधिक गतिशील हुआ है। इसका निदर्शन है गगाशहर मे चल रहा 'अणुव्रत अभियान'। एक साथ सकडो सैकडो व्यक्तियो द्वारा अणुव्रत के आदर्शो पर चलने का सकल्प स्वीकार करने के बाद भी हर दिशा मे उसका स्वर अनुगूजित हो रहा है। और यह अनुगूज जिसके कानो से टकराती

है, वह व्यक्ति एक बार पीछे मुडकर देखे बिना नही रह सकता।

पिछले वर्षों की तरह इस वर्ष भी अणुव्रत उद्बोधन सप्ताह का कार्यक्रम निर्धारित किया गया है। जहा कही भी साधु-साध्विया हैं, अणुव्रत समिति और अणुव्रत के अनुरागी प्रबुद्ध व्यक्ति हैं, उन सबका यह कर्तव्य है कि वे उद्बोधन सप्ताह को सफल बनाने मे अपना पूरा योगदान दे। योगदान का एक बिंदु है—इस सप्ताह मे अधिक से अधिक व्यक्तियो को अणुव्रती बनाना। जो व्यक्ति अणुव्रती बनने मे कठिनाई अनुभव करते हैं उनके लिए प्रवेशक अणुव्रती बनाने का अभियान तो पूरी तीव्रता के साथ चलाना है। उद्बोधन सप्ताह अणुव्रती व्यक्तियो को नयी प्रेरणा और शक्ति देगा तथा जो अणुव्रती नहीं हैं उनके अन्त करण मे नैतिक मूल्यो के प्रति आस्था जागृत कर एक सशक्त वातावरण का निर्माण करेगा, ऐसी आशा है।

शाश्वत सत्य : नयी प्रस्तुति

अणुव्रत अपने आप मे एक नया दृष्टिकोण है, वैसे इसमे नया जैसा कुछ नही है। फिर भी शाश्वत सत्यो के आधार पर एक नयी प्रस्तुति है। यह एक सामयिक आवश्यकता की पूर्ति का समाधान है। जिस युग मे मूल्यो की विशेष अपेक्षा होती है, उसकी प्रस्थापना का भी एक मूल्य होता है। उस मूल्य को कुछ व्यक्ति उसी समय आक लेते हैं और कुछ उसका अकन कालान्तर मे करते हैं। अणुव्रत 'मानव धर्म' के रूप मे लोगो के सामने आया और आज वह इस रूप मे प्रतिष्ठित हो चुका है। इसकी मूल्यवत्ता देश और काल से अबाधित है। यह अपने उदय-काल मे जितना उपयोगी था, आज उससे अधिक उपयोगी है और जब तक मानव समाज दुर्बलताओ से आक्रान्त रहेगा, इसकी उपयोगिता के आगे कोई प्रश्नचिह्न नही लगेगा। किसी भी राष्ट्र का नागरिक अणुव्रत आचार-सहिता का कवच पहनकर आस्थाहीनता के आक्रमण से अपना बचाव कर सकता है।

अणुव्रत के दो काम हैं—सिद्धान्त रूप मे नैतिक मूल्यो की स्थापना और जीवन व्यवहार मे उनका प्रयोग। यह बात मैं नि सकोच रूप से कह सकता हू कि अणुव्रत सैद्धातिक स्तर पर जितना लोकप्रिय हुआ है, आचरण की दिशा मे यह इतना आगे नही बढ सका। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। क्योकि किसी भी सिद्धात को सहमति देना बुद्धि का काम है और उसे प्रयोग मे लाना जीवन के बदलाव से सम्बधित है। किसी भी अच्छी बात का समर्थन करना कठिन नही होता, कठिन होता है उसका आचरण। अणुव्रत का यह सौभाग्य है कि वह एक दृष्टि से सर्वसम्मत आदोलन के रूप मे प्रसिद्ध है। राष्ट्र के हर वर्ग के व्यक्ति ऐसे आन्दोलनो की अपेक्षा अनुभव करते हैं। चिन्तनीय बिन्दु यही है कि वह जन-सम्मत होने पर भी जीवन-सम्मत क्यो नही हुआ ?

मैं जब कभी इस पक्ष को सामने रखकर सोचता हू, इस प्रश्न के सदर्भ मे कोई समाधान खोजता हू, तब मुझे प्रतीत होता है कि सचमुच ही अणुव्रत के आचरण मे कठिनाई दो प्रकार की है। पहली कठिनाइ का सम्बन्ध व्यक्ति के साथ है और दूसरी कठिनाई बाह्य परिस्थितियो पर निर्भर करती है। वैयक्तिक दुर्बलताओ और परिस्थितिजन्य विवशताओ के आधार पर कोई निष्कर्ष निकाला जाय तो निम्नाकित बातें उभरकर सामने आती हैं—

(१) नैतिक आस्था का अभाव
(२) प्रतिरोधात्मक शक्ति के विकास की कमी
(३) मानसिक दुर्बलता
(४) बढती हुई महत्त्वाकाक्षा
(५) अन्तहीन स्पर्द्धा
(६) कृत्रिम प्रतिष्ठा की भूख
(७) नैतिक वातावरण का अभाव
(८) समाज के अर्थहीन मानदण्ड
(९) बुराई के प्रति अगुलि-निर्देश करने की कमी
(१०) अभाव और अतिभाव
(११) कानूनी जटिलताए

और भी कुछ कारण हो सकते हैं जो व्यक्ति की नैतिकता को डावाडोल करने मे निमित्त बनते हैं, पर मेरे अभिमत से सबसे बडा कारण है—नैतिक आस्था का अभाव। सामान्यत हर व्यक्ति प्रवाह पाती होता है। होगा भी क्यो नही ? युग ही जब अनुस्रोतगामिता का है तब प्रतिस्रोत मे चलने का साहस कौन करेगा ? किन्तु यह निश्चित है कि प्रतिस्रोत मे चलने की क्षमता अर्जित किए बिना अणुव्रत की जीवन व्यवहार मे क्रियान्विति बहुत कठिन है।

कठिन है, इसका अथ यह नही है कि अणुव्रत के समथको और प्रशसको मे ऐसे व्यक्तियो का अभाव ही है। अनेक व्यक्ति ऐसे हैं जो अणुव्रत की कसौटी पर खरे उतरे है। वे व्यक्ति किसी एक ही वग मे नही है। सब वर्गो मे ऐसे आदश व्यक्ति मिल जाते है। व्यापारी वग मे ऐसे अणुव्रती ह, जिनके आदर्शो की उमी समाज मे एक छाप है और

मे ऐसे अणुव्रती मिल जाएगे, जिनकी प्रामाणिकता की दृष्टि से अच्छी प्रतिष्ठा है। कई व्यक्ति तो इतने ऊचे पदो पर काम करते है, यदि वे चाह तो किसी भी मामले मे लाखो का घोटाला कर सकते है। किन्तु सामने अणुव्रत का आदर्श है जो किसी भी क्षण उनको ऐसा करने की बात सोचने ही नही देता। ऐसे न्यायाधीश है, अधिवक्ता है, अध्यापक हैं, विद्यार्थी है, श्रमिक है, और भी लोग है। उनकी स्थिति का अध्ययन करने से मेरा यह विश्वास पुष्ट होता है कि अणुव्रत को व्यवहार्य बनाया जा सकता है। ऐसा कोई कारण नही है, जिसमे व्यक्ति अपने सकल्प को न निभा सके। पर यह भी निश्चित है ऐसे व्यक्ति बहुत कम सख्या मे है। अध्यात्म की दृष्टि से सख्या कोई महत्त्वपूर्ण चीज नही है पर यह तो मानना होगा कि सख्या बल भी एक बल है।

अणुव्रत-कार्य को बढाने मे दूसरी उल्लेखनीय कमी यह रही कि इसको जीवत कार्यकर्ता कम मिले। जो मिले वे भी जीवनदानी नही मिले। कई कार्यकर्ता बहुत निष्ठाशील और सक्रिय हैं, पर पूरा समय न लगा पाने के कारण वे यथेष्ट परिणाम नही ला सके। फिर भी हम निराश नही है। यहा जो दुर्बलता की चर्चा हुई है, वह सभावना के आधार पर है। मनुष्य के सामने इतनी सम्भाव्य परिस्थितिया है जो उसे परास्त कर नैतिक पथ से विचलित कर सकती हैं। दुर्बलता मनुष्य का सहज सस्कार है फिर उसे बाह्य वातावरण का सहारा और मिल जाए तो वह बन्दर को बिच्छू काटने वाली बात हो जाती है। बन्दर का यह प्रतीक भी कितना यथार्थ है—

मर्कटस्य सुरापान, तत्र वृश्चिकदशनम् ।
तत्रापि भूतसचार यद्वा तद्वा भविष्यति ।।

पहले तो बन्दर मदिरापान कर ले, फिर उसे बिच्छू काट ले और उसके बाद भूत का उपद्रव हो जाए। फिर तो जो होना है वही होगा, उसे कोई टाल नहीं सकेगा। इसी प्रकार दुर्बल मनोवृत्ति वाले व्यक्तियो को सामाजिक विवशताए और सवैधानिक जटिलताए अपनी आस्था मे डिगा द तो कोई आश्चर्य नही है।

अणुव्रत के कार्य मे हमारे साधु-साध्विया सक्रिय है ही, सामाजिक कार्यकर्ताओ के आगे आने की अपेक्षा है। जो भी काम करेंगे, उन्ह

अपना उत्सर्ग तो करना ही होगा। समयदानी कार्यकर्ता निरन्तर नियमित रूप से अपना समय लगाए। जीवनदानी कार्यकर्ता अन्य सब प्रवृत्तियो को गौण कर अपना पूरा जीवन अणुव्रत काय के लिए समर्पित करें और जो व्यक्ति न समय दे सकते हैं, न जीवन दे सकते हैं, वे ऐसे कार्यकर्ताओ को प्रोत्साहित करें। प्रोत्साह भी किसी काय की निष्पत्ति मे एक महत्त्वपूर्ण अग है। बौद्धिक व्यक्ति अपनी चिन्तन क्षमता का उपयोग इस दिशा मे कर सकते हैं और साहित्यकार मौलिक साहित्य का सृजन कर अणुव्रत को जन-जीवन तक पहुचा सकते हैं। कुल मिलाकर अपेक्षा इस बात की है कि अणुव्रत मे निष्ठाशील व्यक्ति इसके आचरण और प्रचार दोनो पक्षो को मजबूत बनाने के लिए सकल्पबद्ध हो।

अणुव्रत का काम अब तक कम हुआ हो या अधिक, पर यह तो निश्चित है कि किसी भी परिस्थिति मे इसको गौण नही किया जा सकता। आज देश मे जैसे हालात निर्मित हो गए हैं राष्ट्र का नेतृत्व जिस रूप से सामने आया है, उनकी महत्त्वाकाक्षाओ का प्रदर्शन जिस स्तर पर हो रहा है, लोकतात्रिक मूल्यो के आगे एक प्रश्नचिह्न उपस्थित हो गया है। दल-बदल की अस्थिर राजनीति किसका हित सम्पादित कर सकेगी ? जनता का या विधायको का ? मन्त्रियो और विधायको की तोडफोड की नीति किस सरकार को स्थायित्व दे सकेगी ? गाधीजी ने सत्य और अहिंसा के जिन आदर्शों पर चलने का आह्वान किया था, क्या आज वे आदर्श आखो से ओझल नही हो गये हैं ? आज राष्ट्र के किसी भी अधिकृत और प्रतिष्ठित व्यक्ति के चरित्र हनन की जो छिछली वृत्ति पनप रही है क्या वह किसी भी व्यक्ति को अक्षत रहने देगी ? चुनाव सम्बन्धी भ्रष्टाचार से शासन पद्धति मे जो विकृतिया आयी हैं, क्या वे कभी समाप्त हो सकेगी ?

अणुव्रत काय को व्यापक और प्रभावी बनाने के लिए सामूहिक प्रयत्न का लक्ष्य सामने होने पर भी इसकी मूलभूत भित्ति को कभी विस्मृत नही किया जा सकेगा। अणुव्रत का मूल आधार है—व्यक्ति-सुधार। क्रान्ति और समग्रक्रान्ति के बुलद नारो मे व्यक्ति सुधार के घोष को अस्तित्वहीन नही बना देना है। देश को उपस्थित किसी भी

दिशा मे गति करनी होगी। अणुव्रत यही तो कहता है—

सुधरे व्यक्ति समाज व्यक्ति से, उसका असर राष्ट्र पर हो।
जाग उठे जन-जन का मानस, ऐसी जागृति घर-घर हो॥

समाज और राष्ट्र-सुधार का मूल व्यक्ति-सुधार है। हमे अणुव्रत के द्वारा व्यक्ति-व्यक्ति की चेतना को झकृत करना है।

मानवता का मानदण्ड

एक गृहस्वामी ने चार व्यक्तियो को दान मे एक गाय दी। गाय एक और उसके अधिकारी चार। विभाजन कैसे ? चारो ने मिलकर निर्णय लिया—हम एक-एक दिन क्रमश गाय का दोहन करेंगे। पहले दिन गाय अपने स्वामी के घर चारा चरकर आयी थी। प्रात काल एक व्यक्ति ने दूध दुह लिया। जब उसे खिलाने-पिलाने का समय हुआ तो वह सोचने लगा—मैं जो कुछ खिलाऊगा, उसका दूध दूसरे व्यक्ति को मिलेगा। मुझे तो अब तीन दिन दूध मिलेगा नही, मैं क्यो चारा खिलाऊ ? यह निर्णय कर उसने गाय को कुछ नही खिलाया। दूसरे, तीसरे और चौथे व्यक्ति के मनो मे भी ऐसी ही विचारधारा सक्रान्त हो गई। सबने गाय का दूध पाना चाहा, किन्तु चारे की व्यवस्था किसी ने नही की। भोजन के अभाव मे गाय का दूध ही नही सूखा, वह भूख और प्यास से तडपती हुई मृत्यु को प्राप्त हो गई। चारो व्यक्ति दूध से वचित हो गए और पूरे शहर मे उनका अपवाद हुआ। अन्य किसी भी व्यक्ति ने उनको गौ-घातक समझकर पुन दान मे गाय नही दी।

यह एक दृष्टान्त है, पर इसके दृष्टान्तिक वे सब व्यक्ति हैं, जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरो का शोषण करते हैं। स्वार्थपरता मनुष्य की सहजवृत्ति है। वह अन्य प्राणियो मे जितनी विकसित नही होती, उतनी मनुष्य मे होती है। क्योकि मनुष्य के अतिरिक्त शायद ही कोई ऐसा प्राणी हो, जो भविष्य के लिए सग्रह कर रखता हो। सग्रह की वृत्ति जितनी प्रबल होती है, व्यक्ति उतना ही क्रूर और आततायी बनता है। यदि वह वर्तमान मे जीना सीख ले, अपनी भावी पीढी के लिए अतिरिक्त अर्थ का सग्रह न करे, सात सात पीढियो की चिंता मे

नैतिक मूल्यो का अतिक्रमण न करे तो उसकी क्रूरता एक सीमा तक कम हो सकती है। क्रूरता का भाव जितना कम होगा, जीवन के पौधे पर खुशियो के फूल उतने ही अधिक आएगे।

एक मनुष्य अर्थ-सम्पन्न है, भरा-पूरा परिवार उसके पास है, सत्ता मे भी उसका हस्तक्षेप है। फिर भी वह अशात है दुखी है, सत्रस्त है, बेचैन है और असन्तुष्ट है। क्यो ? यदि वह अणुव्रत की आचार-सहिता को अपने जीवन का आदर्श बना पाता, यदि वह अपनी कृत्रिम आकाक्षाओं को आवश्यकता के धरातल पर तोल पाता, यदि समग्र मानव जाति के साथ उसका भ्रातृभाव विकसित हो पाता, यदि उसके शरीर का प्रकम्पन उसके चैतन्य को भी स्पन्दित कर देता तो आज मानव समाज का रूप कुछ दूसरा ही होता।

अणुव्रत कोई ऐसा आदर्श नही है, जिसकी ऊचाई का मनुष्य स्पर्श ही न कर सके। यह एक मानदण्ड है, मानवता है। यह एक मानक है मनुष्य की अन्तर्मुखी वृत्तियो का। यह एक दर्पण है मनुष्य का आन्तरिक रूप देखने का। मानव मानव का यह कर्तव्य है कि वह इस मानदण्ड और दर्पण को सामने रखकर अपने आपको पहचाने। यदि उसमे मानवता की प्रतिष्ठा नही है तो वह सही रूप मे मानव बनने का प्रयत्न करे।

ध्यान और भोजन

ध्यान का सम्बन्ध जितना मन से है उतना ही शरीर से है। मस्तिष्क जितना भार-मुक्त होता है, उतना ही ध्यान अच्छा होता है। मस्तिष्क का भार-मुक्त होना आमाशय, पक्वाशय और मलाशय की शुद्धि पर निर्भर है। इनकी शुद्धि के लिए भोजन पर ध्यान देना बहुत आवश्यक है। जो ध्यान करना चाहे उसके लिए पेट को हल्का रखना-कम खाना बहुत आवश्यक है।

आयुर्वेद के अनुसार भूख के चार भाग किये जाते हैं। दो भाग भोजन करना चाहिए, एक भाग पानी और एक भाग भोजन के बाद बनने वाली वायु के लिए छोड देना चाहिए।

अधिक खाने वाले व्यक्ति का अपान वायु दूषित होता है। उसमें मानसिक और बौद्धिक निर्मलता नही होती। बहुत खाने से पाचन ठीक नही होता। उसमे वायु विकार बढ जाता है। मन की एकाग्रता के लिए वायु विकार सभवत सबसे बडा विघ्न है।

ध्यान के लिए वीर्य-शुद्धि या ब्रह्मचर्य बहुत आवश्यक है। दूध, घी आदि रसो का प्रचुर सेवन करने से वीर्य पर्याप्त मात्रा मे बढता है। वह काम वासना को उत्तेजित करता है। उससे मानसिक चचलता बनी रहती है। और यदि उसका विसर्जन किया जाता है तो उसमे स्नायविक दुर्बलता बढती है। स्नायविक दुर्बलता वाले व्यक्ति के मन का सन्तुलन नही हो सकता। मानसिक सन्तुलन के अभाव मे ध्यान की कल्पना नही की जा सकती। इसीलिए रसो का प्रचुर मात्रा मे सेवन करना ध्यानाभ्यासी के लिए हितकर नही है। रस परित्याग का सम्बध अस्वादवृत्ति से है। जिसका मन स्वाद-लोलुपता मे अटका रहता है उसके लिए ध्यान करना बहुत कठिन है। ध्यानावस्था में वैषयिक अनुबन्धो से मुक्त होना बहुत आवश्यक है। वैयक्तिक अनुबधो मे स्वाद का अनुबध तीव्र होता है।

मृत्यु का आगमन

एक मछुआ समुद्र के तट पर बैठकर मछलिया पकडता और अपनी जीविका अर्जित करता। एक दिन उसके वणिक् मित्र ने पूछा—'मित्र! तुम्हारे पिता को क्या हो गया था?' मछुआ बोला—'समुद्र की एक बडी मछली उन्हे निगल गयी।' 'तुम्हारे भाई को क्या हुआ?' वणिक् के इस प्रश्न का उसने उत्तर दिया—'नौका डूब जाने के कारण वह समुद्र की गोद मे समा गया।' दादाजी और चाचाजी के सम्बन्ध म की गई जिज्ञासा का समाधान भी समुद्र ही था।

अपने अन्तिम प्रश्न मे वणिक् ने कहा—'मित्र! यह समुद्र तुम्हारे परिवार के विनाश का कारण है, इस बात को जानते हुए भी तुम यहा बराबर आते हो? क्या तुम्हें मौत का भय नही है?'

मछुआ बोला—'बन्धु! मौत का भय किसी को हो या नही, वह तो निश्चित है। तुम्हारे परिजनो मे से इस समुद्र तक कोई आया नही होगा, फिर वे कैसे दिवगत हो गये? मृत्यु कब आती है और कैसे आती है, यह आज तक कोई समझ नही पाया। फिर मैं क्यो व्यर्थ ही भयभीत होता रहू!'

वणिक् के कानो मे भगवान महावीर की वाणी गूजने लगी—'नाणागमो मच्चु मुहस्स अत्थि'—मृत्यु का आगमन किसी भी द्वार से हो सकता है। वज्र-निर्मित मकान मे रहकर भी व्यक्ति मौत की पकड से नही बच सकता। इसलिए क्षण-क्षण सजग रहने वाला व्यक्ति ही मौत के भय को अतिक्रान्त कर सकता है।

अणुव्रत एक दर्पण

कुतूहल, जिज्ञासा और तडप की पगडंडियो से गुजरती हुई विचारधारा यथार्थ के धरातल तक पहुच पाती है। व्यक्ति के सामने कुछ नया घटित होता है, उसका मन कुतूहल से भर जाता है। कुतूहल के बाद जिज्ञासा होती है। जिज्ञासा की यात्रा के बाद मन मे उसको पाने की तडप जब तक जागृत नही होती, कृतार्थता नही हो सकती। मनुष्य के मन मे आज भी सत्य के प्रति कुतूहल है, जिज्ञासा है किन्तु तडप के अभाव मे उसकी उपलब्धि नही होती। एक ऐसी तडप, जो एक क्षण के लिए भी मनुष्य को बैठने नही देती, जिस दिन जग जाती है, वह व्यक्ति सत्य के प्रति समर्पित हो जाता है। समर्पण के साथ सही क्रिया का प्रश्न जुडता है। टेलीफोन पर किसी से बात करनी है तो उसका सही नम्बर घुमाना आवश्यक है। गलत नम्बर दिन भर घुमाते रहिए, इष्ट व्यक्ति उपलब्ध नही हो सकेगा। इसी प्रकार सत्य तक पहुचने के लिए एक निश्चित मार्ग पर चलना आवश्यक है। वह मार्ग है—द्रष्टाभाव की जागृति। जो व्यक्ति तटस्थ भाव से अपने अन्त करण को देखता है, वही वास्तव मे द्रष्टा बनता है।

द्रष्टाभाव का जागरण होने से मनुष्य के मन-रूपी दर्पण पर वह सब कुछ प्रतिबिम्बित हो जाता है, जो अच्छा या बुरा किया जाता है या होता है। इस विश्व के रगमच पर जो कुछ दिखाई दे रहा है, वह हमारे मन की प्रतिक्रिया मात्र है। क्रिया अदृष्ट है और प्रतिक्रिया दृष्ट है। यही मूढता का हेतु है। जिस समय मनुष्य को उसके भीतर घटित होने वाली क्रिया का बोध हो जाएगा और वह उसके घटित होने की प्रक्रिया मे जागरूक रहेगा, बहुत-सी अनीप्सित घटनाओ को टाला जा सकता है।

अणुव्रत कोई बन्धन नहीं है, वह एक दर्पण है अथवा द्रष्टाभाव को जागृत करने की प्रारम्भिक भूमिका है। आचार-संहिता की प्रत्येक धारा आत्मालोचन की प्रशस्त पृष्ठभूमि है । भूमि उपजाऊ तभी हो सकती है जब उसे अनुकूल योग मिले। समाज की धरती को नैतिक दृष्टि से उर्वरा बनाने के लिए यह अपेक्षित है कि शेखचिल्ली की तरह अतीत और अनागत के स्वप्नलोक मे रहकर वर्तमान के धरातल पर उतरा जाए। वर्तमान जीवन को सत्य, शिव और सौन्दर्य की त्रिवेणी मे बहाए रखना ही सफल अतीत और उज्ज्वल भविष्य की पहचान है।

अणुव्रत का कवच

प्रशस्त जीवन की आधारशिला है—आत्मानुशासन का विकास। आत्मानुशासन का अभ्यास सध जाने के बाद व्यवस्था और कानूनगत अनुशासन अकिंचित्कर हो जाता है। एक सैनिक व्यक्ति अपनी सुरक्षा के लिए कवच धारण करता है। इससे उसका शरीर सुरक्षित रह सकता है पर आत्मगुणो को छलनी कर देने वाली दुर्बलता से उसका बचाव नही हो सकता। आन्तरिक शत्रुओ से अपनी सुरक्षा करने के लिए क्षमा का कवच पहनना जरूरी है। शत्रु व्यक्ति का अहित करता है। सब शत्रुओं मे प्रबल शत्रु है —'क्रोध'। इस शत्रु से आक्रान्त व्यक्ति कभी शान्ति से नही जी सकता। ज्ञानिजनो का सग्रह सुख के लिए किया जाता है, किन्तु किसी कवि का अनुभव कहता है—'ज्ञातिश्चेन अनलेन किम् ?' यदि आप ज्ञातिजनो, परिचितो या मित्रो मे रहते हैं तो आपको सताप के लिए आग की जरूरत नही होगी। यदि आपके आस पास सज्जन लोग हैं तो आपको कभी दिव्य औषध की जरूरत नही पडेगी। दुर्जन व्यक्तियो के दश सर्प से भी अधिक पीडाकारक होते हैं। ज्ञान की ऊची भूमिका पर पहुचने के बाद अर्थ अर्थहीन हो जाता है। वाग्देवी आभूषणो को अर्थहीन कर देती है और काव्य सृजन का सुख राज्य-वैभव का अतिक्रमण कर देता है।

एक सस्कृत कविता के उक्त भावबोध को जानने के बाद मेरे विचारो मे एक नयी बात आयी। विश्व मे मनुष्य सबसे अधिक मननशील प्राणी है, इसलिए विचारको ने उसके लिए ऐसे रहस्यो का उद्घाटन किया, जिनके आधार पर वह एक अभाव को भूलकर वर्तमान मे जीना सीख सके। किन्तु मनुष्य की तृष्णा इतनी प्रबल है कि वह लालसा, सग्रह और शोषण का दुष्परिणाम भोगकर भी स्वाभाविक

रूप से उनसे निवृत्त नही होता।

उक्त तथ्यो के सदर्भ मे एक तथ्य मैं अपनी ओर से जोडकर कह रहा हू कि जिस व्यक्ति के जीवन मे अणुव्रत की साधना है, उसे किसी भी आपात स्थिति का भय नही होगा। जन-जीवन अणव्रत द्वारा स्थिर किए गए मूल्यो से अनुप्राणित हो जाए तो लगभग समस्याए स्वय समाहित हो जाती हैं। अणुव्रत के कवच से क्वचित व्यक्ति दुराचार करके अपने व्यक्तित्व को खडित नही कर सकते। भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए कही से कोई भी प्रयत्न हो रहा है उसम अणुव्रत-भावना को और अधिक विकसित रूप मे लकर सामने आना है। मैं चाहता हू कि अणुव्रत अधिवेशन के अवसर पर अणुव्रत काय की व्यापकता के स्वस्थ निदशन उपस्थित किए जाए। कार्यकर्ता इस दृष्टि से सतर्क रह-कर काम करें, यह अपेक्षा है।

पहली सोपान

नैतिकता मानवीय वृत्तियो के ऊर्ध्वारोहण की पहली सोपान है। जो व्यक्ति इस सोपान पर अपने पाव टिका देता है वह धीरे धीरे ऊपर उठ जाता है। मनुष्य के मन मे नैतिक जीवन के प्रति सहज आकर्षण होता है। नैतिकता शान्ति का मार्ग है। असीमित इच्छाओ की पूर्ति मे अक्षम होने पर भी यह असीमित आनन्द का रहस्य है। शान्तिमय जीवन मे नैतिकता को पल्लव मिलता है और नैतिकता शान्ति के अकुर प्रस्फुटित करती है। अनैतिक व्यक्ति अपने शरीर को सुख दे सकता है पर आत्मा की आह को नही धो सकता। अनैतिक व्यक्ति अपने परिवार के लिए सुविधाए जुटा सकता है, पर मानसिक प्रसत्ति नामक तत्त्व को उपलब्ध नही कर सकता। अनैतिकता आनन्द का शत्रु है। अभाव की मार कितनी ही सशक्त क्यो न हो, वह व्यक्ति से उसकी पवित्रता नही छीन सकती। अनैतिकता के चक्रव्यूह मे फसा हुआ व्यक्ति अपना सब कुछ खो देता है। प्रबुद्ध मानस सब कुछ सह सकता है पर भ्रष्टता का विस्तार नही देख सकता। अनैतिक काय करने वाले व्यक्ति भ्रष्ट होते हैं, वे व्यक्ति भी इस उपाधि से मुक्त नहीं हो सकते जो भ्रष्टता को प्रोत्साहन देते हैं। महान् व्यक्तियो की झूठी आलोचना करने वाला व्यक्ति तो दोषी होता है वह व्यक्ति भी कम दोषी नही है, जो उस आलोचना को सुनने मे रस लेता है।

अनैतिकता का जीवन मे प्रवेश विविध मार्गों से होता है। जब तक नैतिक आस्था का निर्माण नही होता, एक माग को अवरुद्ध करने से अनैतिकता समाप्त नही होती। वह दूसरे मार्ग मे प्रवेश पाती है। दूसरा मार्ग बन्द होता है तो तीसरा खुल जाता है। मार्ग-परिवतन की यह प्रक्रिया अनैतिकता को नये नये परिवेश दे रही है। इसलिए जीवन

के सभी क्षेत्रो मे नैतिक मूल्यो को प्रतिष्ठा देने की अपेक्षा है। जब तक जीवन का समग्रता से विश्लेषण नही है, अनैतिकता का व्यूह छिन्न-भिन्न नही हो सकता।

अणुव्रत-आन्दोलन नैतिक मूल्यो की लम्बी यात्रा का दायित्व वहन कर चल रहा है। इस यात्रा मे जो-जो सभागी बनेंगे, उन्हे नतिकता का आलम्बन लेकर चलना होगा। जिस क्षण इस आलम्बन में शैथिल्य की प्रतीति होगी, नैतिक मूल्य उसी क्षण चटक जायेंगे। टूटे हुए को दबाना सहज है। इसलिए विघटन के कगार पर खडी नैतिकता को त्राण देने के लिए उन सबको सकल्पबद्ध होना है, जिनकी नैतिकता मे थोडी भी आस्था है। आस्था का बल ही व्यक्ति को सकट से उबार सकता है।

अणुव्रत का मूल मत्र

अणुव्रत का मूल मत्र है अहिंसा, मत्री और सद्भावना का विकास। जीवन की प्रगति मे इन तत्त्वो का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मनोविज्ञान के धरातल पर काम करने वाले लोगो का यह अनुभव पुष्ट होता जा रहा है कि व्यक्ति की मैत्री और सौहार्दपूर्ण मनोवृत्ति सृजन के क्षेत्र मे बहुत बडी उपलब्धि है। घृणा, वैमनस्य, हिंसा आदि वृत्तिया शस्त्र की भाति सहारक हैं। जिस व्यक्ति का अन्त करण मगल भावनाओ से परिपूरित रहता है, वह अपना और दूसरो का भला कर सकता है। इसके विपरीत दुर्भावना का दुष्प्रभाव व्यक्ति के अस्तित्व को समाप्त कर सकता है।

एक बार भारतीय बादशाह का मत्री चीन को यात्रा पर गया। वह वहा के सम्राट का अतिथि बना। अपने प्रवासकाल मे उसने भारत और चीन मे पारस्परिक सबन्धों तथा नीतियों के सबध मे वार्तालाप किया। एक प्रसग मे वहा के मत्री ने पूछा—'सचिववर! आपके देश म राजाओ की उम्र इतनी लम्बी कैसे होती है? हमारे यहा तो पचास साठ तक पहुचते-पहुचते दूसरे लोक के अतिथि बन जाते है।' भारतीय मत्री ने कहा—'मैं इस प्रश्न का उत्तर शाब्दिक नही, क्रियात्मक दूगा।' उसने चीन के मत्री को परामर्श दिया—'आप इस हरे-भरे वृक्ष को देखते रहिए। जिस दिन यह वृक्ष सूख जाएगा, आपको प्रश्न का उत्तर मिल जाएगा।'

चीन का मत्री अपने प्रश्न का उत्तर पाने के लिए उतावला हो रहा था। वह प्रतिदिन वृक्ष के पास जाता और उसके सूखने की बडी तीव्रता से प्रतीक्षा करता। मानसिक स्तर पर वृक्ष को समाप्त देखने के चित्र उभरे, भावनाय सप्रेषित हुईं और देखते देखते वह हरा-भरा वृक्ष जल

गया।

चीन के मत्री ने यह सब देखा पर कुछ समझ नही पाया। भारत के मत्री ने रहस्य का उद्घाटन करते हुए कहा—'आपके प्रश्न का सबध जनता की मन स्थिति से जुडा हुआ है। मैं अनुभव करता हू कि हमारे देश की जनता अपने सम्राट की दीर्घजीविता के लिए पल-पल सत्सकल्प करती है। शुभ भावना मे डूबी रहती है इसलिए हमारे राजा दीघजीवी होते है।'

अणुव्रत आचार-सहिता आपको मानवीय एकता, सह-अस्तित्व, आत्म-निरीक्षण, अभय, सयम और सहिष्णुता के सस्कार देती है। इन सस्कारो से भावित होकर आप मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा में सक्षम हो सकते है।

अणुव्रत : एक प्रकाश-स्तम्भ

तीन दशको के बाद भारत राष्ट्र को एक नया राजनैतिक वातावरण मिला है। इस वातावरण की निर्मिति मे मुख्य निमित्त क्या बना, यह बताना तो कठिन है, फिर भी कुछ परिस्थितिया ऐसी बन चुकी थी, जो प्रवहमान वातावरण मे उथल-पुथल लाने मे निमित्त बनी। अब जनता और सरकार दोनो पर विशेष दायित्व है कि इस बदले हुए वातावरण मे अपने राष्ट्र के आन्तरिक और बाह्य अभ्युदय के लिए क्या-क्या रचनात्मक काम कर रही हैं।

किसी भी राष्ट्र का सर्वांगीण विकास तभी हो सकता है, जब उसके व्यक्ति-तत्र, अर्थतत्र और राजतत्र मे नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा हो। इन सभी तत्रो का मूल व्यक्ति की आत्मा है, इसलिए अध्यात्म की भाषा मे मैं आत्मतत्र की बात करना चाहूगा।

आत्मतत्र का अर्थ है—अपना शासन। जनतत्र की परिभाषा है—*जनता का शासन*। मेरी दृष्टि मे वही जनतत्र अधिक सफल हो सकता है, जिसमे आत्मतत्र का विकास हो। आत्मतत्र विकसित नही है तो जनतत्र मे भी एकाधिपत्य, अव्यवस्था और अराजकता की स्थितिया उभर सकती है।

भारतवर्ष धर्म-प्रधान देश है। इस देश के नागरिको मे धार्मिक सस्कार कूट-कूटकर भरे हुए हैं। धार्मिक विविधता की स्थिति मे भी यहा साम्प्रदायिक सद्भाव का वातावरण है। यहा का राजतत्र भी सम्प्रदाय निरपेक्ष धर्म के मौलिक तत्त्वो को प्रश्रय देता रहा है। ऐसी स्थिति मे साम्प्रदायिक अभिनिवेश से मुक्त एक सार्वभौम आचार-सहिता के व्यापक प्रसार की अपेक्षा रहती है।

मैं जैन धर्म (तेरापथ) की आस्थाओ मे अनुबधित हू। आस्थाओ

का यह अनुबंध मेरे अनुभवों और विवेक से उत्तरोत्तर परिपुष्ट होता जा रहा है। फिर भी मैं और मेरा धर्म परिवार व्यापक दृष्टिकोण से काम करने के लिए सदा तत्पर हैं। यही कारण है, लगभग तीन दशक पूर्व अणुव्रत के नाम से हमने एक ऐसा आन्दोलन शुरू किया जो वर्ण, जाति, सम्प्रदाय, देश और भाषा के संकीर्ण दायरों से सर्वथा मुक्त है। आत्महित का अन्वेषी कोई भी व्यक्ति अणुव्रत की आचार-संहिता में मानवीय ऊंचाई का दर्शन करता है। मानव जाति में मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा कर व्यक्ति व्यक्ति को आत्म संयम की ओर प्रेरित करना अणुव्रत का उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु अणुव्रत परिवार को और अधिक सजग होना है।

इधर इन बदलती हुई राजनैतिक परिस्थितियों में एक ओर सम्पूर्ण क्रांति की चर्चा है तो दूसरी ओर जन-जीवन की दैनन्दिन समस्याओं को कम करने का आश्वासन है। इस स्थिति में आध्यात्मिक-क्रांति की बात भी अणुव्रत के साथ जुड़ी हुई है। क्योंकि नैतिक उत्थान के बिना अभ्युदयमूलक कोई भी क्रांति घटित नहीं हो सकती और न अनैतिकता के परिप्रेक्ष्य में होने वाली समस्याओं का समाधान हो सकता है। इसलिए अणुव्रत की विचारधारा का जन-जन तक पहुंचाकर वातावरण को एक नैतिक मोड़ देने की अपेक्षा है।

अणुव्रत का निर्देश

भगवान् महावीर ने एक सत्य का उद्घाटन करते हुए कहा—'मा अप्पेण बहु विलुप्पहा—थोडे से लाभ के लिए अधिक मत खोओ।' महाकवि कालिदास ने महावीर-वाणी को अपनी भाषा मे बाधकर गाया—

अल्पस्य हेतो बहु हातुमिच्छन्।
विचारमूढ प्रतिभासि मे त्वम्॥

—राजन् ! तुम थोडे के लिए बहुत खोना चाहते हो। लगता है यह तुम्हारी मूढता है।

उक्त तथ्य को अनेक व्यक्ति जानते है, समझते हैं, पर मूढता छोडने के लिए तत्पर नही होते। अणुव्रत भी जन-जन को यही मार्गदर्शन देता है। उसका निर्देश है थोडे से आर्थिक लाभ के लिए अपनी प्रामाणिकता को विवादास्पद मत बनाओ। मिलावट करना, नकली को असली बताना, रिश्वत लेना, नकल करना, काम से जी चुराना, शोषण करना आदि ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो आपको क्रिया-काल मे क्षणिक सुख का अनुभव दे सकती हैं पर परिणाम-काल मे क्या घटित होना है, यह ध्यान देने की बात है।

एक किसान भोजन के समय किसी श्रेष्ठी के घर पहुचा। पर्व का दिन था। श्रेष्ठी भोजन कर रहा था। भोजन मे स्वादिष्ट दाल बाटी को देखकर किसान के मुह मे पानी भर आया। किसान ने आतिथ्य की प्रतीक्षा की, किन्तु श्रेष्ठी भोजन करने मे तल्लीन था।

आखिर किसान ने मौन तोडा। वह बोला—'सेठ साहब ! इतने निःस्नेही कब से बन गए ? अकेले भोजन कर रहे हैं, हमारी ओर नजर

भी नही उठ रही है।' श्रेष्ठी ने किसान की तरफ देखकर साभिप्राय भाषा मे कहा—'खेत मे खलिहान होता है, उसे अकेले ही घर ले जाकर रख देते हो। क्या उस समय कभी सेठ को याद करते हो ?' किसान बोला—'सेठजी! ऐसी क्या बात है ? हम देहाती लोग इतने निरपेक्ष नही होते। उस समय आए तो आपको सब कुछ दे सकते हैं।'

श्रेष्ठी ने वणिक्-बुद्धि का उपयोग किया। अग्रिम फसल कटने पर सारा खलिहान देने का लिखित रूप से वादा करा लिया। अब सेठजी के परिवार ने किसान का पूरा सत्कार किया। भरपेट दाल-रोटी खिलाई और अपेक्षित सुविधाए जुटा दी।

किसान लौट गया और साथ-साथ अपने वादे को भूल गया। पर श्रेष्ठी उस अवसर की प्रतीक्षा मे था। खेती का काम पूरा होने पर अन्न की बोरिया घर ले जाने के समय वह किसान के सामने जा पहुचा और वादा पूरा करने का कहा। किसान स्तब्ध रह गया। पर अब करे भी क्या ? बिलखते हुए परिवार के सामने उस सारा अनाज श्रेष्ठी को सौंपना पड़ा। यह रोटी के बदले खलिहान हारने की बात सुनकर आप किसान पर तरस खा सकते हैं। पर क्या थोड़े से भौतिक लाभ के लिए आप अपनी नैतिकता को नही खो देते हैं ? अणुव्रत आपको सजग करता है—आप अभी से अपनी वृत्तियो को मोड दे देंगे तो सुखी हो जायेंगे अन्यथा उस किसान की भांति अनुताप करना पड़ेगा।

अमोघ औषध

पिंजरे मे बन्द पक्षी ने देखा—'आज गृहस्वामी कहीं विशेष उद्देश्य से जा रहा है।' उसने साहस जुटाकर पूछा—'स्वामिन् ! आज कहां जा रहे हैं?' गृहस्वामी ने उत्तर दिया—'शहर मे मुनि आए हैं, उनके दर्शन करने हेतु जा रहा हूं।' पक्षी अत्यन्त अनुनय भरे शब्दों मे बोला—'एक बात मुनिजी से यह भी पूछिए कि मुक्ति का क्या उपाय है?' गृहस्वामी ने अपने पालतू पक्षी को आश्वस्त किया और शहर से बाहर उपवन मे जाकर मुनि के दर्शन किए। शहर से समागत लोगों के बीच मे मुनि ने प्रवचन किया। प्रश्नोत्तरों का क्रम चला। अन्त में उस भाई ने अपने प्रिय पक्षी का प्रश्न उपस्थित किया। मुनि ने प्रश्न सुना और उसकी गहराई मे उतरकर निश्चेष्ट होकर लेट गये। भाई ने सोचा—मुनि अब थक गये हैं। इस प्रश्न का उत्तर अगली बार आऊंगा, तब लूंगा।

सभा विसर्जित हुई। सब लोग अपने-अपने घरों को लौट आए। वह भाई भी घर पहुंचा। पक्षी ने पूछा—'स्वामिन्! मेरे प्रश्न का उत्तर क्या है?' गृहस्वामी बोला—'जब मैंने तुम्हारा प्रश्न पूछा तो मुनि थक गए थे। वे शिथिल होकर लेट गए।' पक्षी ने उस रहस्य को समझ लिया। कुछ समय व्यतीत होने पर पक्षी निश्चेष्ट होकर पिंजरे मे लेट गया। न उसने पानी पिया और न दाना चुगा। कई घंटे यों ही बीत गए। गृहस्वामी ने देखा और सोचा—पक्षी मृत्यु को प्राप्त हो गया है। उसने पिंजरा खोला और पक्षी को बाहर निकाल दिया। देखते देखते पक्षी उड़ा और वृक्ष की डाल पर जा बैठा। वहां बैठकर उसने मुक्ति-गीत गाते हुए अपने स्वामी की ओर अभिमुख होकर कहा—'स्वामिन्! मुनि ने प्रश्न का उत्तर दे दिया और मैंने उसका प्रयोग भी

कर लिया। उसके फलस्वरूप मैं वर्षों से जिस बन्धन मे तड़प रहा था, उससे मुक्त हो गया हू। मेरी मुक्ति का हेतु बना मेरा कायोत्सर्ग।

'स्वामिन्! आप भी अनेक दुर्बलताओं के बन्धन मे बधे हैं। आपके पास चिंतन है, शक्ति है और अवसर है। कायोत्सर्ग का प्रयोग कर बन्धनमुक्ति की दिशा मे गति कीजिए। मैं आपका प्रिय सेवक हूं। अपनी स्वामिभक्ति का मूल्य मैं आपको यह प्रतिबोध देकर चुकाना चाहता हू। आप इस प्राप्त सुअवसर को व्यर्थ न जाने दें। इनका समुचित उपयोग कर मुक्त-जीवन के आनन्द का अनुभव करें।'

पक्षी ने अपने जीवन मे जिस माध्यम से सुख की अनुभूति की वह आनन्दोपलब्धि का शाश्वत हेतु है। जीवन मे जितने प्रकार के तनाव हैं, उनके पीछे सबसे बडा कारण बन्धन है। कोई व्यक्ति तृष्णा से बधा हुआ है कोई अहं से जकडा हुआ है, कोई क्रोध की ज्वाला मे झुलस रहा है और कोई माया नागिनी के दशों से आहत हो रहा है। कोई व्यक्ति सग्रह की चपेट मे है तो कोई शोषण के अश्व पर आरूढ है। ऐसे व्यक्ति विरल ही होंगे जो उक्त परिस्थितियो से आक्रान्त न हो। इस स्थिति मे अणुव्रत जन-मानस को प्रतिबोध देता है कि शारीरिक और मानसिक दोनो ओर से तनाव-मुक्ति का प्रयत्न हो। मनुष्य का मन जितना नैतिक होगा, मानसिक दृष्टि से वह उतना ही स्वस्थ रहेगा। मानसिक स्वास्थ्य शारीरिक स्वास्थ्य मे निमित्त बनता है और स्वस्थ शरीर मे स्वस्थ मन का विकास होता है। स्वास्थ्य-विज्ञान की दृष्टि से अणुव्रत को अमोघ औषध मानकर उसके आदर्शों पर चलने का सकल्प मुक्ति की दिशा मे गति का एक प्रशस्त अभिक्रम है।

ऊर्जा का केन्द्र

मनुष्य ऊर्जा का पुज है। उसके भीतर ऊर्जा का अखण्ड केन्द्र है। मनुष्य की सारी शक्तियो का सचालन उसी केन्द्र से होता है। केन्द्र जितना जागृत होता है, शक्तियो का प्रवाह उतना ही गतिशील रहता है। केन्द्र की सुषुप्ति प्रवाह मे अवरोध उपस्थित करती है। यही कारण है मनुष्य जो कुछ करना चाहता है,' कर नही पाता है। इस नही करने के पीछे उसकी भावना या पुरुषार्थ की कमी ही कारण नही है। मूलभूत हेतु है ऊर्जा-स्रोतो मे मध्यावधि अवरोध। इन अवरोधो को तोडने के लिए व्यक्ति को अपनी चेतना के प्रति जागृत होना होगा। चेतना का जागरण ही वास्तविक जागरण है। यह जागरण तब होता है जब व्यक्ति चेतना-विकास की पगडडियो या राजपथ से गुजरकर आत्म लीनता की दिशा मे प्रवेश कर देता है।

अणुव्रत आत्मलीनता का द्वार है। ढाई हजार वर्ष से भी कुछ अधिक पहले भगवान् महावीर ने महाव्रत और अणुव्रत का दर्शन दिया। इस दर्शन की पृष्ठभूमि मे समता या वीतरागता की चेतना का जागरण मुख्य उद्देश्य रहा है। जो व्यक्ति समत्व की भूमिका मे नही जाता वह जीवन का सही आनन्द नही ले सकता। अणुव्रत का आलोक उसी व्यक्ति के पथ को आलोकित कर सकता है, जिसके अन्त करण मे समता के बीज बोए जा चुके हैं।

दीपक प्रकाश करता है, बल्ब प्रकाश देता है किन्तु इस प्रकाश से वही व्यक्ति लाभान्वित हो पाता है, जो चक्षुष्मान् है। अन्धे व्यक्ति के सामने हजार दीप जला दो, क्या वह कुछ देख सकता है? स्वय का प्रकाश जिसके पास नही है, वह बाहरी प्रकाश का क्या करेगा? इसी प्रकार जो व्यक्ति अपनी चेतना के धरातल पर समत्व का आस्वाद

नही ले पाता, वह अणुव्रत को अपने जीवन की प्रयोगशाला मे नही ला सकता।

अणुव्रत शाश्वत तत्त्वदर्शन है। इसके व्यावहारिक प्रयोग की दृष्टि से पिछले पचीस वर्षों मे जो काम हुआ है, वह सन्तोषप्रद है पर पर्याप्त नही है। अपर्याप्तता का भी कारण है। पर्याप्त श्रम, पर्याप्त व्यक्ति और पर्याप्त साधन-सामग्री का योग नही जुडा। अणुव्रत कार्यकर्ताओ के पास श्रम भी हैं, व्यक्ति भी है और साधन-सामग्री भी है। पर जब तक तीनो का उचित योग नही होता है, त्रिवेणी प्रवाहित नही हो सकती।

अब अणुव्रत के दूसरे पचीस-वर्षीय चरण मे इस त्रिवेणी को अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित करना है ताकि जन जीवन अपने मन पर जमी हुई अनैतिक मूल्यों की परतो को अच्छी प्रकार धो सके। जिस दिन इन परतो की सतह क्षीण हो जाएगी, नैतिक मूल्यो का उभार स्वत हो जाएगा। अणुव्रत आपको परामर्श देता है कि सामाजिक अन्याय, शोषण और मूल्यहीनता के प्रतिरोध मे सघर्ष करने की अपेक्षा समाज मे धर्म, अध्यात्म और नैतिकता को पहुचाने का प्रयत्न करो। आप अपनी मजिल तक पहुचने मे सफल हो जाओगे।

अणुव्रत : एक सेतु

भगवान् महावीर ने चार बातें दुर्लभ बताई हैं—मनुष्य-जन्म, अध्यात्म की दीक्षा, उस पर आस्था और उस दिशा मे आगे बढ़ने के संकल्प सहित चरण-न्यास। सचमुच ही ये बातें दुर्लभ हैं क्योंकि ये पैसों से खरीदी नही जा सकती। यदि इनका कोई निश्चित मूल्य होता तो विश्व के वैभव सम्पन्न व्यक्ति इन्हें कब के खरीद लेते और अपनी भावी पीढी के लिए पर्याप्त सग्रह कर बाजार मे महगाई की स्थिति निर्मित कर देते। भगवान् महावीर ने सम्राट् श्रेणिक से पूणिया श्रावक की सामायिक प्राप्त करने का निर्देश दिया। सम्राट अपने समग्र साम्राज्य के बदले मात्र एक सामायिक उपलब्ध नही कर सके।

सामायिक महगी हो, इसमे कोई आश्चर्य नही है। क्योंकि इसका कोई दृश्य मूल्य है नही। किन्तु आज तो वे सब चीजें महगी हो रही हैं जिनका निर्धारित मूल्य है, जो सर्वत्र उपलब्ध हैं और जिनके लिए विनिमय के साधन सुलभ हैं। उन सब चीजो से अपेक्षित दो महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं—शिक्षा और चिकित्सा। रोटी मकान और कपडे की भांति शिक्षा और चिकित्सा भी जीवन की अनिवार्य अपेक्षाए हैं। शिक्षा और चिकित्सा की सुविधाए इस युग मे अधिक उपलब्ध हैं, पर ये सवसुलभ नही हैं। जितने लोगो के हितो को ध्यान मे रखकर सुविधा व्यवस्था की जाती है, उसका लाभ उससे आधे व्यक्ति भी नही ले पाते। इसका एकमात्र कारण है मानवीय वृत्तियो की अधोगामिता। मानवता के लिए कि ही मानको का अनिर्धारण अथवा निश्चित मानकों का अक्रिया-न्वयन वृत्तियो की अधोगामिता के मूल हेतु हैं।

कोई व्यक्ति गलत काम करता है, मानवीय मूल्यों का उल्लघ

करता है, उसे मार्गदर्शन देने अथवा नियन्त्रण मे लेने की प्रक्रिया जब तक प्रशस्त नही होती है तब तक व्यक्ति की नैतिक आस्थाए सुदृढ़ नहीं हो सकती। सुदृढ आस्था के अभाव मे वृत्तिया और व्यवहार दोनो ही प्रशस्त नही हो सकते।

भगवान् महावीर अध्यात्म के सशक्त प्रवक्ता थे। नैतिकता या मानवता आध्यात्मिक मूल्यो की परिणति है। अथवा यो कहा जा सकता है कि नैतिकता की पृष्ठभूमि पर ही अध्यात्म का अवतरण हो सकता है। अध्यात्म जितना दुर्लभ है उतना ही सुलभ है। अपेक्षा है उस स्थिति तक पहुचने मे सहायक सेतु का निर्माण करने की। 'अणुव्रत' एक सेतु बन सकता है यदि उसकी शब्द-रचना मे सन्निहित भावात्मक स्तर पर नैतिक मूल्यो को प्रतिष्ठा दी जाये। अणुव्रत एक सेतु बन सकता है यदि स्वार्थ-चेतना को तोडकर आत्मार्थ चेतना से सम्पर्क स्थापित हो सके। अणुव्रतनिष्ठ व्यक्ति इस दिशा मे गति करें तो एक अच्छी परिस्थिति निर्मित हो सकती है।

अणुव्रत और जीवन-व्यवहार

एक व्यवसायी ने अपने दो मुनीमो के नाम पत्र लिखे। पत्र यथास्थान पहुचे। मुनीम अपने मालिक के पत्र देखकर बहुत खुश हुए। एक मुनीम ने पत्र खोलकर पढा, उसमे अंकित निर्देशो का क्रियान्वित किया और पत्र को रद्दी की टोकरी मे डाल दिया। दूसरे मुनीम ने पत्र को मस्तक से लगाया, अपने पूजा गृह मे रखा, अगरबत्ती जलाई और पत्र की पूजा की।

कालान्तर मे मालिक काय-निरीक्षण के लिए पहुचा। उसने सारी स्थिति का अध्ययन किया। प्रथम मुनीम की पदोन्नति कर वेतनवृद्धि कर दी गयी और दूसरे मुनीम को कार्य-मुक्त कर दिया गया। प्रश्न हो सकता है—दूसरे मुनीम की क्या न्यूनता थी ? और पहले मुनीम मे क्या विशेपता थी ? व्यक्तिगत रूप से न्यूनता या विशेषता का प्रभाव मालिक के व्यवसाय पर नही पडता, पर व्यवसाय सम्बन्धी जागरूकता और लापरवाही से व्यवसाय का समग्र परिवेश प्रभावित होता है।

दूसरे मुनीम के मन मे अपने मालिक के प्रति गहरी श्रद्धा थी। पत्र की पूजा करने वाला व्यक्ति मालिक के प्रति कितना विनम्र होता है, यह कल्पना की जा सकती है। पर उस विनम्रता और पूजा से क्या लाभ जो मालिक के निर्देश को कार्यरूप मे परिणत नही कर सकती ?

अणुव्रत के प्रति आस्था रखने वाले अनेक व्यक्ति हो सकते हैं, किन्तु जब तक अणुव्रत के आदर्शों को जीवन-व्यवहार मे नहीं उतारा जा सकता, केवल आस्था से क्या होगा ? उससे व्यक्ति के व्यवहार मे परिवर्तन आयेगा ? या समाज-व्यवस्था मे परिवर्तन आयेगा ? अणुव्रत

की प्रशस्ति, अनुमोदना और प्रसार आपके लिए करणीय है, पर उससे पहली अपेक्षा है अणुव्रत को सक्रिय रूप से जीना।

साधु-साध्वियो की उपासना, प्रवचन-श्रवण, धार्मिक और आध्यात्मिक चर्चा परिचर्चा आपके लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण करती है, चेतना पर हावी होने वाले प्रमाद को तोडकर जागृत करती है, किन्तु आपकी मजिल तो वही नही है ?

क्षेत्रीय दृष्टि से मजिल कभी दूर नही होती। विचार और आचार की दूरी जब तक कम नही होती है, मजिल निकट नही हो सकती। इस दूरी को पाटने के लिए अणुव्रती भाई बहन प्रथम मुनीम का अनुसरण कर आगे बढ सकते है। अणुव्रत आचार-सहिता की एक-एक धारा को गहराई से समझकर जीवनगत करने का प्रयत्न करें। ऐसा करने से ही आपको आत्मतोष का अनुभव होगा तथा आप अपने मार्गदर्शको को भी अपेक्षित सन्तुष्टि दे सकेंगे।

आत्महित का मार्ग

एक व्यक्ति के पाव मे चोट लगी। वह कराह उठा और भगवान पर दोषारोपण करने लगा। कुछ समय बाद उसने एक व्यक्ति को देखा उसका एक पाव कटा हुआ था। वह मस्ती से काम कर रहा था और कोई गीत गुनगुना रहा था। उसके चेहरे पर रही हुई शान्ति को देख कर उसे बहुत आश्चर्य हुआ। वह उसके पास पहुचा और बोला—'भैया! तुम इतने खुश क्यो हो? तुम्हारा पाव कटा हुआ है, क्या इस अभाव की तुम्हे कोई पीडा नही है? तुम्हारे पास ऐसी क्या वस्तु है जो तुम्हे खुश रख रही है?'

वह पाव कटा व्यक्ति मुसकराता हुआ बोला—भाई, मेरे पास क्या नही है? हाथ है, आखें है, दूसरे अग हैं, बुद्धि है, केवल एक पाव ही तो नही है। जो नही है, उसे देखकर मैं दुःख का भार नही ढोता। मेरे जो है, वह बहुत है और मैं उससे सन्तुष्ट हू।

आकाक्षा-विस्तार मनुष्य का स्वभाव है। लाखो करोडो की सम्पदा का स्वामित्व पाने पर भी मनुष्य की लालसा की सीमा नही होती। बढती हुई लालसा की पूर्ति के लिए वह शारीरिक और मानसिक—दोनो दृष्टियो से यातना भोगता है। स्वर्णमय रत्नजटित बैल का स्वामी मम्मण लालसा की प्रेरणा से ही तूफानी काल रात्रि मे जबकि कोई व्यक्ति घर से बाहर रहना नही चाहता, नदी के तट पर खडा होकर, उसमे बहकर आये हुए काष्ठ-खण्डो को निकालता था। वह घोर अन्धकार, तूफानी हवा, बादलो की गडगडाहट, बिजली की कौंध और वह जगल का एकान्त भयावह स्थान मम्मण को विचलित नही कर सका। क्योकि उसके अन्त करण मे एक वैसे ही दूसरे बैल का स्वामित्व प्राप्त करने की तडप थी।

'अणुव्रत' आकांक्षाओं के सीमाकरण की दिशा है। इसका एकमात्र उद्देश्य है व्यक्ति, संयत, शांत स्वस्थ और नैतिक जीवन जीये। नैतिकता शाश्वत मूल्य है। उसके स्वरूप को हम किसी एक निश्चित परिधि में नहीं बांध सकते, पर इसकी अपरिहार्य अपेक्षा से इनकार नहीं किया जा सकता। सामयिक नैतिकता का स्वरूप बदलता रहता है, देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार वह बदलती रहती है, किन्तु नैतिकता का मूल जो संयम और अध्यात्म है वह अपरिवर्तनीय है। उसे आधार मानकर आकांक्षाओं के अल्पीकरण का मार्ग लिया जाये तो आत्महित सध सकता है।

अणुव्रत : एक अभिक्रम

व्रतो के मार्ग मे स्थान-स्थान पर बाधाए आपका स्वागत करने के लिए खडी हैं। उनका स्वागत स्वीकार कर आप आगे बढ जायेंगे तो व स्वय पराभूत होकर आपका पथ छोड देंगी। यदि आप उन बाधाओ से अभिभूत होकर गति मे अवरोध ले आयेंगे तो वे पग पग पर आपकी गति को स्खलित कर देंगी। बार-बार गति-स्खलन का अर्थ है प्रमाद को आमत्रण। प्रमत्त व्यक्ति आत्म-हित के पक्ष को गौण कर चलता है। क्योकि उसका दृष्टिकोण ही बहिर्मुखी हो जाता है। बहिर्मुखता का सबसे बडा परिणाम है—असन्तोष। असन्तुष्ट व्यक्ति कभी आत्मतोष की अनुभूति कर पाए, यह सभव नही लगता। आत्मतोष के लिए व्यक्ति को सयम और समता का अभ्यास करना होगा।

सयम दो प्रकार से होता है—बाह्य और आन्तरिक। बाह्य सयम व्यवस्थागत या विवशतागत होता है। यह सयम सहज नही होता, किया जाता है। अन्तर् की अतृप्त आकाक्षा समाहित नही होती, दबती है। थोडा-सा अवकाश पाते ही वह उभर कर सामने खडी हो जाती है। उभरने का अवकाश न हो तो वह भीतर ही भीतर कुठा का रूप ले लेती है जो अधिक घातक होती है।

आन्तरिक सयम सहज स्फूर्त होता है। इसमे न दमन होता है और न विवशता। आकाक्षाओ को दबाने का वहा प्रसग ही उपस्थित नही होता, क्योकि सयम के धरातल पर वैसी आकाक्षायें उत्पन्न ही नही हो सकती जिनके अपूर्ण रहने या दबाने की स्थिति सामने आए।

अन्त करण की प्रेरणा से सयम का जो प्रवाह बहने लगता है वह इतना तीव्र और आप्लावित हो जाता है कि परिपार्श्व की समग्र धरा उसमे आप्लावित हो जाती है। उस आप्लावन से जिस मन स्थिति का

निर्माण होता वह नैसर्गिक आत्मतोष की सर्जना करती रहेगी।

दूसरा तत्त्व है—समता। यह वीतराग दर्शन का मूलभूत आधार है। समता का अर्थ है—सुख-दुख लाभ-अलाभ, निन्दा प्रशंसा, जीवन-मृत्यु आदि द्वन्द्वों की धारा में न बहकर तटस्थ रहने की साधना। समता मनुष्य की चेतना का वह स्तर है जहा सामग्री-सापेक्ष आह्लाद और विषाद का अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

अणुव्रत संयम और समता की दिशा में आरोहण करने का छोटा-सा अभिक्रम है। यह न तो पूर्ण संयम और पूर्ण समता की दुरूहता उपस्थित करता है और न असंयम तथा विषमता की ओर धकेलता है। मानव मात्र को नैतिक मूल्यों का बोध और तदनुकूल आचरण की दिशा में आगे बढने के लिए यह प्रकाश-दीप है। अब अपेक्षा इस बात की है कि अणुव्रत के प्रकाश में अपना-अपना पथ खोजकर मनुष्य नैतिकता के मार्ग पर अनवरत गति करता रहे।

अणुव्रत से आत्मतोष

एक वृद्ध महिला की आखो मे मोतिया उतर आया। वह आखो के डॉक्टर के पास गयी। डॉक्टर ने उसको शल्य चिकित्सा का सुझाव दिया। वृद्धा एक बार तो घबराई, किन्तु समझाने के बाद ऑपरेशन कराने के लिए तैयार हो गई। डॉक्टर ने सफल शल्य-चिकित्सा कर वृद्धा की आखो को नयी रोशनी दी। जब डॉक्टर ने फीस मागी तो वृद्धा बोली—'पहले मैं अपने पडोसियो से पूछूगी कि मेरी आखें ठीक हुई हैं या नही, फिर तुम्हारी फीस दूगी।'

डॉक्टर ने कहा—'मा! आखें ठीक तुम्हारी हुई हैं या पडोसियो की? तुम्हारी खोयी रोशनी लौट आयी है तो तुम पडोसियो से क्या पूछोगी?' डॉक्टर द्वारा बहुत समझाने और सब कुछ दिखाई देने पर भी वृद्धा इस बात से सहमत नही हुई कि उसकी आखें ठीक हो गयी हैं।

मनुष्य भी युग-युग से ऋषि-मुनियो द्वारा उपदेशित होता रहा है। उपदेश सुनने की चाह उसके मन मे रहती है। साधु सन्तो के प्रति उसका विश्वास भी है। किन्तु उपदेश के अनुरूप आचरण करने के प्रश्न पर एक सुदीर्घ मौन छा जाता है। क्यो? क्या उसमे आचरण करने की क्षमता नही है? आचरण का कोई परिणाम नही आता? अथवा ऐसी कोई स्थिति है जो उसे वैसा करने से रोकती है?

इन प्रश्नो का सही सही उत्तर किसके पास है? क्या मनुष्य भी उस वृद्धा की भाति अपने पडोसियो से पूछना चाहता है कि इन ऋषि-मुनियो के उपदेशो मे कोई सार है या नही? इनके उपदेशानुसार जीवन को मोडने से कोई लाभ होगा या नही? जिन लोगो ने आज तक ऐसा किया है उन्हे क्या उपलब्धि हुई है? एक के बाद एक प्रश्न चिह्न खडे होकर मनुष्य के मन मे उलझन पैदा कर सकते हैं, पर इन

प्रश्नचिह्नों को विराम देने का साहस नही होता।

ऐसी स्थिति मे अणुव्रत का राष्ट्रव्यापी अभियान कितना कायकर हो सकता है? क्या इसके पीछे साधु साध्वियो के अतिरिक्त देश के कार्यकर्ताओ की शक्ति लग रही है? आज तक जहा जहा अणुव्रत का विशेष काय हुआ है उसको किसने व्यवस्थित रूप से सभाला है? जनेतर लोगो ने अणुव्रत का जितना अकन किया, क्या उसी अनुपात मे जैन लोग इसके प्रति उपेक्षा नही कर रहे है? अणुव्रत आन्दोलन का भविष्य क्या है? अणुव्रत समितिया कितनी सक्रिय हैं? क्या अणुव्रत को ठोस धरातल देने के लिए कार्यकर्ताओ का निर्माण हुआ है या हो रहा है? ऐसे कितने ही प्रश्न मेरे सामने आते है। प्रश्नो की उपस्थिति का मैं सजगता का प्रतीक मानता हू। किन्तु इनका क्रियात्मक उत्तर खोजने की अपेक्षा इन्ही प्रश्नो मे उलझकर निराश होने की बात पर मेरी सहमति कभी नही हो सकती।

मैं पुरुषार्थ मे विश्वास करता हू। व्यक्ति का पुरुषाथ फलित होता है, यह तथ्य निर्विवाद है। पर जब व्यक्ति काय करने से पहले या क्रियाकाल के प्रारम्भ मे ही व्यापक परिणाम की आकाक्षा करने लगता है, उसकी आशा लता पर तुषारपात हो जाता है। यह कुआ खोदना शुरू करते ही पानी पीने की लालसा जैसा क्रम है।

अणुव्रत निष्ठ व्यक्ति और कुछ पा सके या नहीं, प्रामाणिक जीवन जीने से मिलने वाला आत्मतोष उसकी सबसे बडी उपलब्धि है। अणुव्रतकाय करने मे मुझे आत्मतृप्ति का अनुभव होता है। ऐसा ही अनुभव अणुव्रती व्यक्ति, अणुव्रती कायकर्ता और अणुव्रत-काय मे रुचि रखने वाले लोगो को हो तो अणुव्रत अभियान की गति और अधिक तीव्र हो सकती है।

नैतिकता का प्रकाश

सेवाल से भरे हुए तालाब मे अन्य जल जन्तुओ के साथ एक कछुआ भी अपने परिवार के साथ रहता था। एक दिन वह घूमता-घूमता उस स्थान पर पहुच गया, जहा से सेवाल हटी हुई थी। कछुए ने गर्दन बाहर निकाली और वह अपने आपको भूल गया। उसने अपने सामने देखा—पूर्ण चन्द्रोदयी पूर्णिमा की रात्रि का भव्य दृश्य। नीला आसमान हसते हुए सितारे, शीतल चादनी बरसाता हुआ चाद, मद मद बहती हुई हवा और तालाब के किनारे खडे ईषत् चचल वृक्षो की श्रेणी। और भी कुछ चीजें ऐसी थी, जिन्हे देखकर कछुआ मुग्ध हो गया।

वह कुछ क्षण तक निर्निमेष उस मोहक दृश्य को निहारता रहा। सहसा उसे अपने परिवार की याद आ गयी। उसने सोचा—मैं एक नया ससार देख रहा हू जो मुझे अपनी आखो मे समाता हुआ प्रतीत होता है। इस प्रतीति मे मैं अनिर्वचनीय आह्लाद मे खो रहा हू। काश, मैं पूरे परिवार को इस सुन्दर ससार मे ले चलू!

कछुआ प्रसन्नमन होकर अपने परिजनो, स्वजनो और मित्रो के पास पहुचा और उनके सामने अपने नये ससार की चर्चा करने लगा। उन लोगो ने उसकी बात पर कोई ध्यान नही दिया। कछुए का आग्रह बहुत प्रबल था, इसलिए उसके कुछ साथी वहा जाने के लिए तैयार हो गए।

कछुआ उन्हें साथ लेकर उस स्थान पर पहुचा, जहा उसे एक दिव्य ससार का दर्शन हुआ था। किन्तु हवा के एक झोंके ने सेवाल को पुन छितरा दिया और एक सघन आवरण की उपस्थिति ने कछुए के आखो-देखे सत्य को असत्य प्रमाणित कर दिया।

नैतिक मन का जागरण

सन्यासी की कुटिया मे एक चूहा रहता था। वह नि शक भाव से कुटिया मे घूमता और कभी-कभी उसके बाहर भी चला जाता। एक दिन वह ज्यो ही कुटिया से बाहर गया, उसने अपने सामने आता हुआ एक विलाव देखा। चूहा अप्रत्याशित रूप से भयाक्रान्त हो गया और उल्टे पाव कुटिया मे घुस गया। विलाव उसकी ओर झपटा, तब तक वह सन्यासी की गोद मे कूद पडा और कातर दृष्टि से इधर-उधर देखने लगा। स-यासी को दया आ गयी। उसने मत्रोच्चारणपूर्वक कहा—'मार्जारो भव !' चूहा देखते देखते एक मोटा विलाव हो गया। अब वह कुटिया के बाहर भी निभय होकर घूमता।

एक दिन वह सन्यासी के पास बैठा धूप मे खेल रहा था। पास की गली से भौकते हुए कुत्ते आए। बिलाव उन्हे देखकर घबरा गया। स-यासी ने उसकी घबराहट समाप्त करने के लिए कहा—'सारभयो भव !' विलाव कुत्ता बन गया। कुत्ता भी एक दिन सिंह से अपना बचाव करने के लिए सन्यासी के पास पहुचा। स-यासी ने करुणा की और वह सिंह बन गया।

जगल का उन्मुक्त वातावरण और सन्यासी का अनियन्त्रित स्नेह और शक्ति का उ माद। एक दिन सिंह सन्यासी के लिए आक्रा ता बन गया। सन्यासी ने उसके आक्रामक भाव का समझते ही मत्रोच्चारण पूवक कहा—'पुनर्मूषको भव !' दहाडता हुआ सिंह एक क्षण मे चूहा बन गया। अब उसकी आखो मे उसी कातरता और विवशता के बिम्ब थे किंतु वे सन्यासी की आखो मे प्रतिबिम्बित नही हो सके।

उपकारक के प्रति अपकारमूलक प्रवृत्ति का ज म तभी होता है

नैतिकता का प्रयोग

अध्यात्म धर्म और नैतिकता के प्रयोग करने के लिए किसी अवसर की खोज मे भटकने की जरूरत नही है। जिस क्षण प्रयोग करने का सकल्प जागृत हो, अपने जीवन को उसी दिशा मे बहा देना चाहिए। 'को आउरस्स कालो ?' बीमार व्यक्ति डॉक्टरी परीक्षण और औषध प्रयोग के लिए समय की प्रतीक्षा करता रहे तो उसे प्राणो से हाथ धोने पड सकते हैं।

इस तथ्य को समझने पर भी जनमानस मे नैतिकता के प्रयोग करने की तत्परता परिलक्षित नही हो रही है। क्यो मुझे ऐसा लगता है कि अनैतिकता के दुष्परिणामो से लोगो की यथार्थ अवगति नही है। यदि व्यक्ति यह समझ ले कि अनैतिक मनोभाव आतक और अहित मे निमित्त बनते हैं तो वह नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा के लिए सजग हो सकता है।

नैतिकता जीवन की सही दिशा है। यद्यपि देश और काल के अनुसार नैतिकता की परिभाषा बदलती रहती है, फिर भी वह एक ऐसा तत्त्व है जो सामाजिक और सास्कृतिक मूल्यो की यात्रा के माध्यम से अध्यात्म की ऊचाइयो तक ले जा सकता है।

भारतीय सस्कृति मे शान्त, सन्तुष्ट, पवित्र और आनन्दमय जीवन ही जीवन माना गया है। इस जीवन की उपलब्धि के लिए सयम, आत्मानुशासन, साधना और स्वास्थ्य की अपेक्षा रहती है। इस अपेक्षा की पूर्ति करने के लिए मनुष्य को व्रतो की यात्रा करना जरूरी है।

व्रत वह भूमिका है जहा पहुचकर सयम का मूल्य समझा जा सकता है। सयम के सस्कार जन्म के साथ दिए जा सकते हैं, अर्जित किए जा सकते हैं और जीवन मे समाहित किए जा सकते हैं। व्रत या सयम के

सस्कारो की चेतना जब तक परिपुष्ट नही होती है, व्यक्ति चलता-चलता स्खलित हो जाता है।

कुछ व्यक्ति व्रत को वन्धन के रूप मे देखते हैं। व्रत वन्धन बन सकता है, उन व्यक्तियो के लिए जो सयम का मूल्य नही समझते, व्रतो को अन्त करण की प्रेरणा से स्वीकृति नही देते और अध्यात्म के प्रति आस्थाशील नही होते। सयम का मूल्य समझ मे आने के बाद व्रत-स्वीकरण के लिए कुछ करना नही पडता। वह सहज प्राप्त होता है।

अणुव्रत नैतिक मूल्यो के प्रयोग का आन्दोलन है। यदि अणुव्रती भाई-बहनें प्रयोग के मूल्य को समझकर उसे अपने जीवन मे स्थान दें तो उन्हे अतिरिक्त आत्मतोष का अनुभव हो सकता है। प्रयोग के अभाव मे व्रतो मे भी रूढता आ जाती है। रूढता न सामाजिक स्तर पर काम्य है और न धार्मिक स्तर पर। आदर्श और व्यवहार के बीच की शृखला के रूप मे प्रस्तुत अणुव्रत विचार और क्रिया के बीच मे शृखला का काम करे, यह इस समय की सबसे बडी अपेक्षा है।

नैतिक मूल्यो की यात्रा

नैतिक मूल्यो की यात्रा आस्था और कर्म की नयी प्रक्रिया है। इस यात्रा मे मजिल तक पहुचने की पहली शर्त है—आदर्श के प्रति सम्पूर्ण समर्पण। समर्पित चेतना मे एक रासायनिक सवेदना होती है। सवेदनशील व्यक्ति ही हित मे प्रवृत्ति और अहित से निवृत्ति कर सकता है। वैयक्तिक हित-सम्पादन के लिए दूसरे के हितो का विघटन आस्थाहीनता की निष्पत्ति है। आस्था के साथ आस्थाहीनता की स्थिति विसगति है। यह विसगति जब तक समाप्त नही होगी नया निर्माण नही हो सकेगा।

किसी कारागृह के अधिकारियो को आदेश मिला—पुरानी जेल कैदियो के लिए अनुकूल नही है। आवश्यक सुविधाओं का ध्यान रख कर नयी जेल का निर्माण कराना है। अधिकारी वर्ग ने कुछ दिनो के चिन्तन के बाद नयी जेल बनाने का निर्णय लिया। उसी समय दूसरा आदेश आया—पुरानी जेल की सामग्री से ही नयी जेल का निर्माण करना है ताकि मलवे के नाम पर सामग्री नष्ट न हो। कुछ समय बाद तीसरा आदेश मिला—जब तक नयी जेल बनकर तैयार न हो जाए, पुरानी जेल को सुरक्षित रखना है क्योकि नयी व्यवस्था के न होने तक सभी कैदियो को यही रखना पडेगा।

अधिकारी हैरान हो गए। पुरानी जेल के सामान से नयी जेल बन कर तैयार न हो तब तक पुरानी जेल की सुरक्षा, यह विसगति व्यावहारिक नही है। एक व्यक्ति जो कि सत्तारूढ है, उसके उखडे बिना वहा दूसरे व्यक्ति का अस्तित्व टिक नही सकता। अधकार न मिटे और प्रकाश छा जाए, यह एक असभव स्थिति है। इसी प्रकार अनैतिकता बरकरार रहे और नैतिक मूल्य प्रतिष्ठित हो जाए, यह चिंतन यौक्तिक

रही है। अनास्था और अविश्वास की लगाम हाथ मे लेकर कोई भी चले, नैतिकता का रथ आगे नही बढ सकेगा।

जीविषा प्राणिमात्र का स्वभाव है। जो जीना चाहता है, उसे जीवनयापन के लिए सुविधाए भी जुटानी होती है। एक व्यक्ति आदर्श की भूमिका पर खडा होकर सुविधाए जुटाता है। एक व्यक्ति विलासिता के धरातल से वस्तु-सग्रह मे प्रवृत्त होता है। प्रवृत्तिगत समानता होने पर भी उन दोनो व्यक्तियो की मन स्थिति मे बहुत अन्तर है। वृत्तियो की उच्चता तक पहुचने के लिए अणुव्रत एक माध्यम है। जिन लोगो को इस माध्यम का आलम्बन प्राप्त हो जाता है, वे सुविधाओ की अल्पता या बहुलता मे नही उलझते। जीवन यात्रा मे जहा-जहा उन्हे विसगति का आभास होता है, उसे तोडकर वे जीने का स्वस्थ उपक्रम उपलब्ध कर लेते हैं।

नैतिकता का अनुबन्ध

धार्मिक जीवन की पूर्व भूमिका है नैतिकता। नैतिकता के धरातल पर ही अध्यात्म का प्रासाद खडा हो सकता है। नैतिकता की परिभाषा के सबध मे चिन्तको की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाए हैं। कुछ व्यक्ति सामाजिक मर्यादाओ को नैतिकता की परिधि मे लेते हैं और कुछ व्यक्ति वैयक्तिक सन्दर्भ मे उसकी परिकल्पना करते हैं। प्रसिद्ध चित्रकार पिकासो के बारे मे यह अनुश्रुति है कि वह अपने प्रति गहरा प्रामाणिक व्यक्ति था। किसी समय उसका एक चित्र दस लाख रुपयो मे बिका। ग्राहक उस चित्र की वास्तविकता के सम्बन्ध मे जानकारी लेने के लिए पिकासो की पत्नी के पास पहुचा। पत्नी बोली, 'यह चित्र बिलकुल सही है। पिकासो ने मेरी उपस्थिति मे ही इसको तैयार किया था।' मार्ग मे उस व्यक्ति की पिकासो से भेंट हो गयी। विश्वास को पुष्ट करने के लिए उसने पिकासो के सामने वही बात कही। पिकासो बोला, 'यह चित्र असली नही है।' ग्राहक असमजस मे पड गया। पत्नी के साक्ष्य देने पर पिकासो बोला, 'यह चित्र मैंने अपनी पत्नी के सामने बैठकर तैयार किया है यह बात शत-प्रतिशत सही है। किन्तु इसकी मूल कृति मेरे पास है, यह उसकी प्रतिकृति है, इसलिए मैं इसे वास्तविक नही मान सकता। मूल चित्र की प्रतिकृति मैं करू या कोई दूसरा करे, वह सही कैसे हो सकती है।'

नैतिकता जीवन मे नयी प्राण-धारा का सचरण करती है। लोक चेतन को परिष्कृत करने के लिए यह अपेक्षा अनुभव हो रही है कि जन जन नैतिकता के मूल्य को समझे। जब तक नैतिक और आध्यात्मिक आस्थाओ का निर्माण नही होगा मनुष्य सुख से जी नही सकेगा। नैतिक मूल्यो तक पहुचने के लिए अणुव्रत सेतु का काम कर सकता है।

नैतिक मूल्यों का अनुबन्ध सत्य के साथ होता है। सत्य सार्वकालिक, सार्वदेशिक और सार्वजनिक होता है। सत्य से मानवता को त्राण मिलता है। मानवता के आधार पर ही उच्चता का मानदण्ड प्रतिष्ठित हो, यह आवश्यक है। जिस समय मानवता का प्रकाश विश्व के कण कण को आलोकित करेगा, उसी समय यह जाना जा सकेगा कि नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य जीवन-विकास में कितने सहयोगी हैं।

नैतिकता का विस्तार

अणुव्रत मनुष्य का व्रत है। मनुष्यता सहज मानवीय गुणो का अवगम है। जहा मनुष्य के व्यवहारो मे अपने और पराये की भेदरेखा उभ आती है, वहा सहजता का लोप हो जाता है। जिस काय के लिए मनुष्य को यह सोचना पडे कि मैं अमुक काम सबके सामने करू या नही, वहा असहजता हो जाती है। असहज प्रवृत्तियो मे क्रियाकाण्ड को बल मिल सकता है, पर चरित्र का पोषण नही होता। चरित्र को पुष्ट करने लिए करणीय और अकरणीय का विवेक अपेक्षित है। जो मनुष्य अकरणीय काय से निवृत्त होकर स्वय को करणीय से जोड लेता है, अग्राह्य को छोडकर ग्राह्य को ग्रहण करता है तथा अवाच्य से अपना बचाव कर वाच्य मे अपनी वाणी का नियोजन करता है, जिस व्यक्ति मे मनुष्यता होती है, वह वहा जाता है मानवीय मूल्यो की सौरभ से वहा का वातावरण सुरभित बना देता है।

गुरु नानक किसी गाव मे गए। गाववासी एकत्रित हुए। गुरु नानक प्रवचन करने लगे। लोगो ने शोर मचाया, गालिया दी, पत्थर फेंके और नानक को बुरा भला कहा। नानकजी ने शातभाव से सब कुछ सुना। जाने से पूर्व उन्होने ग्रामवासियो को सम्बोधित कर कहा— 'तुम लोग आबाद हो जाओ।' गाववालो को आश्चय हुआ। उनसे भी अधिक आश्चय नानक के भक्तो को हुआ। नानक वहा से चल और दूसरे ग्राम मे पहुचे। गाववासियो ने बहुत स्वागत सत्कार किया भारतीय ऋषि मुनियो की भाति उनको आतिथ्य दिया, प्रवचन की व्यवस्था की और शाति के साथ उनको सुना। गुरु नानक प्रस्थान से पूर्व जनता को आशीर्वाद दे रहे हैं। आशीर्वाद की शब्दावली एक वाक्य है—'तुम लोग उजड जाओ।'

नानक के शिष्यों ने उनको घेर लिया और आतुरता व्यक्त करते हुए कहा 'गुरुदेव ! आज आपको क्या हो गया ? मतिभ्रम हुआ है या जान बूझकर ऐसा कर रहे है ?' नानक ने अपने कथन का रहस्योद्घाटन करते हुए बताया—'पिछले गाव के लोगो को मैंने एक स्थान पर बसने को कहा, क्योकि ये जहा जाएगे ऐसी गन्दी हरकतें करेंगे। इनकी बुराई का सक्रमण दूसरो मे न हो इसलिये मैंने कहा कि आबाद हो जाओ। इस गाव के व्यक्ति बडे नेक हैं। जहा भी ये जाएगे, अच्छाई फैलाएगे, इसलिए मैंने इनसे कहा—तुम उजड जाओ, बिखर जाओ, तुमसे इस ससार का भला होने वाला है।'

मै भी यह चाहता हू कि जिन लोगो का मानवता मे विश्वास है, नैतिकता मे जो आस्थावान हैं व विश्व के कोने-कोने मे बिखर जाए और मानवता की अलख जगाए।

स्वत्व का विस्तार

एक सूफी फकीर के पास किसी समय एक सम्राट् पहुचा। उसके मन मे परमात्मा से मिलने की चाह थी। इससे पहले भी वह कई सतो और सन्यासियो के पास पहुच चुका था, पर इच्छा पूरी नही हुई। सूफी फकीर ने सम्राट् को दूसरे दिन आने के लिए कहा। निश्चित समय पर सम्राट् उपस्थित था। फकीर ने कहा, परमात्मा से मिलना है तो पहले अपनी राजधानी मे सात दिन तक भीख मागो, फिर आना।' सम्राट् स्तब्ध रह गया। जिस शहर का वह शासक है, जिस शहर मे वह प्रति दिन अपने हाथो मे देता आया है, उसी शहर मे जाकर घर-घर के आगे हाथ पसारना ! यह काम उससे नही हो सकेगा। उसने कहा, 'किसी दूसरे शहर मे जाकर भीख माग लूगा, यहा तो यह सब नही हो सकेगा।' फकीर ने कहा, 'तब परमात्मा के दर्शन नही हो सकेंगे।'

सम्राट् विवश था। उसने सहमते-सहमते अपनी स्वीकृति दी। सात दिन तक भीख मागते-मागते उसका अहकार गल गया। अहकार टूटा और परमात्मा प्रकट हो गया। परमात्मा और है क्या ? अहकार और ममकार रूप वाले नागो से मुक्त आत्मा ही परमात्मा है। जो व्यक्ति इस नागपाश को तोड देता है, वह स्वय परमात्मा बन जाता है। अन्यथा परमात्मा के पथ मे बाधाए खडी हो जाती हैं।

किसी भी समय किसी भी व्यक्ति के जीवन मे नैतिकता का ह्रास होता है, उसका मुख्य कारण अहकार और ममकार है। अह की प्रेरणा से व्यक्ति 'अकड करिस्सामि'—आज तक किसी ने नही किया, वह काम मैं करूगा, इस चिंतनधारा से प्रभावित होता है और नैतिक अनैतिक का विमर्श किए बिना ही गलत काम कर बैठता है। इससे गलत अहकार को पोषण मिलता है और गलतियो का प्रत्यावर्तन होता

रहना है।

जिस व्यक्ति के स्वत्व की सीमाएं जितनी बड़ी होंगी, वह दूसरा के स्वत्व का अपहरण करेगा। दूसरों के स्व को स्वयं मे मिलाने से उसके प्रति ममकार का अनुभव होता है, मेरा शरीर, मेरा परिवार, मेरा घर, मेरा व्यवसाय, मेरा समाज, मेरा देश, मेरा राष्ट्र—इस प्रकार ममत्व का विस्तार होता है और व्यक्ति इन सबके लिए उचित अनुचित सब कुछ करने के लिए तैयार हो जाता है।

अहंकार और ममकार के तटों को तोड़े बिना यह नैतिकता की स्रोतस्विनी जन-जन को लाभान्वित नहीं कर पाएगी। जब तक अहं नहीं गलता है, ममत्व नहीं टूटता है, व्यक्ति की चेतना में नैतिकता के प्रतिबिंब धुंधले रहेंगे, इसलिए बन्धुओ! अस्मिता तोड़ो, ममत्व तोड़ो और अपने समुज्ज्वल चैतन्य की अनुभूति के लिए तैयार हो जाओ।

अनुकरण किसका ?

भारतवर्ष के लोग अनुकरणप्रिय अधिक हैं। कोई भी नयी बात सामने आती है, वे आंख मूंदकर उसके पीछे पड़ जाते हैं। खान पान, रहन सहन और शिक्षा के क्षेत्र में पाश्चात्य देशों का अनुकरण बहुत तीव्रता से हुआ है और होता जा रहा है। इससे स्वतंत्र चिंतन की क्षमता क्षीण होती है और नये उन्मेषों का द्वार बन्द हो जाता है। समय का प्रवाह व्यक्ति को तिनके की भांति अपने साथ बहा ले जाए और वह हाथ-पांव हिलाए बिना बहता चला जाए, यह जड़ता है, किसी भी परिस्थिति पर चिंतन किए बिना उसे स्वीकार कर लेना चिंतन शक्ति का दारिद्र्य है।

किसी जंगल में वृक्ष के नीचे एक लोमड़ी सो रही थी। सरसर हवाएं चली और वृक्ष से टूटकर एक अखरोट उस पर गिर पड़ा। लोमड़ी चौंककर उठी और पीछे मुड़कर देखे बिना ही दौड़ने लगी। मार्ग में एक खरगोश से भेंट हुई। बेतहाशा भागती हुई लोमड़ी को देखकर वह चिल्लाया—'मौसी! क्या हुआ? आज यह दौड़ा-दौड़ क्यों मचा रखी है?' लोमड़ी हड़बड़ाती हुई बोली—'अरे भाई! रोको मत, पीछे आकाश टूटकर गिर पड़ा है। यह तो मैं थी, जो दौड़कर खतरे से बाहर निकल गयी। अब भी खतरा पीछे है, रुकने का अवकाश नहीं है।' खरगोश ने यह बात सुनी और वह भी लोमड़ी के साथ दौड़ने लगा।

आगे उन्हें एक गीदड़ मिला। उसने सोचा—न यहां कोई शिकारी है और न कोई दूसरा उपद्रव। फिर यह दौड़-धूप क्यों? वह उनके मार्ग में खड़ा हो गया और बोला—'आज मौसी भानजे किसकी दावत पर जा रहे हैं?' खरगोश ने उसकी बात सुनकर घिघियाते हुए कहा—

'तुम मजाक सूझ रही है और हमारी जान खतरे मे है। देखता नही तू, आकाश टूटकर गिर पड़ा है।' इतना सुनते ही गीदड़ के कान खड़े हो गए और वह भी बिना कुछ कहे उसके साथ हो गया।

लोमड़ी दौड़ती हुई घने जगल के मध्य मे गुजरी। वहा उसे कई आश्चर्य पशु मिले। जिसने भी आकाश टूटकर गिरने की बात सुनी, वह सिर पर पाव रखकर भागने लगा। जगल मे दावानल के प्रकोप से भी अधिक भयकर दुर्घटना का आभास होने लगा। आकाश कहा गिरा ? कैसे गिरा ? यह पूछने के लिए किसी को अवकाश नही था। बस एक ही शब्द-प्रवाह बह रहा था —'आकाश गिर गया, आकाश गिर गया !' चारो ओर भय, आशका, चीख और चिल्लाहट —'भागो ! भागो ! आकाश गिर गया !'

पशु जगत मे ऐसी घटना घटित हो सकती है किन्तु मनुष्य-जगत् मे ऐसा होने लगा तो पशुता और मनुष्यता की दूरी समाप्त हो जाएगी। इसलिए स्वतन्त्र चिंतन की क्षमता का विकास करना बहुत आवश्यक है। मनुष्य की मेधा अन्य प्राणियो की तरह विशिष्ट है। उस मेधा का उपयोग मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा मे होता है तो उसकी सार्थकता है अन्यथा प्रवाहपातिता के अच्छे बुरे परिणाम को रोका नही जा सकता। अनुकरण उन्ही बातो का होना चाहिए, जिनसे जीवन को सही दिशा मिले। अन्धानुकरण व्यक्ति और समाज दोनो के लिए घातक होता है। गभीर चिन्तन की क्षमताओ को अर्जित करने वाला समाज ही अपने देश को नयी-नयी प्रतिभाए दे सकता है।

अनुकरण किसका ?

भारतवर्ष के लोग अनुकरणप्रिय अधिक हैं। कोई भी नयी बात सामने आती है, वे आंख मूंदकर उसके पीछे पड़ जाते हैं। खान पान, रहन-सहन और शिक्षा के क्षेत्र में पाश्चात्य देशों का अनुकरण बहुत तीव्रता से हुआ है और होता जा रहा है। इससे स्वतन्त्र चिंतन की क्षमता क्षीण होती है और नये उन्मेषों का द्वार बंद हो जाता है। समय का प्रवाह व्यक्ति को तिनके की भांति अपने साथ बहा ले जाए और वह हाथ-पांव हिलाए बिना बहता चला जाए, यह जड़ता है, किसी भी परिस्थिति पर चिंतन किए बिना उसे स्वीकार कर लेना चिंतन-शक्ति का दारिद्र्य है।

किसी जंगल में वृक्ष के नीचे एक लोमड़ी सो रही थी। सर सर हवाएं चली और वृक्ष से टूटकर एक अखरोट उस पर गिर पड़ा। लोमड़ी चौंककर उठी और पीछे मुड़कर देखे बिना ही दौड़ने लगी। मार्ग में एक खरगोश से भेंट हुई। बेतहाशा भागती हुई लोमड़ी को देखकर वह चिल्लाया—'मौसी ! क्या हुआ ? आज यह दौड़-दौड़ क्या मचा रखी है ?' लोमड़ी हड़बड़ाती हुई बोली—'अरे भाई ! रोको मत, पीछे आकाश टूटकर गिर पड़ा है। यह तो मैं थी, जो दौड़कर खतरे से बाहर निकल गयी। अब भी खतरा पीछे है रुकने का अवकाश नहीं है।' खरगोश ने यह बात सुनी और वह भी लोमड़ी के साथ दौड़ने लगा।

आगे उन्हें एक गीदड़ मिला। उसने सोचा—न यहां कोई शिकारी है और न कोई दूसरा उपद्रव। फिर यह दौड़-धूप क्या ? वह उनके मार्ग में खड़ा हो गया और बोला—'आज मौसी भानजे किसकी दावत पर जा रहे हैं ?' खरगोश ने उसकी बात सुनकर घिघियाते हुए कहा—

'तूने मजाक सूझ रही है और हमारी जान खतरे मे है। देखता नही तू, आकाश टूटकर गिर पडा है।' इतना सुनते ही गीदड के कान खडे हो गए और वह भी बिना कुछ कहे, उसके साथ हो गया।

लोमडी दौडती हुई घने जगल के मध्य मे गुजरी। वहा उसे कई आरण्यक पशु मिले। जिसने भी आकाश टूटकर गिरने की बात सुनी, वह सिर पर पाव रखकर भागने लगा। जगल मे दावानल के प्रकोप से भी अधिक भयकर दुघटना का आभास होने लगा। आकाश कहा गिरा? कैसे गिरा? यह पूछने के लिए किसी को अवकाश नही था। बस एक ही शब्द-प्रवाह बह रहा था—'आकाश गिर गया, आकाश गिर गया।' चारो ओर भय, आशका, चीख और चिल्लाहटे—'भागो! भागो! आकाश गिर गया!'

पशु जगत मे ऐसी घटना घटित हो सकती है किन्तु मनुष्य-जगत् मे ऐसा होने लगा तो पशुता और मनुष्यता की दूरी समाप्त हो जाएगी। इसलिए स्वतत्र चिंतन की क्षमता का विकास करना बहुत आवश्यक है। मनुष्य की मेधा अन्य प्राणियो की तरह विशिष्ट है। उस मेधा का उपयोग मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा मे होता है तो उसकी सार्थकता है अन्यथा प्रवाहपातिता के अच्छे बुरे परिणाम को रोका नही जा सकता। अनुकरण उन्ही बातो का होना चाहिए, जिनसे जीवन को सही दिशा मिले। अन्धानुकरण व्यक्ति और समाज दोनो के लिए घातक होता है। गभीर चिन्तन की क्षमताओ को अर्जित करने वाला समाज ही अपने देश को नयी-नयी प्रतिभाए दे सकता है।

द्वंद्व-मुक्ति

मनुष्य के पास दो प्रकार की शक्ति होती है—सृजनात्मक और ध्वंसात्मक। सृजन सबको प्रिय है, पर वह है बहुत कठिन। ध्वंस कोई नहीं चाहता, फिर भी वह स्वाभाविक है। इस स्वाभाविकता को बदलने के लिए मानसिक रूप से दृढ संकल्प की अपेक्षा है। संकल्पनिष्ठ व्यक्ति ध्वंसमूलक प्रवृत्तियों से ऊपर उठकर सृजनात्मक शक्ति से संपन्न बन सकता है। शक्ति प्राप्त करने के अनेक स्रोत हैं। आंख, कान और जिह्वा से देखने, सुनने और बोलने की शक्ति प्रवाहित होती है। वह शक्ति सृजन में प्रेरक बने तब तक प्रशस्य है, अन्यथा शक्ति का संगोपन भी आवश्यक है। अध्यात्म योगी सन्त यशोविजयजी ने इस मार्मिक सत्य को अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने अध्यात्मोपनिषद् ग्रंथ में अपनी अनुभूति का अंकन इस प्रकार किया है—

आत्मप्रवृत्तावतिजागरूक:, परप्रवृत्तौ बधिरान्धमूक: ।

अपने जीवन के संदर्भ में अत्यन्त जागरूक हो। आत्मविमुख प्रवृत्तियों के लिए बहरे अन्धे और मूक बन जाओ। इन दो वाक्यों में प्रवृत्ति और निवृत्ति का स्पष्ट संकेत है। महात्मा गांधी को इस प्रसंग से प्रेरणा मिली और उन्होंने तीन बन्दरों को अपना गुरु मान लिया। जागरूकतापूर्वक स्वीकृत बहरापन, अन्धापन और गूंगापन भी सृजन की संभावना रखता है।

शक्ति-संगोपन की बात केवल अध्यात्म-योगियों और आदर्श जीवन जीने वालों के लिए ही नहीं है, व्यवहार के धरातल पर चलने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। बल्कि उन लोगों के लिए अधिक अपेक्षित है, जो अफवाहों के बीच में रहते हैं, कोलाहलमय

वातावरण मे जीते है और अध्यात्म की गहराइयो तक पहुच पाए हैं। सृजन मे शक्ति का उपयोग तभी हो पाता है, जब उसका अपव्यय रोक दिया जाए।

मनुष्य किसी भी काय मे सलग्न हो, उसकी आख, कान और वाणी का सीमित प्रयोग ही हितकर होता है। सीमा का अतिक्रमण अनपेक्षित और अपेक्षित का विवेक नही दे सकता। अपेक्षित का अतिक्रमण सृजन की शक्ति को ध्वस मे परिणत कर देता है। ध्वस न व्यक्ति का हित करता है और न समाज का। इसलिए शक्ति की उपलब्धि और उसके उपयोग के सदर्भ मे बहुत गभीरता से सोच-समझकर काम करना आवश्यक है।

मनुष्य के सामने कैसी ही परिस्थितिया क्यो न हो, कितनी ही अफवाहें उसके कानो मे क्यो न गुजरती हो, वह अनपेक्षित बातो मे रस न ले तो कोई भी परिस्थिति उस पर हावी नही हो सकती। आवश्यकता से अधिक न देखो, न सुनो और न बोलो—इस सूत्र-त्रयी को रत्न-त्रयी की भाति स्वीकार करने वाला व्यक्ति इस द्वन्द्वमूलक ससार मे रहकर भी निर्द्वन्द्व रह सकता है। द्वन्द्व सृजन और शान्ति के मार्ग मे बाधक है। जो व्यक्ति द्वन्द्व मे उलझ जाते है, वे ऐकान्तिक आनन्द को उपलब्ध नही कर सकते। द्वन्द्व-मुक्ति के लिए व्यक्ति अपने आपको देखे, अपने आप मे रमण करे और आत्मा को आवृत्त करने वाली मूर्च्छाओ को तोडकर चले तो वह अपने उद्देश्य मे सफल हो सकता है।

मानवता का आधार

मानवता का आधार मानव है। मानवता मानव का शृंगार है। मानव की सुरक्षा मानवता से होती है और मानवता की सुरक्षा का दायित्व मानव पर है। मनुष्य जब तक मानवीय मूल्यों की परिधि में भ्रमण करता है, वह मानवता का उपेक्षित नहीं कर सकता। मानवता को उपेक्षित करने का अर्थ है मानवता के मूल्य को नकारना। मानव-चेतना मानवता से शून्य होकर मानवीय रह ही नहीं सकती। इस तथ्य को ध्यान में रखकर अणुव्रत आपको सिखाता है कि आप ऐसी कोई प्रवृत्ति न करें, जिससे मानव जाति के प्रति अविश्वास और अनास्था उत्पन्न हो।

फजल एयाज एक मुस्लिम सन्त थे। अपने जीवन के मध्यकाल में वे डाकू थे, फिर भी सन्त के वेश में रहते थे। डाका डालने वाले एक गिरोह के वे मुखिया थे। एक बार उनके दल ने कुछ व्यापारियों को लूटना शुरू किया। एक व्यापारी उनकी आंख बचाकर भाग निकला। थोड़ी दूर चलने पर उसे एक तंबू दिखाई दिया। वहां पहुंचकर उसने देखा—भीतर कोई सन्त बैठा है। उसकी आंखों में चमक आ गयी। उसने अपने रुपयों की थैली उसके पास रख दी और स्वयं कहीं छिप गया।

उधर लूटपाट के बाद डाकू लौट गए। वह व्यापारी भी आश्वस्त होकर अपनी थैली पाने के लिए उस खेमे में गया। वहां पहुंचकर उसने देखा—वे सभी डाकू वहां बैठकर धन का बंटवारा कर रहे हैं। उसकी आशा के आगे अंधेरा छा गया। भय और आशंका से वह कांप उठा। जीवन की सुरक्षा के लिए वह उल्टे पांव दौड़ने लगा तो सन्त-वेशधारी डाकू ने उसे अपने पास बुलाकर धन की थैली लौटा दी।

व्यापारी की आखो को विश्वास नही हो रहा था। पर थैली उसके हाथ मे थी। वह विस्मयपूण कृतज्ञता-ज्ञापन कर अपने गाव की ओर चला गया।

डाकू दल के सदस्य घटना से अनमने हो गए। वे बोले—'हाथ मे आया धन वापस क्यो किया ?' फजल ऐयाज ने उत्तर दिया—'तुम्हारा कहना ठीक है। किन्तु मेरे सामने एक कठिनाई थी। यह व्यक्ति मुझे ईश्वर का सच्चा भक्त समझकर रुपयो की थैली सौप गया। यह थैली मैं इसे नही लौटाता तो ईश्वर और साधु-सन्यासियो के प्रति इसका विश्वास समाप्त हो जाता। मैं इसके विश्वास पर आघात कर साधुसता की अवमानना करवाना नही चाहता।'

यह एक छोटी-सी घटना है। कितना बडा तत्त्व है इसमे ! अणुव्रत भी आपको यही मार्गदर्शन देता है कि आप मानव है, मानवता आपका सहज गुण है। इस गुण को छोडकर आप मानव को अविश्वसनीय न होने दें। यदि आप अपने प्रति जन विश्वास को अधिक सुदृढ बनाना चाहते हैं तो अणुव्रत हर क्षण आपका मार्गदर्शन करने के लिए तैयार है।

स्वभाव की दिशा

मनुष्य एक विचित्र प्रकार की पीडा से आक्रान्त है। उसकी पीडा अभाव और अतिभाव—इन दोनो कारणो मे समुत्पन्न है। स्वभाव पीडा-मुक्ति का माध्यम है। इस तथ्य को समझने वाले व्यक्ति भी स्वभाव को विस्मृत कर विभाव की ओर दौड रहे हैं। स्वभाव-रमण बहुत बडा विज्ञान है और बहुत बडा स्वास्थ्य है। ऋषि-महर्षि स्वभाव-रमण की बात सदा से कहते रहे हैं। क्योंकि इससे आत्मा स्वस्थ—आत्मस्थ बनती है। आत्मिक स्वास्थ्य ही नही, शारीरिक स्वास्थ्य के लिए भी स्वभाव रमण नितात अपेक्षित है।

शरीरशास्त्रियो का अभिमत है कि मनुष्य के शरीर मे जितनी बीमारिया होती है, उनका मूल उसके मन मे, विचारो मे और आस-पास के वातावरण मे होता है। मूल का स्पर्श किए बिना कितने ही उपचार किए जाए, वे मनुष्य को धोखा देते है। औषधि सेवन से एक बीमारी ठीक होती है, पर दूसरी कई बीमारिया खडी हो जाती हैं। तात्कालिक लाभ मे एक बार आत्मतोष किया जा सकता है, पर जिस क्षण उसका घातक परिणाम सामने आता है, मनुष्य निरुपाय हो जाता है। इसलिए भगवान् महावीर ने कहा—'अग्ग च मूल च विगिंच धीरे।' धीर वह होता है जो अग्र और मूल—परिणाम और कारण दोनो को समाप्त कर देता है। अस्वस्थता का उपचार आवश्यक है पर अस्वास्थ्य के मूल कारण ज्ञात नही हुए तो अस्वास्थ्य बढता रहेगा। आज चिकित्सा-विज्ञान तीव्रता से गति कर रहा है। अनेक भयकर व्याधियो का उपचार खोज लिया गया है और खोजा जा रहा है। किन्तु बीमारी की गति भी मन्द नही है। नये नये परिवेश मे वह स्वय को प्रस्तुत करती है और चिकित्सको के सामने एक समस्या खडी

हो जाती है।

इस समस्या के समाधान मे प्राकृतिक चिकित्सक सुझाव देते हैं कि प्रात जल्दी उठना चाहिए। प्राणायाम, आसन और भजन करना चाहिए। भ्रमण करना चाहिए। भोजन सात्विक होना चाहिए। भोजन करने का तरीका सीखना चाहिए। बिना भूख भोजन नही करना चाहिए। मिर्च, मसाला, खटाई, मिठाई आदि का सेवन नही करना चाहिए। जीवन मे सयम को स्थान देना चाहिए आदि। प्राकृतिक दृष्टि से और भी कई तथ्य हैं जो बीमारी के मूल पर प्रहार करते हैं।

मैं सोचता हू कि मनुष्य की पीडा का समाधान भी मूलस्पर्शी होना चाहिए, अन्यथा पीडा बीमारी की भाति रूपातरित होकर मनुष्य को व्यथित करती रहेगी। मूलस्पर्शी समाधान की एक प्रक्रिया है अणुव्रत। 'अणुव्रत' वैचारिक पवित्रता और व्यावहारिक चरित्र-निष्ठा का सवाहक है। विचार पवित्र हैं, व्यवहार शुद्ध हैं और स्वभावो मे रमण करने की तडप है तो कोई भी व्यक्ति गलत काम नही कर सकता। देश की आपातकालीन स्थिति मे हर नागरिक को यह दिशाबोध लेना चाहिए कि यह स्थिति देशवासियो की चरित्र-निष्ठा के अभाव का परिणाम है। आप इस परिणाम से बचना चाहते हैं तो मूल की ओर झाकें। इस स्थिति की उत्पत्ति जिन कारणो से हुई है, उनका निवारण कर दें, पीडा स्वय समाप्त हो जाएगी। अभाव और अतिभाव दोनो स्थितियो को परास्त कर स्वभाव की दिशा मे गति करें, अणुव्रत आपका मार्गदर्शन करने के लिए तत्पर है।

लोकतन्त्र और अणुव्रत

लोकसभा के चुनावो के पश्चात् अब अनेक राज्यो मे विधान सभा के चुनाव होने जा रहे हैं। चुनाव लोकतन्त्र की एक विशिष्ट पद्धति है, क्योकि लोकतन्त्र की बुनियाद इसी पर आधारित है। चुनाव जितने विशुद्ध होंगे, लोकतन्त्र भी उतना ही अधिक विशुद्ध होगा। लोगो मे चुनाव के लिए पार्टी का टिकट प्राप्त करने की जितनी उत्सुकता होती है, उतनी उत्सुकता यदि उसके योग्य बनने की हो तो कितना अच्छा काम हो सकता है।

वर्तमान मे बहुत सारी पार्टिया ने अपना विलय करके विसर्जन का उदाहरण प्रस्तुत किया है, किन्तु इस विलीनीकरण मे भी यदि अपनी पुरानी पार्टी के स्वार्थ या मोह की प्रधानता रहेगी तो वह स्वस्थ नही होगा। उसका असर चुनाव पर भी पडे बिना नही रहेगा। विधान सभा के चुनाव का यह अवसर विभिन्न पार्टियो के नेताओ की कसौटी का समय है कि वे अपनी पार्टियो मे स्वस्थ चुनाव की आचार सहिता किस प्रकार प्रस्तुत करते हैं ?

अणुव्रत आन्दोलन के माध्यम से ऐसे अवसरो पर समय-समय पर दिशा-दर्शन दिया जाता रहा है। चुनाव के सम्बन्ध मे भी अणुव्रत ने एक नैतिक आचार-सहिता प्रस्तुत करते हुए मतदाता को कुछ सकल्पो के लिए प्रेरित किया है। वे सकल्प इस प्रकार हैं

१ रुपये तथा अन्य प्रलोभनो से मतदान नही करना।
२ जाति, धर्म आदि के आधार पर मतदान नही करना।
३ अवैध मतदान नही करना।
४ किसी उम्मीदवार या दल के प्रति अश्लील व निराधार आक्षेप

नही करना।

५ किसी चुनाव-सभा या कार्यक्रम मे अशान्ति या उपद्रव नही फैलाना।

इस आचार-संहिता का प्रामाणिकता से पालन किया जाय तो लोकतन्त्र को बहुत बल मिलेगा। किस पार्टी का कौन व्यक्ति आये, इसकी चिंता न करके यह प्रयत्न होना चाहिए कि जो आये, वह चरित्रवान, निष्ठावान तथा पुरुषार्थी हो।

जीने की कला

हमारे भीतर अनन्त चेतना का स्रोत प्रवाहित हो रहा है। अपने आपको उस स्रोत मे आप्लावित रखने के लिए उस स्रोत को देखना आवश्यक है। जो उस स्रोत को देख लेता है उसके आसपास मैत्री की धारायें फूट पडती हैं। मैत्रीभाव विश्व-बन्धुत्व का पहला सूत्र है। जो व्यक्ति प्रतिक्षण जागृत रहता है और द्वेषभाव से दूर रहता है, वह प्रशस्त जीवन जी सकता है। प्रशस्त जीवन का अर्थ है ऋजुता और मृदुता का विकास। ऋजु और मृदु व्यक्ति समभाव की साधना कर सकता है। जो समभाव की साधना करता है, वह आत्मभाव को प्राप्त होता है और आत्मभाव ही अनन्त चेतना का जागरण है।

चेतना के जागरण के लिए ध्यान, मौन, स्वाध्याय, जप, तप आदि अनेक माध्यम हैं। मेरी दृष्टि मे सबसे बड़ा माध्यम है समता की साधना। लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, निन्दा-प्रशसा, मान-अपमान आदि अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियो मे अपनी मन स्थिति को सतुलित रखने का प्रयास करना समता है। हम अर्हत् वदना मे प्रतिदिन बोलते हैं—'धर्म है समता हमारा, कर्म समतामय हमारा।' समता की साधना के लिए व्यक्ति अपने मन, वाणी और कर्म—तीनो को समतामूलक सस्कारो से अनुप्राणित करे, यह अपेक्षा है।

कुछ व्यक्ति अपनी वृत्तियो का दमन कर समता को साधना चाहते हैं। दमन भी दोषो से मुक्त होने की एक प्रक्रिया है, किन्तु आधुनिक मनोविज्ञान इसके स्थान पर उदात्तीकरण या मार्गान्तरीकरण की चर्चा करता है। दमन बलपूर्वक होता है और उदात्तीकरण समझपूर्वक होता है। उदात्तीकरण से आगे शोध का मार्ग है। वह मार्ग प्रशस्त हो जाए तो व्यक्ति अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति का शोधन कर उससे

आत्महित साध सकता है। वातावरण और सकल्पशक्ति वृत्तियो के शोधन मे कार्यकारी हैं। मूल बात यह है कि जिस व्यक्ति का उद्देश्य जितना पवित्र और ऊचा होगा, उसकी प्रवृत्तिया उतनी ही उन्नत होगी।

मानवीय चेतना का ऊर्ध्वारोहण उखडते हुए नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा मे महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकता है। नये मूल्यो की प्रतिष्ठा मे क्रान्ति का स्वर अभिव्यक्त होता है। नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य निर्विशेषण क्रान्ति के स्थान पर आत्मक्रान्ति के धरातल पर प्रतिष्ठित होते हैं। आत्मक्रान्ति की सभावना मे सारी कृत्रिमतायें टूट जाती हैं और स्वाभाविकता का जन्म होता है। जब तक मनुष्य मे अपूर्णता रहती है अथवा आशिकता पल्लवित होती है, वह निराशा, भ्रान्ति, व्यथा आदि से मुक्त नही हो सकता। उसका अन्त करण राग-द्वेष की ग्रन्थियो से उलझा रहता है। वह अपने चारो ओर अभिलाषाओ के तार बधे हुए देखता है। इन सब स्थितियो से उपरत होने का एक ही उपाय है, वह है समता का अभ्यास।

मनुष्य जीता वर्तमान मे है, किन्तु वह उन क्षणो मे जीना नही जानता। जो वर्तमान मे जीने की कला से परिचित होता है वह मौत को सामने देखकर भी मुरझाता नही है। वजीर को अपने जन्मदिन पर बादशाह द्वारा फासी का पैगाम मिला। घर के सब लोग उदास हो गये, पर वजीर के मुख पर मुसकान खेलती रही। मित्रो ने उसे टोका—"मृत्यु सर पर खडी है और तुम्हे परवाह नही है!" वह शान्ति के साथ बोला—"शाम को छह बजे मुझे फासी के तख्ते पर लटकाए जाने का आदेश है। अभी दस बजे हैं। मेरे जीवन का यह तो अमूल्य समय है, इसे मैं रो-धोकर क्यो बिताऊ?" उसके घर में उत्सव होता रहा। बादशाह को यह सूचना मिली। वह स्वय उसे देखने आया और विस्मित होकर बोला—"मेरा वजीर जीने की कला जानता है, मैं इसे कैसे मरवा सकता हू?" बादशाह ने अपना आदेश वापस ले लिया। जिन लोगों ने यह दृश्य देखा, देखते ही रह गए। वास्तव मे मोह और भय से मुक्त व्यक्ति ही कलात्मक जीवन जी सकता है।

शान्ति का मूल

पति पत्नी मे चर्चा हो रही थी पुत्र की भावी दिशा के सम्बन्ध मे। पत्नी अपने पुत्र को डॉक्टर बनाना चाहती थी। उसकी चाह अहेतुक नही थी। वह सदा बीमार रहती थी और डॉक्टरो के पीछे दौड-धूप कर बेहद थक चुकी थी। पुत्र को डॉक्टर बना वह इस समस्या को सदा सदा के लिए समाहित कर देना चाहती थी।

पति पुत्र को वकील बनाने के पक्ष मे था। उसका तर्क था—व्यवसाय मे करो (टैक्सो) की समस्या। आए दिन वकीलो की खुशामद और पानी की भाति पैसे का बहाव। अपनी परेशानी कम करने के लिए वह पुत्र को वकील बनाने का स्वप्न देखता था।

पति अपनी बात पर अडा हुआ था। पत्नी रुआसी होकर बोली—"मेरी इच्छा का भी कोई मूल्य होगा। इस घर मे आकर मैंने कभी मनमानी नही की। आपकी सब इच्छाओ की पूर्ति करके मै सन्तुष्ट होती रही। आखिर मेरा भी मन है। उसे मसोस-मसोसकर कब तक जी सकूगी? और कुछ भी करो, आपकी मर्जी, मेरे बेटे को डॉक्टर बनाना है।"

पति अपनी पत्नी का दिल दुखाना नही चाहता था, फिर भी पुत्र को वकील बनाने का स्वप्न वह तोड नही सका। बात यहा तक बढी कि वे दोनो भान भूलकर बोलने लगे। आस-पास के लोगो ने सुना, वे इकट्ठे हो गए। पारस्परिक तनाव का कारण पूछने पर उन्होने अपनी बात रख दी। समझाने का प्रयास हुआ, पर सफलता नही मिली। आखिर किसी समझदार व्यक्तित ने कहा—"आप लोगो के आग्रह मे आपका अपना स्वाथ है। आखिर लडका क्या चाहता है, उससे भी तो पूछ लेना चाहिए। कहा है आपका लाडला पुत्र? एक बार बुलाइए

उसे।"

इस बात पर पति पत्नी दोनो सहम गए। वे सकुचाते हुए बोले—"जी! बच्चा अभी तक जन्मा ही नही है!" वहा उपस्थित लोगो का मुक्त हास्य वातावरण मे बिखर गया। पति-पत्नी की आखें लज्जा से झुक गयी। बे-बुनियाद बात पर अडे रहने वालो के साथ यही घटित होता है, बीज वपन बिना फसल काटने की बात जितनी हास्यास्पद होती है, उससे भी अधिक उपहास के पात्र वे व्यक्ति होते हैं जो नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो को गौण कर स्थायी शान्ति उपलब्ध करना चाहते हैं। मानसिक शान्ति इस युग की सबसे बडी समस्या है। भौतिक साधनो से उसे उपलब्ध करने की आकाक्षा जितनी अयथार्थ है उतनी ही पीडाप्रद है। शान्ति का मूल है आकाक्षाओ की अल्पता। जब तक इस ओर ध्यान केन्द्रित नही होता है, समस्या को समाधान नही मिल सकेगा।

शान्ति का उपाय

अणुव्रत की बात बहुत लोग पसन्द करते है पर अणुव्रती बनने के प्रश्न पर वे थोडी देर प्रतीक्षा करने की बात कहते हैं। शायद उनके जीवन मे अभी अणुव्रतो की जरूरत नही है। जिस तत्त्व की वर्तमान मे अपेक्षा नही है, उसकी अपेक्षा भविष्य मे होगी, यह भी आवश्यक नही है। इसका अथ हुआ मनुष्य के जीवन मे अणुव्रत की जो भूमिका है, उसका अकन नही हो रहा है। अन्यथा बीमारी आज है और चिकित्सा दो वर्ष बाद कराने की बात समझ मे कैसे आ सकती है? चिकित्सक दवा देने के लिए समय का निर्धारण कर सकता है पर रोगी यह निर्धारण नही कर सकता कि उसके बीमारी अमुक समय मे हो। बीमारी का कोई काल नही है, इसलिए चिकित्सा का भी कोई काल नही है। चिकित्सक ड्यूटी पर नही होता है तो अतिरिक्त फीस देकर रोग का निदान और चिकित्सा करवाई जाती है।

शरीर की बीमारी मे व्यक्ति समय की नियामकता नही रख सकता, फिर मन और आत्मा के अस्वास्थ्य की उपेक्षा कैसे कर सकता है? चिकित्साशास्त्र के नियमानुसार शरीर की स्वस्थता के लिए मन का स्वास्थ्य अपेक्षित है। मन को स्वस्थ रखने का एक सबल उपक्रम है अणुव्रत। जिस व्यक्ति ने अणुव्रत को जाना है, समझा है और जिया है उसने स्वस्थ जीवन का अनुभव किया है। लेकिन यह स्वस्थता वर्तमान मे अणुव्रत के अनुरूप आचरण करने से ही उपलब्ध हो सकती है।

एक व्यक्ति सन्यासी के पास गया। सन्यासी की साधना और प्रवचन से वह बहुत प्रभावित हुआ। उसने शाति पाने का उपाय पूछा। सन्यासी ने प्रश्न किया, 'मैं तुम्हे जो उपक्रम बताऊगा, उसकी

साधना तुम कब शुरू कर दोगे ?' वह व्यक्ति बोला—'आप मुझे प्रक्रिया सुझा दीजिए, उसके बाद जिस समय मेरे पास अवकाश होगा, मैं साधना शुरू कर दूगा।' सन्यासी का दूसरा प्रश्न था, 'अभी तुम्हारा मन अशान्त है या नही ?' 'मन तो अशान्त है पर अभी दो साल तक मैं अपने व्यापार मे अधिक उलझा हुआ रहूगा। इस उलझन से निपटते ही मुझे आपका काम शुरू कर देना है। फिर यहा आना हो या नही, इसलिए आप मुझे आज ही कोई प्रभावशाली मत्र बता दीजिए।' यह उस व्यक्ति का उत्तर था।

सन्यासी ने उसको यह कहकर विदा किया कि जिस दिन तुम्हारे पास समय हो, यहा आ जाना। मैं शान्ति का उपाय बता दूगा।

मुझे लगता है कि अधिक व्यक्तियो के सोचने का ढग ऐसा ही है, किन्तु इस क्रम से जीवन मे परिवर्तन नही आ सकता। अणुव्रत आपको वर्तमान मे स्वस्थ और शान्त जीवन जीने की दिशा देता है। यह दिशा तभी उपलब्ध हो सकती है, जब आप अपने जीवन के हर क्षण मे अणुव्रत को याद रखें।

आनन्द के ऊर्जाकण

मनुष्य आनन्द का उपासक है। उसकी प्रत्येक प्रवृत्ति आनन्द के लिए होती है। वह अपने सुखद अतीत को आनन्दोपलब्धि के लिए स्मृतियो मे सहेजकर रखता है। वह भविष्य की सतरगी कल्पनाओ मे आनन्द-मूलक परिस्थितियो की खोज करता है। वह अल्पकालिक और बहुकालिक वतमान की योजनाओ मे आनन्द के दर्शन करता है। आनन्द की खोज मे वह लम्बी-लम्बी यात्राए करता है, तपस्या करता है, साधना करता है, शोध करता है, व्यवसाय करता है, सब कुछ करता है किन्तु उसका मन समाहित नही होता। असमाधान आनन्दोपलब्धि मे मुख्य बाधा है। इस बाधा को तोडने की सबसे सीधी प्रक्रिया है, वस्तु सापेक्ष आनन्द से अपने मन को हटाकर निरपेक्ष आनन्द के लिए स्वय को समर्पित कर देना। सापेक्षता सापेक्षता है। व्यक्ति जब तक अपेक्षाओ से जुडा रहता है, इधर उधर भटकन मे रहता है। इस भटकन से बचने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अपनी वृत्तियो का निरीक्षण करे।

आनन्द का पथ फूलो से लदा हुआ है और काटो से भरा हुआ है। जो व्यक्ति काटो की चुभन से घबराकर पीछे हट जाता है, वह फूलो की सौरभ नही पा सकता। जो व्यक्ति फूलो की मुसकान से व्यामूढ होकर उसी मे खो जाता है और अपने पथ के काटे नही बुहारता, वह अपने आपको सुलगती हुई समस्या के बीच झोककर हताश हो जाता है। सफल पथिक वह होता है, जो काटो से क्लान्त न हो और फूलो से भ्रान्त न हो। जो अपने अतीत से मुक्त हो और भविष्य से विमुक्त हो। जो वतमान मे जीता है और अपने हर आगत क्षण को सफल बनाने के लिए जागरूक रहता है।

अणुव्रत मनुष्य के सामने आनन्दोपलब्धि की नयी-नयी दिशाओ का उद्घाटन कर रहा है। इन दिशाओ से अनेक अनेक व्यक्ति लाभान्वित हुए हैं और हो रहे हैं। जो व्यक्ति उन्नत जीवनस्तर के नाम पर भौतिक सुविधाओ को जुटाने के लिए चिरन्तन मूल्यो को भुला देते हैं, वे वास्तविकता से आखें मूद लेते हैं। दैहिक अपेक्षाओ को ठुकराकर शरीर को सतापित करने की बात मे मेरा विश्वास नही है। जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओ की उपेक्षा नही की जा सकती, किन्तु कृत्रिम अपेक्षाओ को उभारना आध्यात्मिक मूल्यो की दृष्टि से उचित नही है। अपनी आवश्यकता को अभिलाषाओ के तटहीन विस्तार मे खुला छोडने वाला व्यक्ति आनन्द को नही पा सकता।

आनन्द का स्रोत व्यक्ति के अपने अन्त करण मे प्रवहमान है। आप चाहे तो उस रेगिस्तानी टीलो की ओर मोडकर सुखा सकते हैं और चाहे तो उससे अपने जीवन की बगिया सरसब्ज बना सकते हैं। आनन्द का अजस्र प्रवाह मानव समाज के चारो ओर घेरा डाले हुए है, आप चाहे तो उसमे अवगाहन कर सकते हैं और चाहे तो छलाग मारकर उसके ऊपर से निकल सकते है। मुझे विश्वास है कि आप 'पानी में मीन पियासी' इस जनश्रुति को सार्थक नही होने देंगे। आनन्द के जो ऊर्जाकण इधर-उधर विकीर्ण हो रहे हैं, उन्हे आत्मगत करने से ही वस्तु-निरपेक्ष आनन्द की उपलब्धि हो सकती है और यही आनन्द मनुष्य को शाश्वत सत्य का साक्षात्कार करा सकता है।

आनन्द का रहस्य

आनन्दित जीवन का सबसे बडा रहस्य है सरसता। सरसता क अनुभूति का नाम है—परितृप्ति। परितृप्त जीवन सरस हो सकता है। मुझे सरस जीवन बहुत प्रिय है। सरसता सहज भी होती है और निमित्तज भी। सहज सरसता मुझे काम्य है, इसी प्रकार निमित्तजन्य सरसता भी मेरे लिए मूल्याह है। सरसता का अस्तित्व व्यक्ति की अपनी वृत्तियो मे निहित है। जो व्यक्ति स्वय के प्रति रसमय होता है वह दूसरो के प्रति भी सरस हो सकता है। निमित्तजन्य सरसता का लाभ भी उसे ही मिल सकता है जिसके जीवन मे रसमयता है। उच्च-स्तरीय योगी सरसता के लिए किसी निमित्त की अपेक्षा अनुभव न भी करे किन्तु साधना के अन्तरालकाल मे वह अपेक्षित है। कम से कम अपने लिए मैं कुछ निमित्तो का योग तथा अपेक्षा अनुभव करता हू।

मेरे जीवन मे सरसता के अनेक निमित्त मुझे उपलब्ध हुए है। सबसे पहले मुझे अपने आराध्य श्रद्धेय कालूगणी का सान्निध्य मिला। वे केवल मेरा निर्माण ही करते तो मैं जीवन का यथार्थ अनुभव नही कर पाता। उन्हाने मेरे जीवन मे सरसता का सप्रेषण किया और मुझे सही जीवन जीने का बोध दिया। उसके बाद मुझे कई छात्र-मुनि शिष्य रूप मे मिले। अध्यापनकाल मे उन मुनियो का निर्माण ही नही हुआ, मेरा जीवन भी सरस बना। कई व्यक्ति मुझे सहयोगी रूप मे मिले, उन्हे भी मै अपनी सरसता का निमित्त मानता हू। इस प्रकार मुझे कोई न कोई निमित्त मिलता रहा और मैं सरस जीवन का सुख पाता रहा। वर्तमान मे मैं उसी सरसता और परितप्ति का अनुभव कर रहा हू। परितृप्ति के साधन अनेक है। जिसको जिस साधन से तृप्ति मिले, वही उसके लिए विशेष है। मुझे जो साधन प्राप्त है, उनसे मुझे सन्तोष है।

मेरी अनुभूति के अनुसार हर व्यक्ति को सरसता के साधनों की अपेक्षा रहती है। मैं किसी की सरसता में निमित्त बनूं, इसमें भी मुझे रस है। अपनी वर्तमान साधना से मुझे अधिक सरसता और आत्मतोष मिल रहा है। यह उत्तरोत्तर बढ़ता रहे, यही अपेक्षा है।

चेतना का ऊर्ध्वारोहण

मनुष्य जीवन उत्कृष्ट जीवन है। विकास की नयी-नयी सभावनाओ से मानवीय चेतना के अनेक स्तर उद्घाटित हो रहे हैं। आवृत चेतना को अभिव्यक्त करने की तडप जागृत हो रही है। इस तडप की पूर्ति के लिए कुछ वैसे अभिक्रमो पर ध्यान देना अपेक्षित है जो चेतना के केन्द्र मे विस्फोट कर सकें। उद्देश्य की अस्थिरता और तद्नुरूप साधनो का समायोजन होने से ही व्यक्ति आगे बढ सकता है। साध्य के अनुरूप साधन-सामग्री के अभाव मे मनुष्य की सारी आकाक्षाए अभीप्साए और सभावनाए समय के प्रवाह मे बह जाती हैं और आदमी वही खडा रहता है, जहा वह कर्म मे प्रवृत्त होने से पहले खडा था।

एक नाविक अपनी पत्नी को कुछ आवश्यक निर्देश देकर नाव पर सवार हुआ। रात का समय था। आकाश मे सितारो के साथ चाद चमक रहा था। नाविक मस्ती से झूमता हुआ रातभर नाव चलाता रहा। प्रात काल जब वह नाव को किनारे लगाता है तो वही पर खडी अपनी पत्नी को देखता है। पत्नी को देखते ही वह आवेश मे आ गया। आवेश का हेतु था उसका मानसिक सन्देह। उसने सोचा, मेरी पत्नी सदाचारिणी नही है, अन्यथा मेरी अनुपस्थिति मे यह यहा कैसे पहुच जाती। उसने बिना कुछ सोचे-विचारे पत्नी को डाटना शुरू कर दिया।

सहज भाव से नदी पर पानी भरने के लिए पहुची हुई पत्नी पति की इस आकस्मिक उत्तेजना और भर्त्सना से काप उठी। वह कुछ समझ नही पायी। थोडी देर बाद आवेश का नशा उतरने पर पति ने पूछा, "मुझे यह तो बता, तुम यहा आयी किसके साथ हो ?" अब पत्नी की समझ मे कुछ-कुछ आया। वह थोडी गभीर होकर बोली, "मैं

आयी हू अपने काम से। प्रतिदिन जिनके साथ आती हू, आज भी आ गयी। पर आप तो ढलती साझ चले थे, अब तक यहा खडे-खडे किसकी प्रतीक्षा करते रहे ?"

नाविक की आख खुली। उसने देखा, रातभर नौका खेने के बावजूद मैं अपने छोटे-से गाव की नदी के उसी तट पर खडा हू, जहा था। उसे आश्चर्य हुआ। उसने पत्नी की ओर अपराधी आखो से देखा। पत्नी मुसकराती हुई बोली, "आपने लगर खोला या नही ?" नाविक का सन्देह और आश्चर्य एक साथ समाप्त हो गया। वह अनुताप करता हुआ कहने लगा, "नदी के उस पार पहुचने की चाह थी, नौका तैयार है, पतवार हाथ मे है, रात-भर परिश्रम भी किया, किन्तु एक इच भी आगे नही बढ सका। काश ! साधन-सामग्री समग्रता से समायोजित कर लेता।"

मानवीय चेतना आज ऊर्ध्वारोहण की प्रतीक्षा मे है। मनुष्य उसके लिए प्रयत्नशील भी है। किन्तु जब तक सामग्रिक प्रयत्न नही होता, गति मे अवरोधो को टाला नही जा सकता। अणुव्रत भी एक प्रयत्न है, चेतना के ऊर्ध्वारोहण मे इसकी उपयोगिता को भी विस्मृत नही होने देना है।

सत्य और सौन्दर्य

महाराजा रणजीतसिंहजी कला-प्रेमी व्यक्ति थे। कलागत सौन्दय उन्हे *प्रिय था, पर वे सौन्दय से भी अधिक मूल्य सत्य को देते थे। सत्य और* सौन्दर्य की समन्विति मे उनको शिवत्व का दशन होता था।

एक बार महाराजा ने अपने देश के प्रसिद्ध चित्रकारो को अपना चित्र बनाने का निर्देश दिया। जिस चित्रकार का चित्र सुन्दर होगा उसे पुरस्कृत करने की घोपणा कर दी गयी। तीन वरिष्ठ चित्रकारो ने काम शुरू किया और निश्चित अवधि तक उन्होने अपनी कृतिया राजा के सामने उपस्थित कर दी।

राजा के हाथ मे एक चित्रकार द्वारा निर्मित सजीव चित्र था। उसे देखकर यह अनुमान लगाना कठिन था कि यह चित्र है अथवा सजीव आकृति। चित्र आखो के लिए बहुत सुखद था, पर राजा ने उसको पुरस्कृत नही किया। क्योकि वह सत्य पर आवरण डाल रहा था। महाराज एकाक्ष थे। उनकी एक आख प्रारम्भ से ही विकृत थी। चित्रकार ने सोचा कि राजा की विकृत आख चित्र मे अच्छी नही लगेगी, इसलिए उसने दोनो आखे एक समान चित्रित कर दी। चित्र सुन्दर था किन्तु उसमे सचाई नही थी अत वह राजा के मन को नही लुभा सका।

दूसरे चित्रकार का चित्र *राजा की यथाथ प्रतिकृति था।* उसमे एक आख की विकृति भी परिलक्षित हो रही थी। सही चित्र होने के कारण चित्र पुरस्कार के योग्य था, पर वह भी राजा को सन्तुष्ट नही कर सका। *राजा ने कहा, 'चित्र मे सत्यता है, पर नग्न सत्य मनोज्ञ नही* होता। इस चित्र के माध्यम से युग-युग तक मेरी पहचान एकाक्ष (काना) के रूप मे होगी, अत यह भी मुझे मान्य नही है।"

तीसरे चित्रकार ने अपनी तूलिका से राजा को पत्र पर अंकित किया एक विशेष मुद्रा मे। अरण्य की प्राकृतिक सुषमा के बीच मे राजा एक मृग पर बाण छोड रहा है। छोडते की मुद्रा से राजा की विकृत आख बाण को पीछे तानने वाले हाथ की ओट में आ गयी। सत्य और सौ दर्य की युगपत प्रस्तुति करने वाले चित्रकार ने वह पुरस्कार प्राप्त किया।

अणुव्रत भी सत्य और सौन्दय की समन्विति मे जीवन को शिव से साक्षात्कार कराता है। सत्य की पृष्ठभूमि पर निर्मित अणुव्रत आचार-संहिता एक गृहवासी व्यक्ति की विलासी और अनैतिक वृत्तियो को नियन्त्रित करने का पथ दिखाती है तथा अकमण्यता और निराशा जैसी वृत्तियो को निरस्त कर जीवन के उजडे हुए उपवन मे आशा के फूल खिलाती है। सत्य और सौन्दर्य के तटो मे प्रवहमान शिव (श्रेयस्)-सरिता मे निमज्जित व्यक्ति को प्रकृति स्वय पुरस्कृत करती है। प्रकृति का वह पुरस्कार होता है—'आनन्दमय जीवन ।

दृष्टि-परिमार्जन

मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है। वह किसी भी कर्म मे प्रवृत्त होने से पहले उसके परिणाम के सम्बन्ध मे सोचता है। अधिक सुखद परिणाम की आशा से वह वही काम करता है जो उसको अधिक लाभ पहुचा सके। लाभ दो प्रकार का होता है—भौतिक और आत्मिक। अन्तर्मुखी व्यक्ति आध्यात्मिक लाभ के लिए अधिक प्रयत्न करता है और बहिर्मुखी चेतना मे भौतिक लाभ के प्रतिबिम्ब गहरे होते हैं। अणुव्रत व्यक्ति को अन्तर्मुखता की ओर अग्रसर करता है। वह अपनी आचार-सहिता की क्रियान्विति से पहले दृष्टि-शोधन की दिशा बताता है। जिस व्यक्ति की दृष्टि परिमार्जित होती है, वह आचरण के क्षेत्र मे अधिक सफलता प्राप्त कर सकता है।

प्राचीन समय मे साकेत नगर मे महाबल राजा राज्य करता था। राजा न्यायप्रिय था और प्रजा का हितेच्छु भी था। इसके साथ वह कला-प्रेमी भी था। देश की सास्कृतिक गरिमा को उन्नत बनाने के लिए उसने कला का बहुमुखी विकास किया। एक दिन राजा अपने सभा मण्डप मे बैठा था। दूत को सम्बोधित कर उसने पूछा—"मेरी राजसभा मे ऐसी कोई कमी हो तो बताओ जो दूसरे राजाओ की सभा मे नही है ?" दूत कुछ क्षण मौन रहा। राजा के पुन पूछने पर वह विनम्रतापूर्वक बोला—"राजन् ! वैसे आपके राज्य मे कोई कमी नही है पर राजसभा मे एक विशिष्ट चित्र-सभा नही है। कई राजाओ के सभामण्डप उनकी चित्र सभाओ से बडे आकर्षक प्रतीत होते हैं।"

राजा ने उसी समय दो प्रसिद्ध चित्रकारो को बुलाया और एक चित्रसभा चित्रित करने का निर्देश दे दिया। दोनो चित्रकारो को सभा का आधा आधा भाग तैयार करने का आदेश था इसलिए दोनो के

बीच मे एक परदा लगा दिया गया। लगभग छह मास समय बीतने पर राजा चित्रसभा देखने आया। राजा को बताया गया कि एक चित्रकार ने अपना काम पूरा कर लिया है। आकपक रगो मे नये नये चित्र प्रथम दृष्टिक्षेप होते ही मन को मोह लेते है पर दूसरे चित्रकार ने कुछ नही किया। वह न तो अपने साथ रग लाता है और न तूलिका। पता नही वह दिन भर पर्दे की ओट मे क्या करता है ?

राजा ने प्रथम चित्रकार को पुरस्कृत किया और उसकी चित्रकला की प्रशस्ति की। दूसरा चित्रकार राजा का कोप-भाजन बना। राजा का क्रोधारुण चेहरा देखकर वह घबराया नही। राजा के प्रश्नो का उत्तर देने के लिए वह उन्हे चित्रशाला मे ले गया और मध्यवर्ती यवनिका को हटाने के लिए कहा। यवनिका का हटाते ही चित्रसभा का दूसरा भाग बहुरगी चित्रो मे खिल उठा। एक क्षण पहले जहा कुछ भी नही था वहा अब अभिराम चित्र चित्रित है। यह सब क्या है ? यहा कोई इन्द्रजाल तो नही है ? इन फुसफुसाहटो के बीच राजा ने अथभरी दृष्टि से दूसरे चित्रकार के सामने देखा।

चित्रकार पहले से भी अधिक शान्ति और स्थिरता से बोला—"राजन्! आपकी चित्रसभा विलक्षण हो, इस दृष्टि मे मैंने एक भी चित्र चित्रित नही किया। छह मास तक मैं इस भित्ति का परिमार्जन (घुटाई) करता रहा। अनवरत परिमार्जन से यह इतनी ग्रहणशील हो गई है कि इसके सामने जो कुछ आयेगा, यह उसे अधिक स्पष्टता से प्रतिभासित करेगी।"

अणुव्रत भी आपको दृष्टि-परिमाजन की दिशा देता है। दृष्टि जितनी विशुद्ध और विशुद्धतर होगी, आचरण पक्ष भी उतना ही उज्ज्वल होता जाएगा।

अहिंसा का आलोक

राजगृह के प्रसिद्ध कसाई कालसौकरिक की मृत्यु के बाद उसके पारिवारिक जन एकत्रित हुए। अब वे कालसौकरिक के बाद उसके पुत्र सुलस को परिवार मे गृह-पति के स्थान पर नियुक्त करना चाहते थे। उत्सव, भोज और आमोद प्रमोद के साथ पारम्परिक पद्धति से वह आयोजन सम्प न करना था। इसके लिए भसा मगाया गया। आयोजक महोदय ने एक चमचमाती हुई तलवार सुलम के हाथ मे थमा दी और उससे भैसे पर प्रहार करने के लिए कहा।

सुलस सहम गया। उसने कभी कल्पना भी नही की थी कि उसे ऐसा जघन्य काम सौपा जाएगा। कुल परम्परा से वह भी कसाई था। उसका पिता प्रतिदिन पाच सौ भसो का वध किया करता था। वह किसी भी शत या प्रलोभन पर अपने उस दैनदिन काय को छोडने के लिए तैयार नही होता था। राजदण्ड का भय भी उसकी हिंसक मनोवृत्ति को नही बदल सका।

किसी समय मगध सम्राट् श्रेणिक ने कालसौकरिक को एक दिन महिष-वध न करने का आदेश दिया। आदेश का पालन न होने से सम्राट् रुष्ट हो गए। उन्होने अपने कमकरो को भेजकर कालसौकरिक को एक कुए मे उतरवा दिया। कालसौकरिक महिष-वध को अपना कुल धम मानता था। कुलधम के लोप की सभावना से वह छटपटाने लगा। उसकी विवश चेतना से हिंसा की ज्वाला फूटने लगी। कुछ समय तक तडपने के बाद उसके चेहरे पर चमक आ गयी। उसने कुए मे जमी मिट्टी को एकत्रित कर भैसो के आकार मे परिणत किया तथा उनका वध करके अपने कुलधर्म का निर्वाह किया।

सुलस अपने पिता की इस वृत्ति से दु खित था, पर वह निरपाय

था। उसे भी समय समय पर हिंसा के सम्कार मिले थे, किन्तु वह उनसे भावित नही हो सका। पिता की मृत्यु से व्यथित होने पर भी उसे इस बात का सुख था कि अब वह अपने परिवार को क्रूरता से मुक्त देख सकेगा। जिस समय उसके हाथ मे तलवार आयी, वह काप उठा। सामने खडे भैसे की कातर आखो से अभयदान की याचना झाक रही थी। सुलस ने उस निरीह महिष की मूक भाषा पढी और उसकी कराह मे आत्मवेदना का अनुभव किया। उसने महिष-वध के लिए अपनी असहमति और अशक्ति प्रकट की।

अन्धविश्वासो और रूढ परम्पराओ मे पले परिवार पर वह एक तीव्र आघात था। परिवार का हर सदस्य सुलस की हठधर्मिता से खिन्न था। एक ओर सुलस का दृढ सकल्प, दूसरी ओर पूरे परिवार का दवाव। समय बीत रहा था और समझौते का कोई आसार नही था। आखिर यह तय हुआ कि सुलस रस्म पूरी करने की दृष्टि से तलवार से एक वार कर दे, फिर सारा काम सभाल लिया जायेगा।

सुलस के प्रकम्पित हाथ स्थिर हुए। उसने तलवार की मूठ को सावधानी से पकडा और बिना कुछ सोचे सीधा प्रहार कर दिया। किन्तु वह प्रहार भैसे पर नही, सुलस के पाव पर था। पाव से रक्त की धारा बह चली। पारिवारिक जनो के चेहरो पर आश्चर्य, भय और आशका की क्षीण-सी रेखाए उभर आयी तथा उनकी आखो से एक प्रश्नचिह्न उभर आया।

सुलस ने उस प्रश्नचिह्न को विराम देते हुए कहा—"बन्धुओ! मेरे व्यवहार मे आपको किसी प्रकार की हठधर्मिता प्रतीत हुई हो, उसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हू। किन्तु एक तथ्य मैं आपको बताना चाहता हू कि जैसे हमे अपने प्राण प्रिय हैं, वसे ही इस भैसे को भी अपने प्राण प्रिय हैं। हम अपनी प्रियता का ध्यान रखते हैं और इन मूक पशुओ की प्रियता को उपेक्षित कर रहे हैं। इनके प्राण वियोजन मे हम धर्म या सुख की कल्पना करते है, वह वचना है। ऐसी वचना हमे कहा ले जाएगी, कहा नही जा सकता।"

सुलस का यह आत्मविश्लेषण अधकार मे प्रकाश किरण बनकर उभरा। वहा उपस्थित लोगो की चेतना के तार झनझना उठे। उन्होने कुल-परम्परा की बात छोडकर सुलस को गृहपति पद पर अभिषिक्त

कर दिया। हिंसा के परिवेश में उभरी हुई अहिंसा के आलोक ने सुलस की चेतना को पूर्ण रूप से आलोकित कर दिया और उससे जो रश्मियां विकीर्ण हुईं, उनसे अनेक भटकती चेतनाओं को सही मार्ग-दर्शन मिला।

सत्य की उपलब्धि

एक वृद्ध सन्यासी जगल मे साधना कर रहा था। एक दिन उसके निकट से एक देवदूत गुजरा। सन्यासी ने देवदूत को सम्बोधित कर कहा—'आप स्वर्गलोक मे जा रहे है, क्या एक काम मेरा भी कर सकेंगे?' देवदूत ने प्रश्नायित आखो से सन्यासी की ओर देखा तो वह बोला—'आप ईश्वर से पूछना कि मुझे मोक्ष कब मिलेगा? इसके लिए मुझे कितने समय तक प्रतीक्षा करनी होगी?' देवदूत उसे आश्वासन देकर आगे बढा। वहा से थोडी दूरी पर एक युवा सन्यासी बरगद के वृक्ष के नीचे बैठा था। देवदूत ने उससे पूछा—'आपकी मुक्ति के सम्बन्ध मे ईश्वर से कुछ पूछना है क्या?' युवा सन्यासी ने मानो कुछ सुना ही न हो, इस प्रकार वह प्रतिक्रियाशून्य होकर बैठा रहा। उसने न कुछ कहा और न देवदूत की ओर देखा ही।

देवदूत स्वर्गलोक पहुचा और कुछ समय बाद वहा से लौटकर पुन धरती पर आया। पहले वह उस वृद्ध सन्यासी से मिला, जिसके प्रश्न का उसे उत्तर देना था। वृद्ध साधु उसे देखकर उत्सुक हो उठा। देवदूत उसकी उत्सुकता को समझ रहा था, अत बिना कुछ पूछने पर भी वह बोला—'मैंने आपके सम्बन्ध मे ईश्वर से जानकारी कर ली है। ईश्वर ने बताया है कि आप इस ससार मे तीन बार फिर जन्म लेंगे।'

वृद्ध सन्यासी ने यह बात सुनी और वह क्रोध से आग बबूला हो गया। उसके होठ फडकने लगे और शरीर कापने लगा। वह अपने हाथ की माला को जोर से उछालते हुए बडबडाया—'तीन जन्म और! क्या अर्थ है इन तीन जन्मो का? इतना तप तपा, इतने कष्ट सहे, क्या कुछ नही किया मैंने मोक्ष की लालसा से? फिर भी तीन जन्मो का दु ख भोगना पडेगा'

वृद्ध सन्यासी का आवेश शान्त हो उससे पहले ही वह उस युवा सन्यासी के पास पहुच गया और बोला—'मैंने अपनी ओर से आपके बारे मे ईश्वर से पूछा तो मुझे उत्तर मिला कि जिस बरगद के वृक्ष के नीचे आप साधना कर रहे हैं, उसके जितने पत्ते है उतने जन्मो तक आपको यह कठोर साधना करनी होगी, तब कहीं जाकर मोक्ष का द्वार खुलेगा।'

युवा सन्यासी यह बात सुनकर प्रसन्नता से झूम उठा। उसकी आखो मे चमक आ गयी। वह देवदून की ओर उन्मुख होकर बोला—'मैंने सत्य को पा लिया, मोक्ष को पा लिया और असीम आनन्द का पा लिया। मैं तो सोचता था इस पृथ्वी पर जितने वृक्ष है और हर वृक्ष पर जितने पत्ते है, उतने जन्मो तक मुझे भव-भ्रमण करना पडेगा। किन्तु इस छोटे से बरगद के वृक्ष के पत्तो मे ही सिमट गया मेरा भव भ्रमण। मेरी सत्य की फसल पक गयी। इस प्रकार बोलते बोलते वह आत्म विभोर हो उठा। उसके सामने केवल सत्य, केवल मोक्ष और केवल आनन्द के चित्र उभर रहे थे। वह अपने आपको भूल गया और सत्य को उपलब्ध हो गया। उसकी उसी क्षण मुक्ति हो गयी।

यह एक कहानी है। इसके माध्यम से अणुव्रत यह सिखाता है कि यदि व्यक्ति अपनी दुबलताओ को विजित करना चाहता है तो वह उन्हे भार न समझे, उन पर गुस्सा न करे, आतुरता न रखे। क्योंकि ऐसा करके वह और अधिक दुबल बन जाएगा। दुबलताओ से अर्थात् अनैतिक आचरणो से व्यक्ति उस क्षण ही मुक्त हो सकता हे जब वह सर्वात्मना सदाचरण के प्रति समर्पित हो जाता है और सदाचरण से होने वाली निष्पत्ति मे खो जाता है। जब तक इतनी तीव्र आत्मलीनता नही होती, अणुव्रत के सिद्धान्त समग्र रूप से क्रियान्वित नही हो सकते।

तीन वैद्य

एक समृद्ध राज्य का राजा बहुत नीतिनिष्ठ था। वह अपनी प्रजा का बहुत ध्यान रखता था। प्रजा भी अपने राज्य के लिए सब कुछ करने के लिए तत्पर रहती थी। इस स्थिति मे भी राजा सुखी नही था। उसके चेहरे पर चिन्ता की उभरती हुई रेखाए प्रजा को भी चिन्तित कर देती थी। राजा की चिन्ता और व्यथा का कारण था उसके उत्तराधिकार को सभालने वाले पुत्र का अभाव। पुत्र के लिए राजा ने अनेक अनुष्ठान करवाए देवता मनाए, तप तपा कि तु उसकी आशा नही फली। पुत्र प्राप्ति की दृष्टि से सवथा निराश होकर वह तपोवन मे जाकर रहने की सोचने लगा, इस बीच किसी ऋषि ने उसको पुत्रोपलब्धि का वर दे दिया।

जीवन की सान्ध्य वेला मे राजा को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। राज्य भर मे खुशिया छा गयी। राजा का मन पुलकन से भर उठा। ज मोत्सव के उपलक्ष मे उसने मुक्त हाथो से दान दिया। पुत्र सयाना हुआ तो उसके अध्ययन की व्यवस्था कर दी गयी। प्रतिभा-सम्पन्न राजकुमार कुछ ही वर्षो मे प्रवुद्ध हो गया।

राजा अपने राजकुमार को शारीरिक और मानसिक सब दृष्टियो से स्वस्थ देखना चाहता था। ऐसी व्यवस्था करने के लिए उसने अपने राज्य के वरिष्ठ वैद्या को आमन्त्रित किया। तीन वैद्य उपस्थित हुए। राजा ने उनकी औषधि का प्रभाव जानना चाहा। एक वैद्य बोला—'राजन्! किसी भी प्रकार की बीमारी मे मेरी औषधि सजीवनी बूटी का काम करने वाली है। किन्तु यदि बीमारी नही है तो वह शरीर को कृश कर देती है।'

दूसरा वैद्य बोला—'महाराज! मैने इस बार एक विशेष योग

तैयार किया है। उसका सेवन करने से बीमार व्यक्ति शीघ्र ही स्वस्थ हो जाता है और किसी प्रकार की बीमारी न हो तो औषधि का दुष्प्रभाव या सुप्रभाव कुछ नहीं होता।'

तीसरे वैद्य ने अपनी औषधि की गरिमा का उल्लेख करते हुए कहा—'स्वामिन्! मेरे पास जो औषधि है, वह सब बीमारियों का प्रतिकार करने में सक्षम है। वर्तमान में कोई बीमारी नहीं है तो इसके सेवन के बाद भविष्य में किसी प्रकार की बीमारी आएगी नहीं तथा शरीर के ओज और तेज में निखार आता रहेगा।'

बन्धुओ! अणुव्रत तीसरे वैद्य की औषधि के समान है। व्यक्ति किसी भी प्रकार की बुराई से आक्रान्त होता है, इसकी आचार-संहिता का पालन करने से वह उस बुराई से मुक्त हो जाता है। यदि जीवन में इस क्षण तक किसी बुराई ने प्रवेश नहीं किया है तो अणुव्रत की स्वीकृति के बाद वह कभी प्रवेश पा नहीं सकेगी। इस प्रकार दुश्चरित्र के रोधक और सच्चरित्र के पोषक अणुव्रत की अपेक्षा को किसी भी युग में नकारा नहीं जा सकता।

भाषा नही, भावना

अणुव्रतो की स्वीकृति के साथ उनका पालन करने मे भावना का योग बहुत अपेक्षित है। भावना-योग से की गयी क्रिया विशेष फलदायी होती है। इसलिए आचरण के साथ मन-विशुद्धि की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है

मन शुद्धिमविभ्राणा ये तपस्यन्ति मुक्तये ।
त्यक्त्वा नाव भुजाभ्या ते तितीर्षन्ति महार्णवम ॥

—जो व्यक्ति मानसिक विशुद्धि का ध्यान नही रखते हुए मुक्ति के उद्देश्य से तपस्या करते है, वे नौका को छोडकर भुजाओ से महासमुद्र पार करना चाहते हैं।

व्रती जीवन की पहली अपेक्षा है प्रामाणिकता। मन की अविशुद्धि व्यक्ति के सामने अप्रामाणिकता के नये-नये द्वार खोल देती है। यह तथ्य निम्नाकित घटना से स्पष्ट हो जाता है

एक रईस व्यक्ति जलपोत से समुद्र पार कर रहा था। सहसा तूफान आया और पोत के सुरक्षित रहने की आशा धूमिल हो गयी। रईस व्यक्ति ने अपने इष्ट को याद कर कहा—'इस तूफान से मैं बच गया तो अपनी कोठी बेचकर गरीबो को दान कर दूगा।' सौभाग्य से वह बच गया। पूर्वसकल्प के अनुसार उसे अपनी कोठी बेचकर पैसे का वितरण करना था।

उसने कुछ लोगो के सामने कोठी बेचने की बात की पर उसके साथ एक शर्त रखी कि कोठी वही व्यक्ति खरीद सकेगा जो उसके साथ एक कुतिया भी खरीदेगा। मूल्य का प्रश्न सामने आने पर वह बोला—'कोठी का मूल्य एक रुपया और कुतिया का मूल्य पाच लाख।'

विचित्र शत थी उसकी। कुछ ग्राहक आये और चले गये। आखिर एक ग्राहक ने पाच लाख और एक रुपये मे उस कुतिया के साथ काठी को खरीद लिया।

रईस व्यक्ति ने अपने सकल्प के अनुसार काठी का एक रुपया गरीबो को बाट दिया और पाच लाख रुपये बक मे जमा कर दिए।

व्यावहारिक दृष्टि से उस व्यक्ति ने अपना सकल्प पूरा कर दिया। सकल्प पूर्ति के बाद उसे अप्रामाणिक नही कहा जा सकता। किन्तु सकल्प की क्रियान्विति मे जिस वचना का सहारा लिया गया, उसका जन्म मानसिक अविशुद्धि से ही हो सकता है। मन की शुद्धि व्यक्ति को वक्रना के पथ पर झाकने ही नही देती। ऋजु व्यक्ति किसी भी सकल्प की पूर्ति मे ऐसे छद्म को काम मे नही ले सकता।

अणुव्रत आपको यही निर्देश देता है कि आप व्रतो का पालन अपने अन्त करण से करे। व्रत-पालन मे किसी भी प्रकार की वचना आपको व्रती जीवन का वास्तविक आनन्द नही दे सकेगी। इसलिए आप व्रतो की भाषा नहीं, भावना को समझे और उसका पालन करे।

चरित्र-निष्ठा

नैतिकता एक सार्वभौम तत्त्व है। इसे हम देश, काल आदि की सीमाओं मे बाट नही सकते। नैतिकता के दो स्तर है—शाश्वत और सामयिक। सामयिक नैतिकता मूल्य मापेक्ष है। जिस समय जिस विचार और परम्परा को जो मूल्य मिलता है, वह उस समय मे नैतिक मूल्य के रूप मे प्रस्थापित हो जाता है। शाश्वत नैतिकता अध्यात्म से अनुवन्धित है। अध्यात्म जीवन का सत्य है। सत्य सूय के प्रकाश की भाति स्पष्ट और अविभाजित है।

घर मे मेहमान आये। गहस्वामी ने अपने कर्मकर को निर्देश दिया—गाय का दूध लेकर आओ। कमकर चला और पुन लौट आया। गृहस्वामी ने आने का प्रयोजन पूछा तो वह बोला—'दूध कौन-सी गाय का लाऊ? काली का या चितकबरी का?' गृहस्वामी ने कहा—'किमी भी गाय का ले आओ।'

कमकर थोडी दूर जाकर पुन लौट आया और बोला—'बाखडी गाय का दूध लाना है या सद्य प्रसूता का?' इस प्रश्न का भी उसे वही उत्तर मिला तो उसने पूछा—'अपने एक गाय खोटी हे और दूसरी साझी है। किस गाय का दूध ठीक रहेगा?'

इस बार गृहस्वामी थोडा झुझला गया। उसने रोप प्रदर्शित करते हुए कहा—'कितनी बार समझा दिया तुमको, मेहमान को दूध पिलाना है या दशन की गुत्थी सुलझाना है? जाओ, अब कुछ पूछने का अवकाश नही है। किसी भी गाय का दूध हो, मुझे तो दूध चाहिए।'

दूध-सी उज्ज्वल नैतिकता को भी केवल अध्यात्म का अनुबन्ध स्वीकार है। फिर चाहे वह किसी देश मे, किसी समय, किसी रूप मे अपने अस्तित्व को अभिव्यक्ति देती हो।

अणुव्रत आन्दोलन नीति और चरित्र-निष्ठा को विकसित करने वाले सूत्रों को समाज के चिन्तन और आचरण मे प्रतिबिम्बित देखना चाहता है। चिन्तन और आचरण के बीच सेतु का काम करने वाला तत्त्व है 'वातावरण'। अनुकूल वातावरण मे विचारो की पौध जल्दी फल लाती है। वातावरण के साथ व्यवस्था सुधार का पक्ष भी गौण नही हो सकता।

कुल मिलाकर अणुव्रत का उद्देश्य है—मानव समाज को चरित्र-निष्ठ बनाना। किसी भी माध्यम से चरित्र-निष्ठा का विकास हो, साधन यदि शुद्ध है तो वह अणुव्रत-कार्य का ही अंग है।

सन्दर्भ का मूल्य

धर्म जीवन की आन्तरिक पवित्रता है। जो व्यक्ति जितना धार्मिक होता है, उसका अन्तःकरण उतना ही पवित्र होता है। पवित्रता के अभाव मे धार्मिकता को पल्लवन नही मिलता। धार्मिकता से मेरा अभिप्राय क्रियाकाण्डी धर्म से नही है। धर्म एक सार्वभौम मौलिक तत्त्व है। कोई भी व्यक्ति ऐसा नही होता जो धर्म के मौलिक सिद्धान्तो को नकारता हो। उन सिद्धान्तो को वह जीवनगत करता है या नही, यह एक दूसरा प्रश्न है, किन्तु उनके साथ उसकी असहमति नही होती। वह अपनी दुर्बलता, विवशता या अन्य किसी कारण की प्रेरणा से धर्म के प्रति उपेक्षा व्यक्त कर सकता है पर जिस समय वह बाह्य आकर्षणो से मुक्त होकर अन्तर्मुखी दृष्टि से देखता है, उसे धर्म की नितान्त अपेक्षा अनुभव होती है।

धर्म का स्वरूप आध्यात्मिक होता है। जहा धर्म है वहा अहिंसा, मृदुता और मैत्री है। जहा अधर्म है, वहा हिंसा, क्रूरता और शत्रुता है। आज मानव समाज की पीडा का सबसे बडा हेतु कोई है तो उसकी धर्म शून्य वृत्तिया है। धर्म की सौरभ को जन-जन तक पहुचाने के लिए उन सब व्यक्तियो को मिलकर प्रयत्न करना है, जिनकी धर्म मे आस्था है, अध्यात्म मे आस्था है और नैतिकता मे आस्था है। मैं बहुत बार कहता हू कि कोई व्यक्ति धार्मिक बने, उससे पहले उसे नैतिक बनना चाहिए। नैतिकता-शून्य धार्मिकता कभी जीवित नही रह सकती। नैतिक मूल्य दो प्रकार के होते है—शाश्वत और सामयिक। सामयिक मूल्य परिवर्तनशील होते हैं किन्तु शाश्वत मूल्य सदा धर्म की परिधि मे ही चक्रमण करते रहते हैं।

धार्मिक नैतिक मूल्यो को स्व पर के दर्पण मे न देखकर व्यापक

स्तर पर देखते हैं । अपने स्वार्थ के लिए नैतिकता को आगे रखना नैतिकता के नाम पर लाभ उठाना है । एक कर्मचारी को मासिक वेतन मिला । रुपये गिनकर देखे, पाच रुपये कम थे । वह सीधा अधिकारी के पास गया और रुपये कम होने की शिकायत की । अधिकारी बोला—'पिछले माह तुम्हे पाच रुपये अधिक दिए गए थे, उस समय उन्हे लौटाने क्यो नही आए ?' कर्मचारी ने तपाक से उत्तर दिया—'किसी महीने भूल सह्य हो सकती है पर लगातार दो महीनो तक आप गलती करें, यह मेरे लिए असह्य है ।'

कितना तीखा व्यग्य है यह तथाकथित प्रामाणिकता पर ! व्यक्ति दूसरो को धोखा देता है, खाद्य पदार्थों मे मिलावट करके देता है, और भी न जाने क्या-क्या करता है, उस समय उसके मन मे यह विचार नही आता कि यह अनुचित कार्य मुझे नही करना चाहिए । दूसरो की ओर से उसके साथ ऐसा व्यवहार होते ही वह चौकन्ना हो जाता है, नैतिकता की दुहाई देता है और मूल्यहीनता के प्रश्न को बढा चढाकर उपस्थित करता है ।

मनुष्य की यह सबसे बडी दुर्बलता है कि वह दूसरे की विशेषता को परमाणु जितने छोटे रूप मे देखता है और गलती को पर्वत जितना बडा रूप दे देता है । अपनी बडी भूल को छोटी करके मानता है और छोटी सी विशेषता को बहुत महत्त्व देता है । यह दृष्टिकोण का मिथ्यात्व है । जब तक दृष्टिकोण सही नही होता है, मनुष्य किसी भी तथ्य का सही अकन नही कर सकता । सही अकन के अभाव मे क्रिया सही नही होती और असत क्रिया करता हुआ व्यक्ति अपनी मजिल से भटक जाता है । भटकन के बाद सही दिशा का बोध और तदनुरूप आचरण दोनो कार्य कष्टसाध्य हो जाते है । इसलिए यह आवश्यक है कि मनुष्य धर्म के सिद्धान्तो को अपने जीवन के सन्दर्भ मे पढे । सन्दर्भो से टूटा हुआ साहित्य ज्ञानवर्धक नही होता है, वैसे ही जीवन के सन्दर्भो से भटका हुआ व्यक्ति धर्म के वास्तविक स्वरूप को नही समझ पाता ।

जागरण ही जीवन है

समय बड़ी तेजी से गुजर रहा है और इसके साथ ही घटते जा रहे है जीवन के मूल्यवान क्षण। मनुष्य का जीवन अपने आप मे एक उपलब्धि है, पर उन लोगों के लिए है, जो जागृत जीवन जीते हैं। सुषुप्ति प्रमाद है। प्रमाद विकास के लिए अभिशाप है। भगवान् महावीर ने आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व मनुष्य को जागरण का सन्देश दिया। जागरण ही जीवन की वास्तविकता है। सुषुप्ति अधकार है जागरण प्रकाश है। सुषुप्ति मृत्यु है, जागरण अमृत है। सुषुप्ति असत् है, जागरण सत् है। जागत मनुष्य न अपना अहित करता है और न दूसरो का। सुप्त चेतना से विकीर्ण अणु व्यक्ति को पथच्युत कर देते है। अणुव्रत मनुष्य को जागरण की दिशा देता है। भगवान् महावीर ने नैतिक मूल्यो के सन्दर्भ मे जो कुछ कहा है, अणुव्रत उसी की प्रतिक्रिया है। इसके माध्यम से व्यक्ति अपने जीवन को नया रूप और नया अर्थ देने मे सक्षम हो सकता है।

जीवन को नया अर्थ देने के लिए अहं को तोडना आवश्यक होता है। एक सूफी फकीर के पास एक सम्राट् पहुचा। उसने जीवन की परिभाषा के सम्बन्ध मे जिज्ञासा की। फकीर ने कहा—'कल आना।' सम्राट् जिज्ञासु था। वह दूसरे दिन पहुचा। फकीर ने कहा—'सात दिन तक पूरे शहर मे भिक्षाटन करो। उसके बाद आना।' सम्राट् विनम्र होकर बोला—'अपने शहर मे भिक्षा मागना कठिन होगा। जिन लोगो को मैं प्रतिदिन देता हू, उन्ही के सामने जाकर हाथ कैसे पसारू? किसी दूसरे शहर मे जाकर भिक्षाटन कर लूगा।' फकीर मौन हो गया। सम्राट् के मन मे तडप थी। वह अपनी प्रजा के घरो मे भिक्षा करने के लिए तैयार हो गया। सात दिन तक पूरे शहर मे घूमा। छोटे-

वहे हर व्यक्ति के सामने हाथ फैलाया। तब तक उसका अहं पिघल गया। अहं से मुक्त होते ही उसे जीवन का सही बोध हो गया। फिर उसे फकीर के पास जाने की अपेक्षा नही रही, वह स्वयं उस रहस्य से अवगत हो गया, जिसकी उसे खोज थी।

अणुव्रत दर्शन अहं तोडने की प्रक्रिया है। समाज मे रहने वाला व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा के लिए उचित-अनुचित हर पद्धति के अर्थ का अर्जन, संग्रह और संरक्षण करता है। नैतिक मूल्य उनकी दृष्टि मे अकिंचित्कर होते हैं। एक अणुव्रती व्यक्ति झूठी प्रतिष्ठा के हाथ अपनी नैतिकता का विक्रय नही कर सकता। वह जीवन मे आने वाली कठिनाइयो से जूझ सकता है पर उनके आगे घुटने टेकने की नही सोच सकता। अणुव्रतो के संबंध मे बहुत लोग जानकारी करते हैं। कई व्यक्ति उन्हे जीवनगत करने का संकल्प भी करते हैं किन्तु जब तक घनीभूत आस्था का विकास नही होता है और भीतर अहं का आवरण नही टूटता है, व्यक्ति अपने संकल्प के लिए सर्वात्मना समर्पित नही हो सकता। भगवान् महावीर के निर्वाण शताब्दी वर्ष मे अणुव्रत मे आस्थाशील व्यक्ति अपने ऊंचे आदर्शों से विश्व के सामने एक उदाहरण उपस्थित करें। वे स्वयं नैतिक जीवन जीते हुए अपने परिपार्श्व को नैतिकता के परमाणुओं से आप्लावित रखें।

आत्मालोचन

अपने जीवन को आत्मालोचन के दर्पण मे देखो, कही उसमे द्विरूपता तो नही है। कहना कुछ और करना कुछ, होना कुछ और दिखाई देना कुछ, यह दोहरापन है। दोहरी भूमिका निभाने वाले व्यक्ति के चिंतन मे स्थायित्व नही आ सकता। वह कभी एक ओर खिचता है, कभी दूसरी ओर, कभी इस ओर दौडता है, कभी उस ओर। दौड धूप मे करणीय काम छूट जाता है। व्यक्ति विमूढ बनता है और शेष रहता है कोरा पश्चात्ताप, पीडा और ग्लानि।

धार्मिक सस्कारो की दोहरी भूमिका निभाने वाली एक बहन मेरे सामने थी। आध्यात्मिक चर्चाए चली। सहसा उसका मन व्यथा से भर गया। वह अपने अन्तर्द्वन्द्व मे उलझती गयी। दहलीज पर रखे हुए दीपक का प्रकाश बाहर और भीतर दोनो तरफ होता है। वह बहन सयम की दहलीज पर खडी थी। सस्कारो का एक स्रोत इधर से बह रहा था, दूसरा उधर से बह रहा था। किस स्रोत मे बहे और किसकी उपेक्षा करे? चिंतन की अस्थिरता से वह घबरा गयी। मन की पीडा आखो के द्वारा वह निकली।

मैंने इस आकस्मिक परिवर्तन को जानना चाहा पर वह उस समय बोल नही सकी। फिर उसकी उलझन का पता चला। मैंने उसको आश्वस्त करते हुए कहा, "बहन! अपनी नाडी स्वय मत देखो। अपनी डॉक्टर स्वय मत बनो। डॉक्टर कितना ही कुशल क्यो न हो, अपनी चिकित्सा वह स्वय नही करता। अभी तुम्हारी मन स्थिति सतुलित नही है। तुम शान्त होकर अपनी समस्या का समाधान खोजो। अपनी उलझन रखो और सही मार्गदर्शन लेकर निर्विकल्प रूप से अपने गतव्य का निर्धारण करो।"

दो दिन बाद वह बहन उपस्थित हुई। उसके स्वत चिकित्सा के मनोभाव क्षीण हो चुके थे। स्थिरता और सतुलन से उसने अपने मन की एक गाठ खोली। अपने दोहरे सस्कारो की अस्थिरता समाप्त करने के लिए वह समुद्यत हो गयी।

मैंने उसको सिद्धात और व्यवहार की भेदरेखा के सम्बन्ध मे समझाया। उसकी आशकाओ को जानकर तात्त्विक विश्लेषण किया और किसी भी पूर्वाग्रह से मुक्त होकर चिंतन करने का सुझाव दिया। उसकी ग्रहणशील जिज्ञासाए उलझन के जालो से मुक्त हुई और इसके साथ ही उसे मानसिक स्वास्थ्य की अनुभूति होने लगी।

जो व्यक्ति स्वय अपना चिकित्सक बनता है, वह अपनी समाधि को भग करता है। जो व्यक्ति दोहरा जीवन जीता है, वह भी समाधि और आध्यात्मिक स्वास्थ्य को भग करता है। 'अणुव्रत' इस दोगलेपन की नीति मे सुधार की बात कहता है।

मन्दिर और आफिस के जीवन की द्विरूपता मानसिक द्वन्द्व उत्पन्न करती है। मन, वाणी और कर्म की एकरूपता मे हर व्यक्ति स्वस्थ और प्रशस्त जीवन जी सकता है। अपने आध्यात्मिक चिकित्सक के प्रति सम्पूर्ण समर्पण और उनके द्वारा प्राप्त दिशा का अनुसरण ही दोहरी भूमिकाजन्य उलझनो को समाप्त कर सकता है।

आस्था के अकुर

विश्व मे दो प्रकार की शक्तिया होती है—राजशक्ति और अध्यात्म-शक्ति। राजशक्ति कितनी ही प्रबल क्यो न हो, वह अध्यात्मशक्ति के नियन्त्रण मे रहकर ही सफल होती है। अध्यात्म का अकुश नही होने से वह उच्छृ खल, चपल और अनैतिक हो जाती है। क्योकि राजशक्ति राजसिक और तामसिक तत्त्वो से निर्मित होती है, जब तक इसमे सात्विक तत्त्वो का समावेश नही होता है, यह शक्ति निस्तेज और प्रभावहीन रहेगी। अध्यात्मशक्ति राजशक्ति की विघटक नही, किन्तु पूरक है। दोनो शक्तियो के समुचित योग से ही मानवीय सस्कृति का पल्लवन हो सकता है।

वतमान धारणाओ के आधार पर एक अह प्रश्न अपना सिर उठा रहा है कि अध्यात्म-प्राण भारत मे अध्यात्म सस्कृति दुर्बल क्यो ? क्या यह सस्कृति दुवल होती होती समाप्त हो जाएगी ? इस प्रश्न के सन्दर्भ मे जब कभी चिंतन करता हू, एक ही समाधान आता है कि धम या सस्कृति समाप्त होने की वस्तु नही है। इसका प्रभाव कुछ कारणो से मन्द अवश्य हुआ है, पर सर्वथा निस्तेज नही हुआ है। मौलिकता गौण हुई है किन्तु अब भी उसका अस्तित्व है। बौद्धिकता और भौतिकता का विस्तार हुआ है, पर आस्था के अकुर मुरझाए नही है। आस्था के इन नन्हे-नन्हे अकुरो को सिंचन देने के लिए क्रियाकाण्डी धर्म से पहले नैतिक सस्कारो का अजन अपेक्षित है।

मुझे अनुभव होता है कि भारतीय जनमानस अनुकरण-प्रधान है। अनुकरण भी उन प्रवृत्तियो का अधिक होता है, जो विदेश मे प्रचलित हो। अध्यात्म की मूल्यवत्ता के अकन मे कमी का भी यही कारण है। यहा से धर्म या अध्यात्म बाहर जाएगा, वहा की मुद्रा से अकित होकर

भारत मे लौटेगा। तब भारतीय लोग उसे महत्त्व देंगे किन्तु पीडा तो इस बात की है कि बाहर धम का जो स्वरूप जा रहा है, वह असली नही है। इससे वहा भारत की सही तसवीर नही पहुच रही है। आज अपेक्षा यह है कि भारत की वास्तविक आध्यात्मिक तसवीर का प्रस्तुतीकरण हो ताकि सहज धम का विकास हो सके।

जीवन मे जब तक सहज धम का विकास नही होता है, उपासना पद्धतियो मे कोरा प्रदर्शन रहता है। प्रदर्शन एक औपचारिक तत्त्व है। इसका तात्कालिक प्रभाव भले ही हो जाए, दीर्घकालीन परिणाम नही आ सकता। कृत्रिम आनन्द की अनुभूति सहज आनन्द का स्पश भी नही पा सकती। सहज आनन्द धम को सहज मानकर स्वीकार करने से ही उपलब्ध हो सकता है। जीवन के व्यवहारो मे जब तक सहज धम का स्फुरण नही होगा, अध्यात्म-शक्ति फलदायिनी नही होगी। व्यवहार जगत् मे उभरी हुई अनैतिक वृत्तियो से प्रत्यावतन करने की बात जब तक समझ मे नही आएगी, भ्रष्टाचार की समस्या का अन्त नही होगा।

अणुव्रत मे जिनकी निष्ठा है वे इस प्रत्यावतन की प्रक्रिया को समझे और वैयक्तिक स्तर पर सदाचार को जीवन्त रखने का सकल्प स्वीकार करे।

शक्ति का विस्फोट

अणुव्रत वह रोशनी है, जिससे कई पथ भूलो ने अपना मार्ग पाया है। जिनके मार्ग मे सघन अधेरा या कुहरा था, वह अणुव्रत के प्रकाश से छिन्न-भिन्न हो गया। अणुव्रत और कुछ नही, मनुष्य को बनाने की प्रक्रिया है। अणुशक्ति का विस्फोट विश्व के बाह्य पर्यावरणो मे हलचल उत्पन्न करता है। व्रत शक्ति का विस्फोट चेतना के गहरे तलो का स्पर्श करता हुआ प्रकम्पन पैदा करता है। व्रत मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा का सफल उपक्रम है। इससे जीवन मे उच्चता और पवित्रता के सस्कार आते है।

भारतीय सस्कृति के अणु-अणु मे नैतिक सस्कारो की गूज है। इसे विस्मृत करने वाले मानवीय मूल्यो की उपेक्षा कर रहे है। वर्तमान परिस्थितियो मे इन मूल्यो को आत्मसात् करना बहुत आवश्यक है। प्यास गहरी होती है, उस समय प्राप्त पानी अमृत-सा मीठा लगता है। अनैतिकता जिस समय चरम सीमा पर पहुच रही हो, लोग चाहे-अनचाहे उन सदर्भो से स्वय को पृथक् नही कर पा रहे हो, उस विषम स्थिति मे अणुव्रत एक आलम्बन है।

दूसरे देशो का प्रबुद्ध वर्ग अणुव्रत से बहुत अपेक्षाए रखता है। वे चाहते हैं कि उनके यहा भी अणुव्रत की सुरसरिता प्रवाहित हो ताकि वहा नैतिक मूल्यो की खेती लहलहा सके। अभी कुछ दिन पहले नेपाल के भारत स्थित राजदूत श्री भल्ला अणुव्रत के कार्यक्रम मे उपस्थित हुए। उनके मन मे अणुव्रत के प्रति लगाव है। वार्तालाप के समय उन्होने कहा— 'अणुव्रत नेपाल के लिए भी बहुत उपयोगी तत्त्व है। इसके बिना विकास की सारी योजनाए नाकामयाब हो रही हैं। यह एक असाम्प्रदायिक और मानवीय तत्त्व है। इसके सहारे मानव मानवता

तक पहुंच सकता है। इसलिए इसके प्रति मेरा आकर्षण है। चुनाव पद्धति मे जो विकृतिया घुस-पैठ कर चुकी हैं, वे अज्ञात नही हैं। आज भारत मे ही नही, नेपाल मे भी यही घटित हो रहा है। चुनाव आयोगों से इसमे सुधार की बात असभव है। मेरी दृष्टि मे बुराई का प्रतिकार करने वाली प्रतिरोधात्मक शक्ति अणुव्रत मे है। मैंने कल दूतावास मे कुछ अतिथियो को आमन्त्रित किया था। उनके सामने अणुव्रत की चर्चा चली थी। उन्होने उसको पसन्द किया। आपको हर देश और हर वर्ग मे अणुव्रत का काम करना चाहिए। नेपाल मे इसका कुछ क्रम चला है। अब वहा तीव्र प्रयत्न की अपेक्षा है। अणुव्रत का प्रसार जितना अधिक होगा, उसका लाभ सबको मिलेगा।'

अणुव्रत के प्रति हर देश के लोगो मे श्रद्धा है। सही तत्त्व को सही रूप मे समझना एक अच्छी बात का प्रारम्भ है। सही बात को उस रूप मे समझने और उसके बाद अपनाने से नैतिक अवमूल्यन की समस्या का समाधान हो सकेगा।

लम्बा यात्रा-पथ

मनुष्य का जीवन एक लम्बा यात्रा-पथ है। पथ लम्बा है, इसलिए उसमे उतार-चढाव और घुमाव भी स्वाभाविक हैं। पथ की स्वीकृति किसी मजिल तक पहुचने के लिए की जाती है। मजिल बहुत दूर होती है तो मध्यावधि विश्राम भी आवश्यक हो जाते है। मानवीय चेतना का परिपूर्ण विकास मनुष्य की अन्तिम मजिल है। दूसरे शब्दो मे बन्धनो की परिधि से अपनी चेतना को सर्वथा मुक्त करके उसे स्वतत्रता की सवेदना से अनुप्राणित कर देना इस यात्रा पथ का आखिरी पडाव है। हर व्यक्ति की सवेदनाए भिन्न भिन्न होती है। इस भिन्नता के आधार पर कार्य-पद्धति मे भी अन्तर रहता है अत कहीं कही एक ही मजिल के लिए गतिशील व्यक्तियो मे टकराहट भी हो जाती है। जो व्यक्ति टकराहट मे उलझ जाते हैं, वे वही रह जाते हैं और जो वहा से छूटकर आगे वढ जाते है, वे अपनी अप्रतिम मजिल को पा लेते है।

यायावर यात्राकाल मे सुविधा के लिए पाथेय अपने साथ रखते हैं। यात्रा जितनी लम्बी होती है, पाथेय की अपेक्षा उतनी ही वढ जाती है। साथ मे सम्बल न हो और विश्राम-स्थलो पर भी उसकी उपलब्धि न हो तो गति का उत्साह क्षीण हो जाता है। जीवन यात्रा के लिए सबसे वडा पाथेय है 'व्रत'। अणु और महा—इन दो विशेपणो मे सवलित होकर व्रत सबके लिए उपभोग्य वन जाता है। यदि इसका रूप निर्विशेष होता तो इसकी उपयोगिता मे सशय की रेखाए उभर आती। किन्तु व्रत का मार्ग जिन मनीपियो ने दिखाया, वे सर्वदर्शी थे। उन्होने अपने ज्ञान चक्षुओ से जन-मानस की क्षमताओ को देखा। उन्हे लगा, निर्विकल्प व्रत की आराधना से कुछ व्यक्ति घबरा रहे है, इसलिए उनको थोडी छूट देनी होगी, अन्यथा वे घुटने टेक देंगे और एक कदम

भी आगे नहीं बढ सकेंगे। सीधे मार्ग की दृष्टिगत लम्बाई देखकर वे घबरा जाएंगे, इसलिए उनके लिए घुमावदार मार्ग का निर्देशन करना होगा। हर घुमाव पर उन्हें विश्राम की सुविधा रहेगी और उस विश्रान्ति से अर्जित शक्ति उन्हें आगे बढने की प्रेरणा देगी।

महाव्रत परम आदर्श है। इस आदर्श की उपलब्धि से ही अंतिम मंजिल की उपलब्धि हो सकती है। मध्यवर्ती मंजिलों को पार करने के लिए अणुव्रत का प्रशस्त मार्ग सामने है। व्यक्ति अपने अन्तःकरण की समग्र आस्था और अटल आत्मविश्वास के साथ अपनी क्षमता का उपयोग करे। अणुव्रत उसके जीवन को आलोक से भर देगा। उसका क्षण क्षण आनन्द की सौरभ में महक उठेगा।

सच्चे मानव की उपाधि

मनुष्य धन वैभव, पद, प्रतिष्ठा—सब कुछ प्राप्त कर सकता है, पर मनुष्यता की उपलब्धि बहुत कठिन है। क्योकि अन्य चीजे बाह्य है। इन्हे अर्थ के द्वारा, पुरुषार्थ के द्वारा अथवा किसी अन्य माध्यम से पाया जा सकता है, किन्तु मनुष्यता बाहर से नही आती, भीतर से प्रस्फुटित होती है। उस पर आए हुए आवरण को तोडकर उसे अभिव्यक्त किया जा सकता है।

एक राजा अपनी प्रजा को नित्य नयी उपाधिया देता था। एक प्रकार से यह उसकी हॉबी हो गयी थी। उसके पास कई महत्त्वाकाक्षी व्यक्ति आते और आकर्षक उपाधि ग्रहण कर खुश हो जाते। एक दिन एक युवक राजा के सामने उपस्थित हुआ। राजा ने उसकी आकाक्षा को जानना चाहा। युवक बोला—'राजन्! मुझे एक उपाधि चाहिए। मैंने सुना है कि आप उपाधियो का वितरण करते हैं। क्या यह बात सही है? यदि सही है तो कृपा कर एक उपाधि मुझे भी दे दीजिए।'

राजा ने देखा—युवक की आखो मे चमक है और मन मे उत्साह। उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर राजा ने उसको एक से अधिक उपाधिया देने की सहमति व्यक्त की। किन्तु युवक उनके लिए तैयार नही हुआ। वह कोई महत्त्वपूर्ण उपाधि पाना चाहता था। राजा की तीव्र उत्सुकता देखकर वह बोला—'महाराज! मुझे आप यह उपाधि दे दीजिए कि मैं एक सच्चा मानव हू।' राजा कुछ क्षण मौन रहा। उसने अपने आपको इसके लिए असमर्थ अनुभव किया। उधर युवक उतावला हो रहा था। उसे निराश लौटाना भी उचित नही था। पर राजा करे भी तो क्या करे? उसने युवक के सामने अपनी विवशता व्यक्त करते हुए कहा—"मैं तुमको सबसे महत्त्वपूर्ण महामात्य का पद

दे सकता हू किन्तु 'सच्चे मानव' की उपाधि मेरे पास नही है।" युवक वहा से निराश होकर लौट गया।

यह घटना प्राचीन समय की है। इस युग मे 'अणुव्रत' जन-जन को 'सच्चे मानव' की उपाधि देने के लिए कटिबद्ध है। किन्तु यह उपाधि उसी व्यक्ति को मिल सकती है जो अणुव्रत को भावनात्मक स्तर पर अपनी स्वीकृति दे। भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित अणुव्रतो को युग-भाषा मे प्रस्तुत कर हमने मनुष्य को सही अर्थ मे मनुष्य बनाने का उपक्रम युग के सामने रखा है। अब समय का तकाजा है कि मनुष्य मानवीय मूल्यो को अपने जीवन मे प्रतिष्ठित कर स्वय ही 'सच्चा मानव' की उपाधि को प्राप्त कर स्वस्थ जीवन जीने की शुरुआत करे। प्रदत्त पद और उपाधिया अस्थायी होती हैं। उन्हे कभी भी छीना जा सकता है, क्योकि वह सब बाह्य होता है। अन्तर से जो उपाधि आविर्भूत होती है उसे न कोई व्यक्ति मिटा सकता है और न समय की परत ही उसे आच्छादित कर सकती है।

अभावुक बनो

ससार मे दो प्रकार के मनुष्य होते है—भावुक और अभावुक। भावुक वह होता है जो विजातीय तत्त्वो से भावित हो जाता है। भावुक वह होता है, जो पानी के तेज प्रवाह मे बहते हुए तिनके की भाति प्रवाह-पाती होता है। भावुक वह होता है जो अपनी स्थिति के प्रति जागरूक न रहकर आगतुक हर स्थिति को ओढ लेता है। भावुक वह होता है जो किसी भी प्रवृत्ति के दीर्घकालिक परिणाम को सोचे बिना ही उसमे प्रवृत्त हो जाता है।

प्राचीन आचार्यों ने भावुक और अभावुक की चर्चा मे दो पदार्थों का उल्लेख किया है—वैडूर्य रत्न और मिट्टी का केलू। केलू भावुक होता है। उसे किसी भी रग से भावित किया जा सकता है। किन्तु वैडूर्य रत्न अन्य रग से सस्कारित नही होता क्योकि वह अभावुक है।

भावुकता और अभावुकता—दोनो तत्त्वो का अपना मूल्य है, पर सक्रमणशीलता के सन्दर्भ मे बुराई से भावुक होना उचित नही है। अनैतिकता एक बुराई है। उसके अणु सक्रामक है। वे उस व्यक्ति को प्रभावित करते हैं जो भावुक होता है जो अनैतिकता के तात्कालिक भौतिक परिणाम को देखकर उससे आकृष्ट होता है और जो भौतिक जीवन को ही सब-कुछ मानकर चलता है।

राजा रोग से आक्रान्त था। चिकित्सक ने रोग का निदान कर कहा—'आप स्वस्थ हो सकते है, यदि आम का जीवन भर परिहार कर दें।' राजा इस बात से सहमत हो गया, किन्तु वह जब कभी आम देखता, उसका मन ललचा जाता। लालसा अधिक बढती तो वह आम खा भी लेता। चिकित्सक ने सुझाव दिया—'राजा आम देखे ही नही।' कई दिनो तक यह क्रम चला। राजा का स्वास्थ्य थोडा-थोडा सुधरने

लगा। एक दिन वह अपने सचिव के साथ घूमने गया। जब वह थक गया तो उसने किसी वृक्ष के नीचे विश्राम करना चाहा। पास में ही आम का गहरा वृक्ष था। राजा ने उस ओर रुकने का संकेत किया। मंत्री इससे सहमत नहीं था, क्योंकि आम देखकर राजा आम खाए बिना रह नहीं सकता था। मंत्री ने कहा—"राजन् ! यह स्थान आपके लिए उपयुक्त नहीं है। हम थोड़ा आगे चलकर विश्राम कर लेंगे।" राजा बोला—"अपना अहित मैं खुद समझता हूं, मैंने संकल्प कर लिया है कि अब आम नहीं खाऊंगा। तुम डरो मत। हम यहीं ठहरते हैं।"

राजा और मंत्री वृक्ष की ठण्डी छाया में ठहरे। पके हुए आमों ने राजा को अपने संकल्प से विचलित कर दिया। उसने आम खाया और परिणामस्वरूप वह मृत्यु को प्राप्त हो गया।

बुराई के प्रति भावुक व्यक्तियों के लिए यह आवश्यक है कि बुरे संसर्ग से अपना बचाव करते रहें और इस सूक्त को अपने सामने रखें—

यदि सत्संगनिरतो भविष्यसि, भविष्यसि।
अथ दुर्जनसंसर्गे पतिष्यसि, पतिष्यसि॥

—यदि अच्छे व्यक्तियों के साथ रहोगे तो अपना जीवन बना लोगे और दुर्जन व्यक्तियों के संसर्ग में गिरोगे तो सर्वथा गिर जाओगे।

आत्म-प्रेरणा

मनुष्य किसी भी परिस्थिति मे मनुष्यता का अतिक्रमण न करे तो यह धरती सबके लिए सुखद बन सकती है। ससार मे जहा कही भी सुखद नही है, शिवमूलक नही है, सुन्दर नही है, उसके पीछे मानवीय कर्तृत्व की कमी का योग है। मनुष्य चाहे तो वह घर-घर और गाव-गाव मे सत्य शिव सुन्दर की मनोज्ञ समन्वित कर सकता है। किन्तु यह उसकी विवशता है कि वह प्रतिकूल परिस्थितियो के सामने घुटने टेक देता है और अपने करणीय से विमुख हो जाता है।

सिंह एक पशु है। उसे अपनी शक्ति पर गर्व है। वह अपनी बुभुक्षा शान्त करने के लिए स्वय पराक्रम करता है। परवशता की स्थिति मे स्वय पुरुषार्थ न भी कर सके तो ग्राम्य पशुओ का भोजन (घास) खाने के लिए तैयार नही होता। वह भूखा रहना स्वीकार कर लेता है पर तृण-समूह खाकर अपनी शक्तिहीनता का परिचय नही देता।

सिंह एक वन्य प्राणी है उसकी चेतना मनुष्य की अपेक्षा कम विकसित होती है। सकल्प बल की दृष्टि से भी उसका विवेक इतना जागरूक नही है, फिर भी वह अपने सहज सकल्प के प्रति दृढ रहता है। यद्यपि इसमे उसके हिंसा के प्रबल सस्कार निमित्त बनते है, जो मानवता की दृष्टि से कभी भी काम्य नही है। मानवीय सभ्यता के विकास मे हिंसा को उपादेय नही माना जा सकता, पर मानसिक दृढता का अपना मूल्य है।

नैतिक मूल्यो के प्रति आस्थाशील व्यक्ति यदि किसी भी मूल्य पर उनसे पीछे हटने का प्रयत्न न करे तो वह अपनी सांस्कृतिक चेतना को अधिक विकसित कर सकता है। अणुव्रत आन्दोलन नैतिकता की जडो

को मजबूत करने के लिए एक सरल प्रक्रिया प्रस्तुत करता है। वह कर्म और व्यवहार को शुभ बनाने तथा अवाछनीय प्रवृत्ति से निवृत्त होने की प्रेरणा देता है। इस प्रेरणा को आत्म-प्रेरणा से स्वीकृत करने वाला व्यक्ति अपने व्यवहार से सद्भावना के प्रतिबिम्ब छोड सकता है।

निर्देश के प्रति सजग

प्राचीन समय की बात है। राजा सुमगल ने अपने पडोसी राजा सुषेण पर अचानक आक्रमण कर दिया। सुषेण के पास प्रत्याक्रमण की कोई तैयारी नही थी। इस आकस्मिक विपदा से वह बहुत दु खी हुआ। अपने देश की सुरक्षा के लिए उसने शहर के सभी द्वार बन्द करवा दिए। शत्रु-सेना का मुकाबला करने मे वह असमर्थ था, इसलिए उसने शहर से बाहर तालाबो और कुओ मे विष का मिश्रण करवा दिया। खाने योग्य फलो वाले वृक्ष भी विष-प्रयोग से अछूते नही रहे।

सुमगल को विष-प्रयोग की अवगति मिली। उसने अपनी सेना को इस स्थिति से सूचित करने के साथ स्पष्ट सकेत कर दिया कि जिसको अपना जीवन प्रिय है, वह न तो यहा का पानी पीए और न फल खाए। सैनिको ने राजा द्वारा उद्घोषित घोषणा सुनी। कुछ सैनिक अपने स्वामी के निर्देश के प्रति सजग रहे। उन्होंने न वहा का पानी पीया और न फल खाए। वे अपने जीवन को सुरक्षित रखकर अपने कार्य मे सलग्न रहे।

कुछ सैनिक भूख प्यास को सहन नही कर सके अथवा अपने स्वामी के आदेश की परिपालना मे जागरूक नही रहे, इसीलिए उन्होने फल खाकर पानी पी लिया। वे अपना बचाव नही कर सके।

नैतिक और आध्यात्मिक आन्दोलनो के सूत्रधार मनस्वी व्यक्ति युगचेतना को प्रतिबुद्ध करने के लिए मार्गदर्शन देते हैं। जो व्यक्ति उस मार्गदर्शन के अनुसार अपने जीवन को रूपान्तरित करने के लिए कटिबद्ध रहते हैं, उनकी नैतिक चेतना जागृत हो जाती है और वे अपने जीवन मे शान्ति तथा सन्तोष का अनुभव करते हुए निश्चिन्त जीवन जीते हैं।

जो व्यक्ति अपने मार्गदर्शन के प्रति अवज्ञा या उपेक्षा की भावना रखकर जीवन की दिशा को नही बदलते वे वैयक्तिक और सामाजिक स्तर पर सत्रास का अनुभव करते हुए अपनी जीवन-यात्रा को पूरी किए बिना ही थक जाते हैं। ऐसे व्यक्ति न तो मजिल तक पहुच सकते हैं और न आनन्दमय जीवन जी सकते हैं।

रूपान्तरण

उद्‌बोधक, उद्‌बोधन और उद्‌बोधव्य—ये तीन पृथक्-पृथक् बिन्दु हैं। जब तक इन बिन्दुओं मे तादात्म्य स्थापित नही होता है, उद्‌बोधन का उद्देश्य फलित नही होता। उद्‌बोधक मध्यवर्ती सेतु है, जो उद्‌बोधक को उद्‌बोधव्य और उद्‌बोधव्य को उद्‌बोधक के निकट लाता है। यह निकटता ही एक-दूसरे को समझने मे और विचार-सप्रेषण मे निमित्त बनती है, अन्यथा वैचारिक क्षमता से रूपान्तरण की कल्पना भी नही की जा सकती।

रूपान्तरण का प्रथम सूत्र है 'अप्रमाद'। अप्रमाद यानी सतत जागरूकता। जो व्यक्ति क्षण-क्षण जागरूक रहता है, प्रमाद मे विश्वास नही करता, प्रमाद को बहुमान नही देता और न वैसे परिवेश को प्रश्रय ही देता है, वह व्यक्ति उद्‌बुद्ध हो सकता है। उसके प्रबोध मे दूसरा व्यक्ति निमित्त कारण मात्र होता है। प्रबुद्ध होने की मूलभूत चेतना व्यक्ति मे सहज निहित होती है। उस अन्तर्निहीत चेतना के केन्द्र मे विस्फोट करने से सुषुप्ति टूटती है और व्यक्ति अप्रमत्त बन जाता है।

अणुव्रत आन्दोलन ससार की नैतिक चेतना को उद्‌बुद्ध करने वाला एक सशक्त अभिक्रम है। उसका दावा यह नही है कि वह ससार को समग्र रूप से नैतिक बना देगा, किन्तु उसका योगदान उन सबके लिए प्रस्तुत है, जो उससे लाभान्वित होना चाहे। उसका प्रयत्न जन-जन के सस्कारो को परिमाजन देने का है, किन्तु उसे अपने सस्कारो के रूप मे ढालकर कोई भी व्यक्ति अपनी चेतना को जागत नही कर सकता।

मालकिन ने दासी से पूछा—'घडी मे क्या बजा है?' दासी

बोली—'आपको अभी कितने बजे का समय चाहिए?' मालकिन ने कहा—'मूर्ख! मेरे चाहने से समय बदल जाएगा क्या? घड़ी में जितना बजा हो, मुझे बता दो।' दासी विनम्र शब्दों में बोली—'स्वामिनी! मैं दासी आपकी हूं, घड़ी की नहीं। मैं आपकी जरूरत का ख्याल रख सकती हूं, दूसरे का ध्यान कहां तक रखती रहूं।'

एक दासी यह बात सोच सकती है, वह आपकी अपेक्षा को पूरा कर सकती है। अणुव्रत किसी का अनुचर नहीं है। वह तो आपका पथ दर्शक है। उसके मार्गदर्शन में चलने वाला व्यक्ति जीवन की सही मंजिल तक पहुंच सकता है।

आत्म-दर्शन

सुख, शान्ति और आनन्द मनुष्य के भीतर है। जो व्यक्ति बाह्य जगत् मे इनकी खोज के लिए घूमता रहता है, वह सदा खाली रहता हे। बाह्य पदार्थ क्षणिक तृप्ति दे सकते है, किन्तु वह तृप्ति यथार्थ नही होती। यथार्थ के परिप्रेक्ष्य को देखने वाला व्यक्ति तब तक सन्तुष्ट नही होता, जब तक वह सत्य को उपलब्ध न कर ले। 'दूर से पर्वत सुहावने लगते हैं'—यह एक जनश्रुति है। इसकी सत्यता को नकारा नही जा सकता। हर व्यक्ति के जीवन मे ऐसा घटित होता है किन्तु इसको समझता वही है जो तत्त्व को गहराई से देखता है।

पहाडी पर स्थित अपने छोटे-से मकान के गवाक्ष से एक बालक पहाडी की तराई की ओर झाकता। पश्चिम दिशा मे ढलते हुए सूरज की किरणो मे वह वहा स्थित एक छोटी सी झोपडी को देखता, जिसकी खिडकिया सोने की तरह चमकती थी। उसी झोपडी मे रहने वाला बालक उगते हुए सूरज को देखने के लिए खिडकियो से बाहर झाककर पहाडी पर बिखरे हुए प्राकृतिक सौदर्य को देखता और उसी सौन्दय के बीच वह उस मकान को देखता था जो उसे चमकीला ही नही, अत्यन्त आकर्षक लगता था। दोनो मकानो के बीच कई किलोमीटर की दूरी थी, पर उनमे रहने वाले दोनो बालको के चिन्तन मे विचित्र सामजस्य था।

तराई मे रहने वाला बालक एक दिन अपनी माता की अनुमति लेकर पहाडी पर चढा, उस चमकोले मकान को देखने के लिए। पहाडी ऊचाई पर थी। चढते-चढते वह थक गया। मध्याह्नकालीन सूरज की धूप असह्य हो जाने पर उसने बीच मे ही विश्राम ले लिया। साझ ढलते-ढलते वह उस मकान तक पहुच गया। किन्तु वहा उसे आकर्षण

जमा कुछ नहीं लगा। खिड़की खोलकर पास खड़े एक बालक को देखकर उसने पूछा—'भैया ! यहां कोई सोने का मकान है ?' बच्चा यह सुनकर खिलखिला पड़ा और बोला—'भैया ! यह तो हमारे जैसे गरीबों की बस्ती है। यहां सोना देखने को भी नहीं मिलता, मकान बनाने को कैसे मिलेगा ? इधर आओ, मैं दिखाऊं तुमको एक 'गोल्डन हाउस'। बालक अपने हमउम्र साथी की सहानुभूति से खुश हुआ और दौड़कर उसके पास पहुंच गया। बालक ने डूबते हुए सूर्य की रोशनी में जगमगाते हुए एक मकान की ओर संकेत किया। अपने साथी के संकेतित स्थान को देखकर एक बार वह विस्मय-विमुग्ध हो गया। किन्तु शीघ्र ही उसने पहचान लिया कि यह तो गोबर लिपे हुए झोपड़ों के बीच में ईंटों से निर्मित उसी का मकान है। दोनों बालक साथ साथ चलकर वहां पहुंचे। सुबह उठकर उन्होंने देखा, यहां कोई चमक-दमक नहीं थी, किन्तु पहाड़ी पर स्थित वह मकान उसी प्रकार चमक रहा था।

बाहरी आवरण की खोज में घूमने वाला व्यक्ति कभी सत्य को उपलब्ध नहीं कर सकता। इसीलिए अणुव्रत अपने द्वारा अपनी खोज और अपने द्वारा अपना दर्शन करने का पथ सुझा रहा है।

बडा कौन ?

रामकृष्ण परमहस के दो शिष्य थे। दोनो ही विनम्र और प्रतिभा-सम्पन्न थे। एक दिन किसी कारणवश उन दोनों मे झगडा छिड गया। झगडे का मूल था बडप्पन। दोनो मे बडा कौन, बहस का प्रारभ इस बात पर हुआ। बहस आगे बढी। एक-दूसरे ने परस्पर शास्त्रार्थ की चुनौती दी। वेद, ज्ञान, विज्ञान आदि गभीर विषयो पर खुलकर चर्चा हुई पर समाधान नही मिला। स्थिति की जटिलता को ध्यान मे रखते हुए वे अपने गुरु के पास पहुचे।

गुरु ने शान्त-भाव से दोनो की बात सुनी। उन्होने समाधान की दृष्टि मे सोचा—दोनो शिष्य समान प्रतिभा और समान योग्यता के धनी थे। वह कुछ मुसकराए। शिष्यो की आतुरता बढती जा रही थी। अनिर्णय के पतले धागो को एक झटके के साथ तोडते हुए गुरु ने अपने शिष्यो को सम्बोधित कर कहा—जो दूसरे को बडा मानता है, वह बडा होता है।

झगडे का क्रम बदल गया। अब वे 'मैं बडा हू' इस तट को छोडकर 'तुम बडे हो' इस तट पर पहुच गए। पारस्परिक विद्रोह की सरिता गुरु के वचन-रूपी नौका से पार कर दी गयी। अब दोनों शिष्य परम प्रसन्नता से अध्ययन और उपासना मे सलग्न हो गए।

उक्त घटना रूपान्तरण की प्रक्रिया प्रस्तुत करती है। मनोविज्ञान मे मानस परिवर्तन के लिए चार उपाय कार्यकर बताए है—दमन, विलयन, मार्गान्तरीकरण, शोध। दमन का अर्थ है दबाना और विलयन का अर्थ है एक अस्तित्व को दूसरे मे समाहित कर देना। नैतिक मूल्यो की दृष्टि से ये दोना उपाय उतने महत्त्वपूर्ण नही है, जितने मार्गान्तरीकरण और शोध है। दमन और विलयन मे बुराई से

मुक्ति नही मिलती। समय आने पर वह कभी भी उभर सकती है। इसलिए मार्गान्तरीकरण और शोध को विशेष मूल्य प्राप्त होता है।

मार्गान्तरीकरण का अर्थ है गलत प्रवृत्ति को अच्छी प्रवृत्ति मे रूपान्तरित कर देना और शोध का अर्थ है बुराई मुक्त सर्वथा विशुद्ध अवस्था। अध्यात्म के क्षेत्र मे इन दानो का महत्त्व है। इनके माध्यम से व्यक्ति जीवन की ऊचाइयो का स्पर्श कर सकता है।

अणुव्रत-आन्दोलन हृदय-परिवतन का आन्दोलन है। वह हर व्यक्ति को वस्तुस्थिति का अवबोध देकर व्रतो की भमिका पर खडा करना चाहता है। दमन का काम सुगम तो हो सकता है, पर उसमे स्थायित्व नही हो सकता। दमित वासनाये अनुकूल परिस्थिति पाते ही पुन अपने अस्तित्व को सुदृढ बना लेती हैं।

हृदय-परिवतन का सिद्धान्त जितना सौम्य है, उतना ही स्थायी है। बुराई के प्रति मन का लगाव टूट जाए तो व्यक्ति किसी भी परिस्थिति मे दुष्कर्म मे प्रवृत्त नही हो सकता। मैं अणुव्रत के माध्यम से जन-जन के मन को जागृत कर समाज-चेतना का ऊर्ध्वारोहण करने के लिए प्रयत्नशील हू। हृदय-परिवर्तन ही लोक-जीवन के प्रशस्तीकरण का सक्षम हेतु है।

यथार्थ का भोग

अन्तरिक्ष मे अपोलो और सोयुज का सगम समन्वय की दिशा मे एक अपूर्व शृखला है। अमरीका और रूस के अन्तरिक्ष-यात्रियो ने अविश्वास और अनिश्चय के अन्धकार मे पारस्परिक सौहार्द और सहयोग का सूरज उगा दिया है। इसमे उन देशो की वैज्ञानिक प्रगति ही प्रभावित नही होगी। किन्तु निकटता भी बढेगी, ऐसी धारणा की जा रही है।

अमरीका और रूस के विज्ञान जगत् मे अभी-अभी जो घटित हुआ है, वह भारतीय तत्त्व चिन्तनधारा का शाश्वत तथ्य है। इसके अनुसार अनन्त-अनन्त विरोधी धर्मों—स्वभावो का सहअस्तित्व होता है। एक धर्म दूसरे धर्म के अस्तित्व मे कोई बाधा उपस्थित नही करता। जैन दर्शन मे इसकी पहचान अनेकान्त के नाम से होती है।

अनेकान्त सिद्धान्त है और उसके प्रतिपादन की पद्धति स्याद्वाद है। आग्रह-प्रधान चिन्तनधारा को यौक्तिक समाधान देने का यह एक प्रशस्त क्रम है। पारस्परिक वैमनस्य, तनाव और दूरी को समाप्त करने के लिए यह एक अमोघ मन्त्र है। अपेक्षा है कि शान्तिपूर्ण सह-जीविता मे विश्वास रखने वाले व्यक्ति स्याद्वाद' की पृष्ठभूमि और परिणामो का ठोस अध्ययन कर उसे व्यवहार्य बना दे।

अणुव्रत सहअस्तित्व की नीति मे विश्वास करता है। दूसरे किसी भी क्षेत्र मे ऐसी कोई घटना होती है, अणुव्रत विचारधारा की क्रियान्विति होती है। अणुव्रत का विश्वास है कि आक्रामक नीति और दूसरे के अस्तित्व को समाप्त करने की मनोवृत्ति मानवीय दृष्टि से बहुत बडा अपराध है। अपराध भावना को कम करने के लिए सबसे पहले वैचारिक स्तर पर विकास होना जरूरी है। विचारो की परिपक्वता

आचरण की पृष्ठभूमि है। विचार और आचरण की समन्विति ही यथार्थ का भोग है।

विश्व-मानस मे मानवीय सस्कार के प्रति निष्ठा जागृत हो और मानवीय मूल्यो का हनन करने वाली जीवन पद्धति के प्रति अनास्था का स्वर प्रबल हो तो सहअस्तित्व और समन्वय की दिशा स्वाभाविक रूप से प्रशस्त हो सकती है। ऐसा होने पर अपोलो और सोयुज का सगम विश्व-क्षितिज पर आश्चर्य की रेखाओ को उभारेगा नही किन्तु यदि कही इससे विपरीत घटित हुआ तो वह आश्चर्यकारी होगा। अणुव्रत इसके लिए प्रयत्नशील है। लोक-चेतना इससे जितनी लाभान्वित होगी, विश्व का उतना ही भला होगा।

सयम का मूल्य

विश्व के सामने कितनी ही बडी समस्या क्यो न हो, वह सयम और शान्ति से समाहित हो सकती है। मेरी दृष्टि मे जो समस्या जितनी भयकरता लिये हुए होती है, उसके पीछे उतना ही असयम का योग होता है। इससे आगे यह भी कहा जा सकता है कि मूलभूत समस्या असयम की ही है। दूसरी समस्याओ का सम्बन्ध असयम के परिप्रेक्ष्य मे अनुवर्धित है। नैतिक अभावो मे घिरा जनमानस सयम के मूल्य को न समझ रहा है और न स्वीकार कर रहा है। नैतिकता की परिधि सकीर्ण होती जा रही है। अध्यात्म का अवमूल्यन और आध्यात्मिक मूल्यो के प्रति अनास्था असयममूलक मनोवृत्ति की निष्पत्ति है। जो व्यक्ति सयम मे आस्था रखते हैं, उनके कधो पर नैतिक मूल्यो के उन्नयन का दायित्व है। इस दायित्व से प्रतिबद्ध व्यक्ति को अपनी बद्धमूल धारणाओ मे सशोधन करना होगा। सशोधन की बुद्धि का विकास मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा मे सहायक बन जाता है।

हिंसा और भ्रष्टाचार की मनोवृत्ति का निर्मूलन करने के लिए निष्ठाशील व्यक्तियो को आगे आना होगा। वे स्वय नैतिक जीवन जीने का सकल्प लें और अपने परिपार्श्व मे नैतिकता का वातावरण बनाय। नैतिकता शून्य धार्मिकता व्यक्ति का अभ्युदय नही कर सकती। किसी भी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के विकास का मापदण्ड उसकी नीतिमत्ता पर निभर होता है। नीति-विहीन व्यक्ति, समाज और राष्ट्र कर्तव्य-निर्वाह के प्रति सजग नही रह सकता। जहा पर व्यक्ति बुराई को जानता है पर उसे छोडने के लिए सकल्पबद्ध नही होता, वहा बुराई का अन्त नही होता। अणुव्रत की आचार सहिता मनुष्य को अपने कतव्य के लिए प्रेरणा देती है और देती है दुष्प्रवृत्तियो

के साथ जूझने की विपुल क्षमता। मैं चाहता हू कि अणुव्रत के माध्यम से ऐसे प्रशिक्षण शिविरो को प्रोत्साहन मिले, जहा व्यक्ति नैतिक मूल्या को प्रतिष्ठापित कर सके और सयममूलक धारणाओ को दृढ कर सके।

अभी हमारे सामने एक विशेप अवसर है—भगवान् महावीर का निर्वाण महोत्सव और वप का लम्बा समय। इम वप को 'सयम वप' के रूप मे मनाने की घोपणा हो चुकी है। इम घोपणा की क्रियान्विति का दायित्व उन सब व्यक्तियो पर है, जिनकी भगवान् महावीर के सिद्धातो पर आस्था है। भगवान् महावीर ने जिस सत्य का प्रतिपादन किया, वह किसी सीमा विशेप मे आवद्ध नही है। सीमाओ से अतीत भगवान् महावीर का सत्य-दशन और जाति, वण, प्रात आदि शृखलाओ से मुक्त अणुव्रत दर्शन। भगवान् महावीर ने महाव्रता का जितना मूल्य दिया, अणुव्रतो को भी उससे कम महत्त्व नही दिया। व्रती जीवन की योग्यता अर्जित कर व्रतो के राजपथ या पगडडियो पर चलने वाला और मागगत बाधाओ को व्रतो के द्वारा ही निरस्त करने वाला व्यक्ति वर्तमान समस्याओ का समाधान दे सकता है। मैं अपनी षष्टि-पूर्ति के अवसर पर एक बार फिर समाज मे सयम का मूल्य प्रतिष्ठित करने की प्रेरणा देता हू।

सयम के सस्कार

शरीर मे रीढ की हड्डी का जो स्थान है, वही स्थान जीवन मे चरित्र का है। चरित्र का सम्बन्ध मानव धर्म और मानव सस्कृति से है। कोई भी व्यक्ति चरित्रनिष्ठ बनता है, उससे समग्र मानव-जाति लाभान्वित होती है। चरित्र निष्ठा का अथ है जीवन को नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य के अनुरूप ढालना, विपम परिस्थिति मे भी अपनी आस्था को अविचल रखना। गृहस्थ जीवन की जिम्मेदारियो का निर्वाह करते समय नैतिक मूल्यो की सवथा उपेक्षा होने से चरित्र की गरिमा कम हो जाती है। चरित्रशीलता जीवन विकास की सही दिशा है। इस दिशा मे चलने वाले व्यक्ति अपना, अपने समाज और राष्ट्र का भला कर सकते है। चरित्रनिष्ठा से जीवन मे गुणात्मक परिवतन होता है तथा सामाजिक व्यवस्थाओ मे सहज सुन्दरता आती है।

कहा जाता है, बादशाह नसीरुद्दीन अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधाओ के लिए शाही भण्डार का उपयोग नही करते थे। यही कारण था कि उनके घर मे कोई रसोइया नही था। एक दिन भोजन करते समय बेगम के हाथ जल गए। उसने बादशाह के सामने एक दासी रखने की प्राथना की। बादशाह अत्यन्त स्नेह के साथ बोला—"बेगम! मैं अपने परिश्रम से जितना अजन कर पाता हू, उससे दो समय का भोजन मात्र किया जा सकता है। हमारे पास जो खजाना है, वह प्रजा का है। अपने ऐश-आराम के लिए उस खजाने को खाली करना पाप है। मैं उसका उपयोग प्रजा की भलाई के लिए करता आया हू और करता रहूगा। तुम एक गरीब बादशाह की बेगम हो, इसलिए शाही ठाट-बाट की कल्पना ही मत करो। मेहनत कर अपना गुजारा करो, यह जीवन का सबसे ऊचा आदश है।'

इस घटना को वर्तमान के सदर्भ मे पढा जाए तो प्रतीत होता कि बादशाह नसीरुद्दीन कोई विलक्षण व्यक्ति था। वह श्रम का पुजारी था। जिस व्यक्ति का पुरुषार्थ जागृत होता है, वह कभी दूसरो के श्रम का शोपण नहीं कर सकता। भगवान महावीर पुरुषार्थवादी थे। अपने साधना-काल मे उन्होंने प्रबल पुरुषार्थ किया। उस समय उत्पन्न विषम परिस्थितियो से घबराकर उन्होंने किसी से सहयोग की इच्छा नही की। जो सहयोग करने के लिए उत्सुक थे, उन्हे अपनी स्वीकृति नही दी। उनके जीवन की कहानी बडी रोमाचक है। किन्तु वे एक क्षण के लिए भी उन कष्टो से प्रकपित नही हुए। अपने ही पुरुषार्थ के द्वारा सब यातनाओ को झेलकर उन्होंने उद्देश्य मे सफलता प्राप्त की। जो व्यक्ति उनके सम्पर्क मे आया, उसे पुरुषार्थ की मौन प्रेरणा मिली। उनके जीवन की गहराइया मे उतरने वाले व्यक्ति सहज ही कृतकृत्य हो जाते है।

आज चरित्रहीनता के विश्वव्यापी सकट को निरस्त करने के लिए महान् पुरुपार्थ की अपेक्षा है। मूल्यहीनता मे एक ओर सत्रास बढता जा रहा है और दूसरी ओर नैतिक रूप से नितात खोखलापन पनपता जा रहा है। ऐसे वातावरण के बीच रहकर इस स्थिति से अप्रभावित रहना और नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा के लिए पुरुषार्थ करते रहना अपने आपमे महत्त्वपूर्ण कार्य है। मैं मानता हू कि समाज मे जो बुराइया फैलती हैं, उन्हे सहन करना सबसे बडी बुराई है। बुराई का अहिंसात्मक प्रतिरोध अणुव्रत का लक्ष्य है। इस प्रतिरोध के लिए आगे आने वालो को सबसे पहले सहिष्णु बनना अपेक्षित है। किसी बुराई के प्रति उत्तेजित होने का अर्थ है उस बुराई को स्वय पर थोपना। इसलिए शान्ति और सहिष्णुता से नैतिकता के प्रशिक्षण का काम आगे बढाना होगा।

अणुव्रत नैतिक आस्था का निर्माण करने के साथ नैतिक मर्यादाओ का निर्माण करने का काम कर रहा है। इससे मानवीय कुठा शिथिल होती है और सयम के प्रति झुकाव होता है। मनुष्य जीवन मे जब तक सयम के सस्कार नही आयेंगे, चरित्र-निष्ठा का व्यावहारिक रूप प्रस्तुत नही हो सकेगा।

पकड किसकी ?

एक सन्यासी बाग मे घूम रहा था। वहा किसी अन्य व्यक्ति की उपस्थिति ने उसको अपने सन्यासित्व के प्रति सजग किया। वे दोनो आपस मे मिले। आपबीती सुनाई और दोनो मे घनिष्ठता बढ गयी। अब वे प्राय मिलने लगे। एक दिन सन्यासी अपने नये परिचित व्यक्ति के साथ साधना-सबधी बातो मे बहुत गहरे तक उतर गया। वृत्तियो के उदात्तीकरण का प्रसग चला सन्यासी कुछ हकलाने लगा। उस व्यक्ति की जिज्ञासा बढी। उसकी प्रश्नाह आखो मे झाकते हुए सन्यासी बोला—'मित्र ! घर छोडकर जगल मे रहते हुए बीस साल हो गए, पर अभी तक क्रोध ने पीछा नही छोडा। अभिमान छलना, लोभ, वासना आदि ने मेरे मन को इस प्रकार जकड रखा है कि मैं चाहकर भी उनके बधन से छूट नहीं सकता।'

आगन्तुक ने यह बात सुनी और इसके साथ ही सन्यासी के अन्तकरण मे स्थित दुर्बलता का बोध उसको कराने के लिए उपाय खोजा। उपवन मे घूमते घूमते वह एक वृक्ष की शाखाओ को अपने दोनो हाथो मे पकडकर खडा हो गया। थोडी देर मे हाथ दुखने लगे। जिस समय सन्यासी उधर से गुजरा उसने सकेत कर उसको रोक लिया और बोला—'महात्माजी ! इस वृक्ष की शाखाओ ने मुझको बुरी तरह से जकड लिया है, मुक्ति का उपाय बताइए।'

सन्यासी दो क्षण मुसकराया और बोला—'मित्र ! वृक्ष की शाखाओ ने तुमको पकडा है या तुमने इन शाखाओ को पकड रखा है ?' सन्यासी की बात सुनकर उस व्यक्ति ने कहा—'कषाय, वासना, घृणा, प्रमाद आदि वृत्तियों ने तुमको पकड रखा है या पकडे हुए हो ?'

सन्यासी को प्रतिबोध मिल गया। वह अपनी साधना के प्रति सजग हुआ और अवाछनीय प्रवृत्तियो से ऊपर उठकर सन्यास का सही आस्वाद लेने लगा।

प्रामाणिकता की बात करने पर कुछ लोग तर्क देते हैं—परिस्थितिया इतनी प्रतिकूल हैं, न चाहने पर भी हमे गलत काम करने पडते हैं। परिस्तियो मे सुधार हो जाए तो हम सोच सकते हैं। मैं आपसे पूछना चाहता हू—परिस्थितियो का निर्माता कौन है? स्वय परिस्थितियो का निर्माण कर अपनी दुर्बलता का आरोप परिस्थितियो पर करना वृक्ष की शाखाओ को दोष देने के समान है। मनुष्य अपनी इस वृत्ति को बदलकर ऐसी परिस्थितियो का निर्माण करे, जिससे जीवन के धरातल पर नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा हो सके।

धर्म-क्रान्ति के सूत्र

धम जीवन की कला है। इस कला को वह व्यक्ति प्राप्त कर सकता है जो जीवन के प्रति जिज्ञासु होता है। जिज्ञासा अज्ञात के प्रति होती है। जीवन, जो कि मनुष्य के द्वारा भोगा जा रहा है, कभी जाना नही जाता। वर्तमान का क्षण कब अतीत हो जाता है और अनागत कब आगत बन जाता है, इसे कुछ असाधारण व्यक्ति ही जान पाते हैं। जीवन की मौलिकताओ का बोध न होने के कारण व्यक्ति उसकी गुत्थियो मे उलझ जाता है। गुत्थियो को सुलझाने के लिए कला प्रशिक्षण अपेक्षित है और कला के लिए धर्म आवश्यक है।

मैं धर्म को जीवन का अविनाभावी तत्त्व मानता हू। किन्तु उस धर्म के साथ मेरी सहमति नही है, जिसमे जीवन को रूपान्तरित करने की क्षमता नही है। जो धम रूढ आदर्शों की परिक्रमा करता है, जिस धर्म का आलम्बन लेकर व्यक्ति दोहरी भूमिका निभाता है, जिस धर्म मे *मानवीय सम्बन्धो मे विभाजन करने के तत्त्व निहित है,* वह धर्म जीवन की कला नही बन सकता। धर्म को जीवन कला से अनुप्राणित करने के लिए उसके साथ एक पचसूत्री कायक्रम का योग अपेक्षित है। वे पाच सूत्र हैं—(१) बौद्धिकता, (२) प्रायोगिता, (३) समाधायकता, (४) वातमानिकता और (५) सद्भाव परकता। मैं इन सूत्रो को धम-क्राति के सूत्र मानता हू।

बौद्धिकता—धम को अधविश्वास, जडता और रूढता के शिकजो से मुक्त कर बौद्धिक स्तर पर विश्लेपण करना और धम के उपासना पक्ष को युक्ति-पुरस्सर प्रबल बनाना।

प्रयोगिकता—जीवन की प्रयोगशाला मे धर्म के तत्त्वो का प्रयोग करना। आदर्श जब तक व्यवहार की भूमिका का स्पश नही करेगा,

जीवन मे उसका उपयोग नहीं हो सकेगा।

समाधायकता—धर्म मे व्यक्ति और राष्ट्र की समस्याओ को समाहित करने की अपूर्व क्षमता है पर जब तक उस क्षमता का उपयोग नही होगा, धर्म को प्रभावी नही बनाया जा सकेगा।

वर्तमानिकता—धर्म जब तक वर्तमान जीवन से सम्बद्ध नहीं होता है, तब तक केवल अतीत और भविष्य से बधा हुआ धर्म किसी भी प्रबुद्ध व्यक्ति को आकृष्ट नही कर पाता।

सद्भाव-परकता—धर्म-सम्प्रदायो के बीच सद्भाव स्थापित करना धर्म का मौलिक काम है। जब तक धर्म का प्रतिनिधित्व करने वाली सस्थाए परस्पर सद्भाव का विकास नही कर पाएगी, समाज मे धर्म का आदर्श उपस्थित नही होगा। इन पाच सूत्रो के परिप्रेक्ष्य में धर्म का जो स्वरूप निखरेगा, वह धर्म-क्रान्ति की सार्थकता प्रमाणित कर सकेगा।

जागरण का सन्देश

प्राचीन समय मे राजसी ठाट-बाट मे रहने वाले पुरुषो को प्रतिबोध देने के लिए कुछ विशेष व्यक्ति नियुक्त रहते थे। वे मगल-पाठक कहलाते थे। उनका काम था—प्रभात के समय मीठी-मीठी नीद मे वेभान राजपरिवार को मगल प्रभात होने की सूचना देना। वे अपनी मधुर स्वर-लहरियो और 'उत्तिष्ठत जाग्रत' आदि उद्घोषो के द्वारा प्रतिदिन उनको प्रतिबोध देते। अणुव्रत सप्ताह भी प्रतिवर्ष विशेष प्रकार का प्रतिबोध पाठ लेकर जन-जीवन को जागृत करने के लिए आता है।

आज के प्रमाद-बहुल और विलास-बहुल युग मे आकण्ठ डूबे हुए लोक-जीवन को ऊपर उठाने के लिए उद्बोधन की बहुत बडी अपेक्षा है। जिस प्रकार वे मगल-पाठक प्रतिदिन प्रतिबोध देते थे, उसी प्रकार अणुव्रत भी प्रतिबोध-दान का यह क्रम बराबर चला रहा है और तब तक चलाता रहेगा जब तक लोगो मे प्रमाद रहेगा, विलास रहेगा, अप्रामाणिकता रहेगी, काम, क्रोध, मद और लोभ रहेगा। जब तक प्रमाद के कारण विद्यमान हैं, तब तक उनका प्रतिकार करना भी जरूरी है।

प्रश्न हो सकता है कि अणुव्रत का प्रसार इतने वर्षों से हो रहा है, फिर भी नैतिकता की स्थिति वही है, जो पहले थी। मैं आपसे पूछता हू कि कितने वर्ष हो गए सूर्योदय होते, क्या अ धकार किसी सीमा तक भी कम हो पाया है ? अ धकार का अस्तित्व बरकरार रहने पर भी सूर्य की अपेक्षा सदा है, वैसे ही नैतिक आन्दोलनो की अपेक्षा सदा थी, है और रहेगी।

मैं अनुभव करता हू कि अणुव्रत सप्ताह चलता है तब हजारो लाखो व्यक्ति इससे प्रभावित होते हैं, पर उसकी फलश्रुति के रूप मे

निष्पत्ति होनी चाहिए, वह उस रूप मे नही हो पाती है। इस वर्ष भी देश भर मे व्यापक दृष्टि से अणुव्रत सप्ताह मनाने की योजना है। मैं चाहता हू कि फलश्रुति के रूप मे अधिक नही तो दो-चार बातों पर विशेष ध्यान दिया जाए और सलक्ष्य प्रयत्न करके उनकी क्रियान्विति की जाए—

- हर क्षेत्र मे कुछ ऐसे अणुव्रती कार्यकर्ता तैयार हो, जो स्वय नैतिक बनकर नैतिक मूल्यो के प्रचार-प्रसार कार्य को अपना आत्म-धर्म समझें।
- अणुव्रती कार्यकर्ता अनैतिक शक्तियो और प्रवृत्तियो का प्रतिकार करने के लिए प्रतिरोधात्मक नैतिक शक्तियो का विकास कर उनका प्रयोग करें।
- वे नैतिक शक्तियो को सुपुष्ट बनाने के लिए योगासन, प्राणायाम, प्रेक्षाध्यान आदि माध्यमो से योग विद्या का अभ्यास करें।
- नैतिक व्यक्तियो के प्रेरक सस्मरणों का सकलन कर अणव्रत का सस्मरणात्मक साहित्य तैयार किया जाए।

हमारे साधु-साध्विया, अणुव्रती कार्यकर्ता और अणुव्रत से प्रभावित प्रबुद्ध लोग उक्त पहलुओ पर अपना ध्यान केन्द्रित कर अणुव्रत कार्य को स्थायित्व दे पाए तो यह अणुव्रत सप्ताह की सबसे बडी सफलता होगी।

वैसे अणुव्रत से सम्बन्धित व्याख्यानमाला, परिचर्चा, साहित्य-पठन-पाठन आदि के द्वारा भी लोक-जीवन मे अणुव्रत का प्रभाव छोडा जा सकता है। विशेष रूप से ध्यातव्य यह है कि वह प्रभाव कितना स्थायी और कितना कार्यकर होता है।

अणुव्रत : एक राजपथ

शहर के बाहर राजपथ पर बुढिया का एक मकान था, जो राहगीरो के लिए विश्राम-स्थल के रूप मे काम आता था। बुढिया सहृदय थी। वह आगन्तुको को स्थान और भोजन की सुविधा ही नही देती थी, आन्तरिक स्नेह भी देती थी। एक बार जो राहगीर वहा ठहर जाता, वह जब कभी उस मार्ग से गुजरता, वही ठहरना चाहता था। यात्रियो को स्थान और भोजन उससे अच्छा भी सुलभ हो सकता था। किंतु बात-बात मे स्नेह उडेलने वाली उस वृद्धा की ममता अन्यत्र कही सुलभ नही थी। इसलिए प्रतिदिन अनेक राहगीर बुढिया के मकान मे आकर टिक जाते थे।

एक दिन एक युवक वहा रात भर विश्राम करने के लिए आया। उसने पूछा—अम्मा! रात रात रहना है, सोने के लिए एक खटिया-भर की जरूरत है बोलो किस मूल्य पर मिलेगी?' बुढिया ने कहा—'एक खटिया के लिए दो रुपये लेती हू।' आगन्तुक युवक ने कहा—'मा! अगर मैं खटिया न लेकर यो ही विश्राम करू तो मुझे क्या चुकाना होगा?' वृद्धा बोली—चार रुपये। यह बात सुनकर युवक विस्मित हो गया। उसने प्रश्नाई आखो से बुढिया को देखते हुए कहा—'अम्मा! कैसी विचित्र बात करती हो? सोने के लिए खाट लू तो दो रुपये और नीचे जमीन पर शयन करू तो 'चार रुपये!' यह कैसी बुद्धिमत्ता है तुम्हारी? चार रुपये देकर जमीन पर कौन सोएगा?

वृद्धा शान्त भाव से बोली—'बेटा! तुम ठीक कहते हो, पर मैं भी कुछ समझपूर्वक बात कर रही हू। तुम जानते हो मेरे यहा राहगीर आते रहते हैं। यदि वे पलग पर सोते हैं तो उतना ही स्थान रोकते हैं। किंतु पलग की सीमा छूटते ही वे पूरे कमरे पर अधिकार कर सकते

है। पलग मे एक सीमा है, सकीर्णता है। विशालता और उदारता की तुलना मे सकीर्णता का मूल्य अधिक कैसे हो सकता है ?' युवक वृद्धा के अभिप्राय को समझ गया और कम मूल्य पर एक खटिया की सीमा मे सीमित हो गया।

अणुव्रत जाति, वर्ग, देश और प्रान्त की सीमाओ को अतिक्रान्त कर मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा के लिए एक अन्तहीन धरातल प्रस्तुत करता है। इसके आदर्श जितने व्यापक हैं, उतने ही उपयोगी हैं। एक मजदूर की झोपडी मे लेकर ससद भवन तक अणुव्रत की गूज अनुध्वनित हो रही है। वर्तमान के इस अनिश्चय और तनाव भरे वातावरण मे अणुव्रती व्यक्ति निश्चित और तनावमुक्त जीवन जी सकता है। क्योकि उसका चिन्तन सयत है, प्रवृत्ति सयत है और लालसा सयत है। वैचारिक, प्रवृत्यात्मक और अभीप्सामूलक असयम ही व्यक्ति को अनैतिकता की ओर प्रेरित करता है। जहा अनैतिकता है, वहा भय है, सत्रास है, अनिश्चय है और तनाव है। जीवन के चौराहे पर मजिलगामी पथ की खोज मे रहने वाले व्यक्ति के लिए अणुव्रत वह राजपथ है जो उसे दीर्घकालिक भटकन से उबारकर गति देने मे सक्षम है।

विसर्जन क्या है ?

विसर्जन और त्याग दोनो एक अर्थ वाले शब्द हैं। त्याग के दो अर्थ होते हैं—छोड़ना और देना। विसर्जन के दो अर्थ होते हैं—छोड़ना और देना। 'परिग्रह का विसर्जन करो' इसका अर्थ है परिग्रह से अपना स्वामित्व हटाओ, अपना ममत्व हटाओ। विसर्जन का अर्थ है—स्वामित्व विसर्जन या ममत्व-विसर्जन।

विसर्जन का प्राचीन प्रकार था—वर्तमान सम्पत्ति से अधिक सम्पत्ति का विसर्जन। विसर्जन का मध्यकालीन प्रकार हो गया—वर्तमान या संभावित सम्पत्ति से अधिक सम्पत्ति का विसर्जन। कल्पना करो, किसी व्यक्ति के पास दो लाख रुपये हैं। वह दस लाख रुपयो से अधिक सम्पत्ति का विसर्जन करता है। वर्तमान चिन्तन के सन्दर्भ मे यह इच्छा वृद्धि की ओर अभिमुख लगता है। विसर्जन का वर्तमान प्रकार इच्छा-परिमाण के साथ वर्तमान समस्याओ का समाधान भी प्रस्तुत करता है और नैतिक जीवन को पुष्ट करता है।

वर्तमान विसर्जन-पद्धति के अनुसार विसर्जन अनेक प्रकार से किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप कुछेक प्रकार ये है—

१ व्यापार नही करूगा।
२ अमुक सीमा से अधिक ब्याज नही लूगा।
३ अमुक सीमा से अधिक मुनाफा नही लूगा।
४ अमुक सीमा तक आय होने पर व्यापार नही करूगा।
५ अमुक सीमा से अधिक आय हो तो उस पर अपना स्वामित्व नही करूगा।
६ व्यापार मे जो भी लाभ हो उसके अमुक अंश पर अपना स्वामित्व नही करूगा।

७ अर्थार्जन के लिए अप्रामाणिक और अनैतिक साधनो का प्रयोग नहीं करूगा ।

८ आवश्यकता से अतिरिक्त भूमि और मकानो पर अपना स्वामित्व नही रखूगा ।

विसर्जन से सग्रह-विमुखता, स्वार्थ का समीकरण, साधन शुद्धि का विवेक, प्रामाणिकता और नैतिकता—ये फलित होने चाहिए।

मेरा विश्वास है कि विसर्जन के इस महान तत्त्व का विकास होने पर अपरिग्रह व्रत की वास्तविकता समझ मे आएगी । अध्यात्म के द्वारा व्यावहारिक समस्याओ का भी समाधान होता है, यह विश्वास बढेगा और आने वाली समाजवादी समाज-व्यवस्था मे जीवन-यापन कठिन नहीं लगेगा ।

मैत्री का रहस्य

मानवीय मूल्यो की निष्पत्ति मैत्री के रूप मे होती है। यह मानवता की महान् उपलब्धि है। सर्वथा नि स्वार्थ मैत्री के लिए यदि कही अवकाश है तो वह धर्म के क्षेत्र मे ही है। एक आदमी धम करता चला जाए और उसमे स्वार्थ की वृत्ति कम न हो तो मुझे मानना चाहिए कि सूर्य की रश्मिया फैलती गयी पर अन्धकार कम नही हुआ। स्वार्थ की वृत्ति मैत्री या प्रेम को प्रस्फुटित नहीं होने देती। मेरी दृष्टि मे स्वार्थी आदमी जितना भयकर होता है, उतना भयकर दुनिया मे कोई भी नही होता। मैंने विसर्जन की बात इसलिए कही है कि धार्मिक आदमी की स्वार्थी वृत्ति मे कोई दरार पड़े। आज वह इतनी सघन मालूम पड़ रही है कि उसकी ओट मे धर्म का प्रकाश छिप रहा है। मुझे लगता है कि स्वार्थी वृत्ति की प्रबलता मे मैत्री पनप नही सकती।

मैत्री का प्रथम या अन्तिम साधन है स्वाथ का विजन। नि स्वार्थ आदमी के सामने शत्रुता के अवसर क्षीण हो जाते हैं। मुझे विश्वास है मैत्री का विकास चाहने वाले इस रहस्य को हृदयगम करें कि दूसरो के प्रति असद् व्यवहार का मूल गहराई मे छिपी हुई स्वार्थ-भावनाए हैं। इस रहस्य को समझ लेने पर मैत्री का मुक्त विकास होना सहज-सरल हो जाएगा।

जिसके मन मे शत्रुता होती है वही दूसरो का शत्रु बनता है और फिर वह शत्रुता मे आसक्त हो जाता है। इस तथ्य को समझाकर ही भगवान् महावीर ने कहा था—अपने आप सत्य की खोज करो और सब जीवो के साथ मैत्री का व्यवहार करो।

अप्पाण सच्च मेसिज्जा, मेत्ति भूएसु कप्पए'

अणुव्रत के मच से विश्व मैत्री के स्वर अनुगूजित हुए हैं। जिस मच से अहिंसा, अनाक्रमण, मानवीय सद्भाव, सहिष्णुता, समन्वय और समता की बात होती हो वहा विश्व-बंधुत्व की भावना स्वय पनप जाती है। मैत्री का भाव क्रूरता, शोषण, सग्रह, अस्पृश्यता, जातीय भेद-भाव आदि विषमतामूलक परिस्थितियो का अन्त कर स्वस्थ समाज का निर्माण करता है।

विश्व मैत्री की कल्पना से पहले अपने आपसे मैत्री करना अपेक्षित है। अपने आपसे मैत्री करने का अर्थ है—अपनी वृत्तियो का उदात्तीकरण। इसके लिए असत् वृत्तियो का परिहार और सद् वृत्तियो का विकास करना जरूरी है। यह क्रम अणुव्रत आचार-सहिता के सम्यक् आचरण से ही सभव हो सकता है।

स्वस्थ समाज का निर्माण

किसी भी राष्ट्र के अभ्युदय का आधार चरित्र होता है। जिस राष्ट्र के पास चरित्र-बल नही होता, वह कभी प्रगति-पथ पर अग्रसर नही हो सकता, इसीलिए भारतीय चिन्तन मे इस बात पर बराबर जोर दिया गया कि राष्ट्र का नेतृत्व करने वाले लोगों का आचार ऊचा हो। राष्ट्र के नेताओ का जैसा आचार होता है, वैसा ही देश का भविष्य होता है।

भारत की सभी दर्शन धाराओ ने व्रत को सर्वोपरि स्थान दिया है। भगवान् महावीर, भगवान् बुद्ध और भगवान् कृष्ण सबने ही अपने दर्शन और साधना मे व्रतो का विधान दिया है। व्रत साधना का पहला सोपान है। इसमे व्यक्ति अनाचरणीय से निवृत्त होता है और आचरणीय के लिए कृत-सकल्प होता है।

व्रत का महत्त्व व्यक्ति तक सीमित नही है। उसका महत्त्व समाज, देश और समस्त विश्व तक जाता है। व्यक्ति निरकुश न हो, उसकी महत्त्वाकाक्षाए दूसरो को हीन न समझे, उसकी प्रतिस्पर्धाए समाज मे सघप उत्पन्न न करें—इन सब दृष्टियो से अहिंसा का सामाजिक विकास होना आवश्यक होता है। जिस समाज और राष्ट्र मे मैत्री, बन्धुता और प्रम का विकास होता है, वह आन्तरिक सम्पदा से सम्पन्न होता ही है, बाह्य समृद्धि की दृष्टि से भी वह अधिक समुन्नत और अधिक प्रगतिशील देखा गया है। एक स्वस्थ, स्वतन्त्र और शातिपूर्ण समाज की रचना भी इन्ही मूल्यो पर आधारित होती है।

प्रामाणिकता समाज मे एक-दूसरे के प्रति विश्वास का वातावरण तैयार करती है। पवित्रता से समाज तेजस्वी बनता है। असग्रह से सामाजिक विषमताओं का अन्त होता है, प्राणिमात्र के प्रति समानता

की अनुभूति का विकास होता है।

जिस समाज मे व्रतो का विकास होता है, वह एक शालीन और सुसस्कृत समाज होता है। जब व्रतो का ह्रास हो जाता है, तब समाज मे प्रतिस्पर्धाए, टकराहट और छिछलापन जन्म लेते हैं। आज भारतीय जीवन मे जो छिछलापन और निरकुशता बढ रही है, उसका एकमात्र कारण व्रत का अभाव है। इसलिए यह आवश्यक है कि व्रतो की प्रतिष्ठा करने के लिए हम सम्मिलित रूप से प्रयत्न करें और एक चरित्रनिष्ठ, स्वतन्त्र और स्वस्थ समाज का निर्माण करे। अणुव्रत-दिवस उसी वातावरण के निर्माण के लिए एक प्रेरणा है।

मूल बिना फूल कहा ?

पिता बाहर गया तो पुत्र ने बाग सींचने का जिम्मा अपने ऊपर ले लिया। एक सप्ताह बाद पिता लौटकर आया। बाग मुरझा गया था। पिता ने पूछा—तुमने पौधो को पानी नही दिया ? पुत्र बोला—मैंने एक-एक पौधे की एक-एक पत्ती को पानी दिया था। पानी मिले और पौध मुरझा जाए, यह तो हो नही सकता। पिता ने खोजबीन की। पौधो के मुरझाने का रहस्य खुल गया। पुत्र ने पौधो को सींचा था, पर ऊपर-ऊपर से। मूल को नही सींचने से सारे पौधे मुरझा गए थे।

मूल-मूल होता है। उसे पकडे बिना मूल का सुधार नही हो सकता। आज की समस्या का मूल है मनुष्य का मनुष्य न होना। जब तक मनुष्य मनुष्य नही बनेगा, स्वस्थ समाज की सरचना नही होगी। अन्धा आदमी क्या देखेगा ? बहरा व्यक्ति क्या सुनेगा ? लगडा आदमी कैसे चलेगा और किसी भिखारी का क्या लूटा जाएगा ? इसी प्रकार मूल तत्व मनुष्यता ही नही है तो और कुछ बनने से क्या होगा ? डाक्टर, इजीनियर, वकील, जज, प्रिंसिपल, प्रोफेसर, विधायक और मिनिस्टर कुछ भी बन गए, पहले मनुष्य नही बने तो इनका बनना क्या अर्थ रखेगा और तो और साधु भी बन गए, पर मनुष्य नही बने तो साधुता टिकेगी कहा ? इसलिए जीवन मे कोई बडा लक्ष्य निश्चित करते समय सबसे पहले मनुष्यता हासिल करने का लक्ष्य बनना चाहिए। इसी दृष्टि से मैं बहुत बार कहता हू कि कोई जैन बने या नही 'मेन' अवश्य बने।

सुख अपने भीतर है

मन्दिर मे एक पुजारी रहता था। वह भगवान की पूजा करता और मस्ती का जीवन जीना। एक दिन उसने किसी सम्पन्न सेठ को कार से उतरते देखा। सेठ के ठाटवाट ने उसको मोह लिया। वह सेठ के पास गया और बोला—सेठजी ! आप ससार का समूचा सुख भोग रहे हैं। सेठ ने यह बात सुनी और कहा—भाई ! मेरे नसीब मे सुख कहा है ? धन वैभव है, नौकर चाकर हैं, पर सुख नही है। मैं दिन-रात नि सतान होने का दु ख भोग रहा हू।

अपने गाव मे सबसे अधिक सुखी कौन है लालाजी ! पुजारी का प्रश्न सुन सेठजी ने एक दूसरे सेठ का नाम बताया। उसके पास सम्पदा भी थी और चार पुत्र भी थे। पुजारी उनके पास पहुच गया। सेठजी सारी बात सुनकर बोले—भाई ! तुम मेरे दु ख को नही समझ सकते। यह सच है कि मेरे पास धन है, पुत्र है, पर मेरा एक भी बेटा मेरा कहना नही मानता है। कोई शराबी है, कोई जुआरी है और कोई आलसी है। तुम्ही सोचो, मैं सुखी कैसे हो सकता हू।

सेठ के निर्देशानुसार पुजारी उस गाव के बडे जमीदार के पास पहुचा। जमीदार उसकी बात सुनकर बोला—जितनी अधिक जमीन, उतना ही दु ख। कभी टैक्स की चिंता और कभी जमीन हडप जाने की। रात को निश्चिन्त होकर सो भी नही सकता। मैं तुम्हे सुखी कैसे लगा ? सुखी है वह मिनिस्टर। उसका नाम भी है, इज्जत भी है और जिन्दगी का ठाटवाट भी।

पुजारी मिनिस्टर के पास गया तो वह बोला—किसी राजनेता का सुख ऊपर ऊपर का सुख है। कुर्सी की चिन्ता उसे आराम से खाना भी नही खाने देती। आपकी दृष्टि मे सुखी कौन है ? पुजारी को इस प्रश्न

मुख्य गौण हो जाए

किसी रईस सेठ के घर मे आग लग गई। सेठजी ने सेवको के सहयोग से घर का सारा कीमती सामान बाहर निकाल लिया। कुछ समय बाद सेठानी घर पहुची। उसने पहला सवाल किया— क्या हुआ ? सेठ ने जवाब दिया—बहुत कुछ हो जाता। पर अब चिन्ता की बात नही है। सारा सामान सुरक्षित निकाल लिया। सेठानी ने इधर-उधर देखा और व्याकुल होकर बोली— मुन्ना कहा है ? यह बात सुनते ही सेठजी के होश गम हो गये। धन वैभव को सुरक्षित रखने की चिन्ता मे उनको बच्चे की याद ही नही आई। वे अधीर होकर बोले—ओह ! वह तो भीतर ही रह गया।

दो साल का इकलौता पुत्र, जो गहरी नीद मे सोया था, आग मे जल कर भस्म हो गया। सब कुछ बचाया, पर उसे नही बचाया, जो उस सब कुछ का एकमात्र स्वामी बनने वाला था, उपभोक्ता बनने वाला था। उस घर मे जो सर्वाधिक महत्त्वपूण था, वह गौण हो गया और जो धन वैभव गौण था, वह मुख्य हो गया। इस विपर्यास का दु खद परिणाम सेठ और सेठानी जीवन भर नही भूल सके।

मनुष्य जीवन मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है आध्यात्मिक एव नैतिक मूल्य। जीवन मूल्या को विस्मृत कर उपासना और क्रियाकाण्डो को सर्वोपरि मूल्य देने वाले लोग मुख्य को गौण एव गौण को मुख्य मान कर अपनी जीवन शैली को विकृत कर रहे हैं। आज अपेक्षा है उपासना को उपासना का दर्जा देते हुए नैतिक मूल्यो की बुनियाद पर जीवन का महल खडा किया जाए।

सुख अपने भीतर है

मन्दिर मे एक पुजारी रहता था। वह भगवान की पूजा करता और मस्ती का जीवन जीता। एक दिन उसने किसी सम्पन्न सेठ को कार से उतरते देखा। सेठ के ठाटबाट ने उसको मोह लिया। वह सेठ के पास गया और बोला—सेठजी! आप ससार का समूचा सुख भोग रहे हैं। सेठ ने यह बात सुनी और कहा—भाई! मेरे नसीब मे सुख कहा है? धन वैभव है, नौकर चाकर हैं, पर सुख नही है। मैं दिन-रात नि सतान होने का दु ख भोग रहा हू।

अपने गाव मे सबसे अधिक सुखी कौन है लालाजी! पुजारी का प्रश्न सुन सेठजी ने एक दूसरे सेठ का नाम बताया। उसके पास सम्पदा भी थी और चार पुत्र भी थे। पुजारी उनके पास पहुच गया। सेठजी सारी बात सुनकर बोले—भाई! तुम मेरे दु ख को नही समझ सकते। यह सच है कि मेरे पास धन है, पुत्र हैं, पर मेरा एक भी बेटा मेरा कहना नही मानता है। कोई शराबी है, कोई जुआरी है और कोई आलसी है। तुम्ही सोचो, मैं सुखी कसे हो सकता हू।

सेठ के निर्देशानुसार पुजारी उस गाव के बडे जमीदार के पास पहुचा। जमीदार उसकी बात सुनकर बोला—जितनी अधिक जमीन, उतना ही दु ख। कभी टैक्स की चिन्ता और कभी जमीन हडप जाने की। रात को निश्चिन्त होकर सो भी नही सकता। मैं तुझे सुखी कैसे लगा? सुखी है वह मिनिस्टर। उसका नाम भी है, इज्जत भी है और जिन्दगी का ठाटबाट भी।

पुजारी मिनिस्टर के पास गया तो वह बोला—किसी राजनेता का सुख ऊपर ऊपर का सुख है। कुर्सी की चिन्ता उसे आराम से खाना भी नही खाने देती। आपकी दृष्टि मे सुखी कौन है? पुजारी को इस प्रश्न

शिक्षा की पात्रता

ससार मे दो प्रकार के व्यक्ति होते है—रूढ और लचीले। रूढ व्यक्ति अपने विचारो एव आदतो के दास होते है। उन्हे कोई कितना ही समझाए, वे किसी भी चेंज के लिए सहमत नही होते। उनका चिन्तन होता है कि वे जो कुछ कर रहे हैं, वही ठीक है। इसके विपरीत लचीले व्यक्ति पूरी तरह से आग्रहमुक्त होते हैं। उनके सोचने और जीने का क्रम सही हो, फिर भी वे अपने चिन्तन के वातायन को सदा खुला रखते है। अपनी ग्रहणशीलता के कारण वे विशिष्ट से विशिष्टतम बन जाते हैं। ऐसा तभी हो सकता है, जब व्यक्ति मे अच्छी बात को स्वीकार करने की पात्रता हो।

नववधू शादी के बाद ससुराल गई। घर का कामकाज उसने कभी किया नही था। आदत के अनुसार वह दिन भर खाट तोडती और उसकी वृद्धा सास काम करती। युवक ने इस विसगति को देखा। उसे बहुत अटपटा लगा। उसने अपनी पत्नी को मनोवैज्ञानिक ढग से शिक्षा देने का निश्चय किया। एक दिन वह जल्दी उठा। हाथ मे झाडू लेकर घर की सफाई करने लगा। मा ने बाहर आकर देखा। पुत्र को झाडू लगाते देख उसे आश्चर्य मिश्रित दु ख हुआ। पुत्र से झाडू मागते हुए उसने कहा—यह काम हमारा है। युवक अपनी पीडा को मन ही मन पीता हुआ बोला—मा ! बूढी हो गई हो। यह सब कब तक करती रहोगी ? मा बेटे की बात सुन बहू बाहर आई और दर्शक की तरह खडी हो गई। स्थिति का जायजा लेकर वह बोली—अम्माजी ! आप दोनो विवाद क्यो कर रहे हैं ? एक दिन झाडू आप लगा लिया करें। और एक दिन ये लगा लेंगे।

पत्नी की बात सुन युवक बुरी तरह झेंप गया। उसे विश्वास हो गया कि पात्रता के बिना सीख भी नही लग सकती।

विम्ब और प्रतिविम्ब

भगवान महावीर ने अनेकान्त का दर्शन दिया । अनेकान्त का अर्थ है—एक व्यक्ति या वस्तु मे अनेक धर्मो का स्वीकार। इस स्वीकृति का फलित यह है कि व्यक्ति मे अच्छाई और बुराई का एहसास होता है । उसमे क्षमा होती है, क्रोध भी होता है । सयम होता है, असयम भी होता है । सहिष्णुता होती है, उत्तेजना भी होती है । सुदरता होती है और कुरूपता भी होती है। जीवन मे जो कुछ अच्छा है, उसे देखकर व्यक्ति प्रसन्न होता है और जो कुछ अच्छा नही है, उसे देखकर व्यक्ति खिन्न होता है। यह स्वाभाविक वात है। ऐसी स्थिति मे व्यक्ति सम्यक् पुरुषार्थ करे, बुराई को छोडकर अच्छाई का विकास करे, यह सही रास्ता है । पर जो लोग वुराई तो छोडते नही और वुराई के परिणाम से वचना चाहते है, यह कैसे सभव हो सकता है ?

एक व्यक्ति ने दपण मे अपना चेहरा देखा । दर्पण में प्रतिविम्बित भद्दे रूप को देख उसे गुस्सा आ गया। उसने एक पाषाण खण्ड हाथ मे लिया और दपण को चूर-चूर कर दिया। उस व्यक्ति की सात वर्षीय लडकी वही वैठी थी। उसने घवराकर पूछा—पापा ! यह आपने क्या किया ? दपण क्यो फोड दिया ? लडकी का प्रश्न सुन पिता वोला—वेटी ! यह दपण अच्छा नही है। इसमें मेरा चेहरा बहुत भद्दा दिखाई देता है। हम दूसरा आईना खरीदेगे, इसीलिए इसको तोड डाला। एक क्षण कुछ सोचकर लडकी वोली—पापा ! आईना वदलने से क्या होगा, चेहरा तो जैसा है, वैसा ही रहेगा ? छोटी सी वच्ची के इन वोलो ने पिता को नई दृष्टि दी। अब उसने समझ लिया कि जव तक विम्ब ठीक नही होगा, प्रतिविम्ब को मिटाने से क्या होगा ? व्यक्ति का चेहरा सुदर हो या न हो, जीवन सुन्दर होना चाहिए। जीवन का सौदय चेहरे की कुरूपता को भी ढक सकता है।

सुधार का मूल : व्यक्ति

राष्ट्र की सुरक्षा और विकास का दायित्व किसी व्यक्ति या वर्ग विशेष पर नही होता। छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा व्यक्ति, जो देश का वफादार नागरिक होता है, ऐसा कोई काम नहीं कर सकता, जिससे राष्ट्रीय हितो का विघटन हो। राष्ट्र का हित व्यक्ति का अपना हित है। राष्ट्रहित को कुचलकर कोई व्यक्ति अपना हित कैसे साध सकता है ? क्योंकि वह स्वय उस राष्ट्र का अभिन्न अग होता है।

सैनिक देश की सीमाओ को अपना घर समझते है और उनकी सुरक्षा करते हैं। डाक्टर राष्ट्र के स्वास्थ्य पर अपनी नजर रखते हैं। शिक्षक देश की भावी पीढ़ी को सवारते है। किसान जीवन की जरूरता को पूरा करते हैं। इसी प्रकार इजीनियर और श्रमिक, नेता और जनता, सबका अपना-अपना दायित्व है। जो लोग ईमानदारी से अपने दायित्व को पूरा करते है, वे एक दृष्टि से राष्ट्र का निर्माण करते है।

राष्ट्र-निर्माण के बहिरग पक्ष का दायित्व अनेक वर्गों में विभक्त है। उसका अतरग पक्ष है चरित्र का निर्माण। इस निर्माण का जिम्मा किसी एक वर्ग पर नही हो सकता। हर वर्ग का हर व्यक्ति अपने चरित्र को उन्नत रखे तो राष्ट्र का चरित्र अपने आप उज्ज्वल रहेगा। इसी भावना से मैंने एक गीत मे कहा है—'सुधरे व्यक्ति, समाज व्यक्ति से, राष्ट्र स्वय सुधरेगा।' चरित्र-निर्माण का दायित्व व्यक्ति-व्यक्ति का है। पर इसकी प्रेरणा देने का काम साधु-सन्तो का है। उन्हे भी अपने दायित्व के प्रति जागरूक रहना चाहिए।

कौन होता है गुरु ?

एक युवक रास्ता भूलकर भटक गया। वह जंगल में घूम रहा था। वहां उसे किसी सन्यासी की झोपड़ी दिखाई दी। भूखा-प्यासा थका-हारा वह युवक उस झोपड़ी में पहुंचा। वहां एक सन्यासी धूनी रमाए बैठे थे। युवक ने भोजन मांगा। सन्यासी बोला -- पहले मेरा शिष्यत्व स्वीकार करो। युवक ने पूछा---शिष्य बनने पर क्या करना होता है और गुरु बनने पर क्या करना होता है ? सन्यासी ने उत्तर दिया--- गुरु आदेश देता है। शिष्य उसका पालन करता है। युवक दो क्षण सोचकर बोला---ऐसा भी हो सकता है क्या कि मैं आपका गुरु बन जाऊं और आप मेरे शिष्य हो जाएं।

गुरु बनने का अर्थ है पहले अपना स्वामी बनना, उसके बाद दूसरों का नेतृत्व करना। जिसमें बड़प्पन की भूख होती है, जो केवल आदेश देना चाहता है, वह नाममात्र का गुरु हो सकता है। गुरुत्व की गरिमा उसमें नहीं होती। गुरु वह होता है, जो पहले अपने पर अनुशासन करता है। गुरु वह होता है, जो प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास कर लेता है। गुरु वह होता है जो आत्मविश्वास का धनी होता है। गुरु वह होता है, जो अपने व्यक्तित्व को खुद बनाता है। गुरु वह होता है, जो अन्धकार को भी आलोक बना देता है। पर जो व्यक्ति गुरु बनने की महत्त्वाकांक्षा रखता है, वह कभी गुरु नहीं बन सकता। गुरु बनना है, अपना स्वामी बनना है तो अन्य सब महत्त्वाकांक्षाओं को छोड़कर एक ही इच्छा का पोषण करें कि जीवन में गुरु की गरिमा का अवतरण कैसे हो सकता है ?

अखण्ड व्यक्तित्व के सूत्र

हर व्यक्ति के पास अपना अखण्ड व्यक्तित्व होता है, पर वह उसे खण्ड-खण्ड मे जीता है। खडित व्यक्तित्व इस युग की सबसे वडी समस्या है। खण्ड मे अखण्ड की खोज हमारा सनातन आदश है। इस आदश तक वही व्यक्ति पहुच सकता है, जो चेतना के स्तर पर जीने का अभ्यास करता है। पदार्थ के स्तर पर जीने वाला अपने आपको तोडता है। उसे पदार्थ उपलब्ध होता है तो वह सुख का सवेदन करता है। पदार्थ का अभाव उसे दु खी बना देता है। गर्मी की मौसम मे वातानुकूलित कमरा उसे सुख देता है और धूप मे चलना उसके लिए कष्टप्रद हो जाता है। जबकि चेतना के स्तर पर जीने वाला दु खद परिस्थितियो को भी सुख मे बदल लेता है। यह अखण्ड व्यक्तित्व की पहचान है।

अखण्ड व्यक्तित्व के सूत्र है—समता, सहिष्णुता और आत्मानुशासिता। जो अनुकूलता और प्रतिकूलता मे सम रह सकता है, उसे अपने लक्ष्य से विचलित करना सभव नही है। जो छोटो और वडो—सबको सहन कर सकता है, सबके साथ तालमेल विठा सकता है, वह कभी टूटता नही है। जो आत्मनियत्रण की शक्ति का विकास कर लेता है, वह कभी भय या प्रलोभनवश कोई गलत काम नही कर सकता। इन तीन बातो को साधने वाला व्यक्ति न शरीर से टूटता है और न मन से टूटता है। अखण्ड व्यक्तित्व का राज इसी त्रिपदी मे मे छिपा हुआ है।

जैसी सोच वैसी प्राप्ति

एक व्यक्ति को चिन्तामणि रत्न मिला। वह नदी के तट पर बैठा था। उसे प्यास लगी। उसने सोचा—ठंडा पानी पीना है। उसी समय पानी से भरा हुआ घड़ा उसके सामने आ गया। कुछ समय बाद उसे भूख लगी। उसने सोचा—भोजन मिल जाए तो अच्छा। चिन्तन के दूसरे ही क्षण उसके सामने भोजन से भरा हुआ थाल आ गया। उसने पेट भर खाया। अब नींद सताने लगी। उसने सोने की इच्छा की तो चारपाई, गद्दा और पंखा सब उपलब्ध हो गए। इन सब सुविधाओं के बीच उसे सिर पर छत की याद आई और एक सुन्दर भवन तैयार हो गया।

जीवन भर गरीबी से संघर्ष करने के बाद अचानक उसे इतना कुछ मिला कि उसका मन संदिग्ध हो उठा। वह सोचने लगा—यह सब कौन कर रहा है? यहां कोई भूत तो नहीं है, भूत की बात सोचते ही भूत सामने आकर खड़ा हो गया। अब तो वह थर-थर कांपने लगा। उसके मन में विकल्प उठा—यह मुझे मार देगा तो? इस चिन्तन के साथ ही भूत ने उसको पछाड़ दिया।

आदमी जैसा सोचता है, वैसा ही उसके साथ घटित हो जाता है। इसलिए अच्छा सोचो और अच्छा बोलो। गांधीजी ने तीन बन्दरों को प्रतीक बनाकर मनुष्य को प्रतिबोध दिया था—बुरा मत देखो, बुरा मत सुनो और बुरा मत बोलो। इसका सारांश यही है कि बुरा देखने वाला, सोचने वाला, सुनने वाला, बोलने वाला और करने वाला कभी अच्छा जीवन नहीं जी सकता।

अहिंसा है अमृत

ससार मे विष भी है, अमृत भी है। शत्रु भी है, मित्र भी है। भय भी है, शरण भी है। दु ख भी है और सुख भी है। विष व्यक्ति को मारता है। अमृत उसे अमर बनाता है। मनुष्य के मन पर शत्रु का आतक रहता है और मित्र होने के अहसास से ही आश्वासन मिलता है। भय व्यक्ति को शक्तिहीन बनाता है, वहा त्राण और शरण प्राप्त होने पर उसकी शक्ति बहुगुणित हो जाती है। दु ख किसी को प्रिय नही होता, सुख सबको काम्य होता है, ऐसी स्थिति मे मनुष्य अमृत की खोज करता है, मित्र की खोज करता है, शरण खोजता है और सुख खोजता है।

कुछ लोकोत्तर पुरुष हुए हैं इस ससार मे। उन्होने मनुष्य के मानसिक द्वन्द्व को पकडा, उसे समझा और समाधान की भाषा मे कहा—क्रोध जहर है और अहिंसा अमृत है। अभिमान शत्रु है और अप्रमाद मित्र है। माया भय है और सत्य शरण है तथा लोभ दु ख है और सन्तोष सुख है। इस तथ्य को समझने वाला अभीष्ट की खोज मे यात्रा करने वाला व्यक्ति निश्चिन्तता का जीवन जी सकता है। जो लोग हेय और उपादेय को नही समझकर कषाय चतुष्क—क्रोध, मान, माया एव लोभ का परिहार नही करते वे न अमृत को पा सकते हैं और न कभी सुख का वरण कर सकते हैं।

अर्थ का नशा

इस ससार मे कुछ नशीली चीजें होती है। उनका सेवन करने से आदमी पर नशा छा जाता है और वह बेभान हो जाता है। शराब नशीली होती है, तम्बाकू नशीली होती है, कुछ ड्रग्स नशीली होती हैं, स्त्री भी नशीली होती है। कुछ चीजें ऐसी और हैं जिनका नशा कई लोगो को होता है। इन मादक चीजो मे एक नशा है आर्थिक सम्पन्नता का। तथ्य यह है कि धन जीवन चलाने का साधन है, किन्तु जिन लोगो पर धन का नशा चढ जाता है, वे उसे अपने जीवन का साध्य मान लेते है। गलत तरीको से अर्थ का अर्जन करने मे भी उनको कभी सकोच नही होता।

धन को ही सब कुछ मानने वाले शायद इस बात को भूल जाते हैं कि धन उनको ऐश आराम दे सकता है, पर राम (भगवान) से साक्षात्कार नही करा सकता। धन के आधार पर वे अच्छे से अच्छे होस्पिटल मे बडे-बडे डाक्टरो से उपचार करा सकते हैं, पर स्वास्थ्य प्राप्ति की वहा भी कोई गारटी नही है। धन के द्वारा भोगोपभोग के साधन सुलभ हो सकते है, पर शान्ति नही मिल सकती। धन के बल पर घर मे पुस्तको का ढेर लगाया जा सकता है, पर ज्ञान की प्राप्ति नही हो सकती। ऐसा धन, जो ऊपर की चमकदमक तो दे सकता है, पर पवित्रता नही दे सकता। क्या सोचकर आदमी इसके नशे मे बेहोश हो जाते है ? काश ! व्यक्ति धन को जीवन का साध्य न मानकर एक साधन की हैसियत से उसका उपयोग करे।

राम मन मे, काम सामने

राजा कभी परमात्मा का नाम नही लेता था। इस बात से रानी बहुत दु खी थी। उसने ऐसा प्रयास किया जिससे राजा भगवान् का स्मरण कर सके। किन्तु उसे सफलता नही मिली। रानी के जीवन की सब इच्छाए पूरी हो गई थी। इस एक इच्छा के अपूर्ण रहने का दु ख उसे दिन-रात सालता रहता था। राजा की नाराजगी के भय से वह उसे अधिक कह भी नही सकती थी।

रात का समय था। राजा नीद मे सो रहा था। सहसा उसके मुह से निकल पडा—हे भगवान्! रानी ने ये शब्द सुने। उसका एक अधूरा सपना पूरा हो गया। उसे बहुत खुशी हुई। उसने दूसरे दिन अपने राज्य मे उत्सव मनाने की घोषणा करवा दी। घोषणा के अनुसार राजधानी मे उत्सव की तैयारिया शुरू हो गई। राजा को सूचना मिली। उसने पूछा—आज का उत्सव किसलिए मनाया जा रहा है? सेवको ने निवेदन किया—महारानीजी के आदेश से। राजा ने रानी से पूछताछ की। रानी ने कहा—आपने भगवान् का नाम लेकर मेरे मन की मुराद पूरी कर दी। उसी उपलक्ष्य मे यह उत्सव है। राजा इस बात से सहमत नही हुआ। रानी बोली—रात को नीद मे आपके मुह से निकले ये शब्द मैंने सुने थे।

राजा इस बात से खिन्न होकर बोला—मेरा सकल्प टूट गया। मैंने यह प्रतिज्ञा ले रखी थी कि काम सामने और राम भीतर, मेरे जीवन का यह क्रम रहे। मै भगवान का नाम लेकर, भजन स्मरण कर, उसका प्रदशन करना नही चाहता था। समझ विकसित होने के बाद शायद एक क्षण भी ऐसा नही बीतता है, जब मुझे प्रभु का स्मरण न हो। इसी प्रेरणा से मैं अपने जीवन मे गलत काम करने से

बच सका हूं। आज मेरा संकल्प खण्डित हो गया।

राजा के इस महान संकल्प को समझकर रानी उसके प्रति श्रद्धा से प्रणत हो गई।

ऐसे व्यक्ति बहुत कम मिलते हैं, जो भगवान का नाम लेते हैं पर उसे दिखाना नहीं चाहते। भगवद् स्मरण का एक मात्र उद्देश्य जीवन की पवित्रता होना चाहिए। ऐसा उद्देश्य तभी फलित होता है, जब व्यक्ति प्रदर्शन से बचकर आत्मलीन बनने का प्रयत्न करता है।

वोटो की राजनीति

लोकतान्त्रिक राज्य व्यवस्था का मूलभूत आधार है वोट। वोट देने और लेने की प्रक्रिया जितनी सहज और शुद्ध होगी, लोकतन्त्र उतना ही स्वस्थ रहेगा। इस बात को सब समझते हैं। फिर भी वोटो की राजनीति चलती है। जो व्यक्ति इस राजनीति मे जुड जाता है, वह अपने सिद्धान्तो एव आदर्शों को भी ताक पर रख देता है। कभी-कभी वह ऐसा काम कर बैठता है, जिससे उसका भविष्य चौपट हो जाता है। इन सब बातो से बेखबर रहकर वह कुर्सी पाने के लिए और प्राप्त कुर्सी की सुरक्षा के लिए उचित अनुचित का विवेक भी खो देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह वोटो की राजनीति अनीति की जड है और लोकतन्त्र के लिए पलीता है।

लोकसभा राष्ट्र की रीढ होती है। उसमे ऐसे जघन्य व्यक्तियो को प्रवेश मिल जाए, फिर राष्ट्र किसके आधार पर मजबूत रहेगा? राष्ट्र की मजबूती और लोकतन्त्र की स्वस्थता के लिए मतदान सम्बन्धी अनैतिकता की जडो को उखाडना जरूरी है।

किसी गाव मे एक ईमानदार आदमी रहता था। उसी गाव के दस बेईमान व्यक्ति उसके घर गए और बोले—तुम मर चुके हो। हम तुम्हे श्मशान ले जाएगे और जलाएगे। ईमानदार व्यक्ति ने कहा—मैं जिन्दा खडा हू। इस हालत मे तुम मुझे श्मशान कैसे ले जा सकते हो? उसने बहुत कहासुनी की, पर उन्होंने एक नही सुनी। आखिर वह बोला—गाव के प्रधान के पास चलो। अगर वह कह देगा कि मैं मर गया हू तो तुम्हारी बात मान लूगा।

दसो आदमियो के साथ वह प्रधान के घर पहुचा। उसने सारी रामकहानी सुना दी। पूरी बात सुनकर प्रधान बोला—मैं जानता हू

कि तुम जिन्दा हो। पर ये दस आदमी मिलकर जो बात कह रहे हैं, उससे मैं भी इन्कार नही हो सकता। क्योंकि इनके कहे अनुसार तो तुम अकेले व्यक्ति ही मरोगे, पर मैंने तुमको जिन्दा कह दिया तो मेरे ये दस वोट मारे जाएगे।

कितना तीखा व्यंग है वोटो की इस विकृत राजनीति पर। क्या यह लोकतंत्र का भोंडा मजाक नहीं है।

विसगति

ज्ञान और आचरण की एकता शिक्षा का सुफल है। ग्रहण शिक्षा और आसेवन शिक्षा के सयोग से एकता फलित होती है। ज्ञान और आचरण की दूरी इस बात को प्रमाणित करती है कि ज्ञान का आधार पुस्तकें है, जीवन नही। जब तक गृहीत ज्ञान जीवन मे नही उतरता है, तब तब व्यक्तित्व का रूपान्तरण घटित नही हो सकता।

सात वर्ष की बच्ची स्कूल गई। वहा उसको बोधपाठ मिला—घर आए व्यक्ति का तिरस्कार नही करना चाहिए। बच्ची ने पाठ याद किया। वह घर गई। घर के सामने भिखारी खडा था। बच्ची की मम्मी उसे डाटते हुए घर से दूर हटने के लिए कह रही थी। बच्ची दौडती हुई वहा पहुची और बोली—मम्मी! कोई हमारे घर आए, उसका अपमान नही करना चाहिए। मम्मी ने उसको चुप रहने का सकेत कर भीतर भेज दिया।

दूसरे दिन स्कूल मे सिखाया गया—किसी के साथ झगडा नही करना चाहिए। बच्ची इसी अवधारणा के साथ घर गई। घर मे पहुचकर उसने देखा—मम्मी और पापा बहुत जोर से झगड रहे है। बच्ची ने उनकी लडाई मे हस्तक्षेप करते हुए कहा – मम्मी! अच्छे लोग कभी झगडा नही करते। यह बात सुनते ही मम्मी ने एक थप्पड लगाकर बच्ची का मुह लाल कर दिया। वह अपने कपोल सहलाती हुई अन्दर जाकर किसी गहरे सोच मे खो गई।

तीसरे दिन बच्ची को सबक सिखाया गया—झूठ नही बोलना चाहिए। बच्ची घर गई। घर के बाहर खडा कोई व्यक्ति उसके पापा को पूछ रहा था। उसने पापा से जाकर कहा तो वह बोला—जाओ, उसे कह दो कि पापा कही बाहर गए हुए है। बच्ची उलटे पाव लौट

कर गई और उसने आगन्तुक को वहा से विदा कर दिया।

चौथे दिन बच्ची देर तक सोती रही। मम्मी ने उसे जगाते हुए कहा– इत्ती देर हो गई, स्कूल नही जाना है क्या ? बच्ची बोली— मम्मी ! मैं स्कूल नही जाऊगी। वहा मैडम सब कुछ गलत सिखाती है। उसकी सीख का घर मे कोई उपयोग नही। फिर मैं वहा जाकर अपना समय बर्बाद क्यो करू ? मम्मी सकते मे आ गई। वह कुछ भी कहने की स्थिति मे नही रही।

भारतीय सस्कृति की पहचान

भारतीय सस्कृति की अपनी अलग पहचान है। वह पहचान है उसका अपना चरित्र। चरित्र के कई पक्ष होते हैं। उनमे एक है—सयम। सयम का स्वरूप बहुत व्यापक है। दृष्टि सयम, खाद्य सयम, वचन सयम, गमन सयम आदि उसके अनेक रूप हैं। सयम की साधना करने वाला व्यक्ति विना प्रयोजन कोई प्रवृत्ति नही कर सकता। प्रवृत्ति तो दूर की बात है, वह इधर-उधर देखता भी नही है।

राम, लक्ष्मण और सीता के वनवास की बात प्रसिद्ध है। सीता का अपहरण हुआ। वह रास्ते मे अपने आभूषण गिराती गई। इधर कुटिया मे सीता को न देखकर राम व्याकुल हो उठे। राम के भक्त सीता की खोज मे निकले। वे रास्ते मे पडे आभूषण उठाकर लाए। उन्होने लक्ष्मण को वे आभूषण दिखाए। आभूषण देखकर लक्ष्मण ने कहा—

ककण नैव जानामि नैव जानामि कुडल।
नूपुर त्वभिजानामि नित्य पादाभिवन्दनात॥

मैंने भाभी के आभूषणो मे न तो ककण को कभी देखा और न ही कुडल को देखा। उनकी ओर दृष्टि उठाकर देखने का प्रसग ही नहीं था। वह अपने पावो मे जो जेवर पहनती थी, उन्हे मैं जरूर पहचान लूगा। क्योकि प्रात काल प्रतिदिन प्रणाम करते समय उसके नूपुरो पर अनायास ही मेरी नजर टिक जाती थी।

लक्ष्मण के इस कथन से दो बातें फलित होती हैं—उसका दृष्टि-सयम और वडो के प्रति सम्मान की भावना। प्रतिदिन वडो के चरण छूने की परम्परा एक प्रकार से उनके आशीर्वाद से नहाने की परपरा

कर गई और उसने आगन्तुक को वहा से विदा कर दिया।

चौथे दिन बच्ची देर तक सोती रही। मम्मी ने उसे जगाते हुए कहा— इत्ती देर हो गई, स्कूल नही जाना है क्या ? बच्ची बोली— मम्मी ! मैं स्कूल नही जाऊगी। वहा मैडम सब कुछ गलत सिखाती है। उसकी सीख का घर मे कोई उपयोग नही। फिर मैं वहा जाकर अपना समय बर्बाद क्यो करू ? मम्मी सकते मे आ गई। वह कुछ भी कहने की स्थिति मे नही रही।

भारतीय सस्कृति की पहचान

भारतीय सस्कृति की अपनी अलग पहचान है। वह पहचान है उसका अपना चरित्र। चरित्र मे कई पक्ष होते हैं। उनमे एक है—सयम। सयम का स्वरूप बहुत व्यापक है। दृष्टि सयम, खाद्य सयम, वचन सयम, गमन सयम आदि उसके अनेक रूप हैं। सयम की साधना करने वाला व्यक्ति बिना प्रयोजन कोई प्रवृत्ति नही कर सकता। प्रवृत्ति तो दूर की बात है, वह इधर-उधर देखता भी नही है।

राम, लक्ष्मण और सीता के वनवास की बात प्रसिद्ध है। सीता का अपहरण हुआ। वह रास्ते मे अपने आभूषण गिराती गई। इधर कुटिया मे सीता को न देखकर राम व्याकुल हो उठे। राम के भक्त सीता की खोज मे निकले। वे रास्ते मे पडे आभूषण उठाकर लाए। उन्होने लक्ष्मण को वे आभूषण दिखाए। आभूषण देखकर लक्ष्मण ने कहा—

> ककण नैव जानामि नैव जानामि कुडल।
> नूपुर त्वभिजानामि नित्य पादाभिवन्दनात्॥

मैंने भाभी के आभूषणो मे न तो ककण को कभी देखा और न ही कुडल को देखा। उनकी ओर दृष्टि उठाकर देखने का प्रसग ही नही था। वह अपने पावो मे जो जेवर पहनती थी, उन्हे मैं जरूर पहचान लूगा। क्योकि प्रात काल प्रतिदिन प्रणाम करते समय उसके नूपुरो पर अनायास ही मेरी नजर टिक जाती थी।

लक्ष्मण के इस कथन से दो बातें फलित होती हैं—उसका दृष्टि-सयम और बडो के प्रति सम्मान की भावना। प्रतिदिन बडो के चरण छूने की परम्परा एक प्रकार से उनके आशीर्वाद से नहाने की परपरा

है। आज कितने परिवारों में इस परंपरा का निर्वाह होता है? भाई-भाभी की बात ही क्या, माता-पिता एवं गुरुजनों को प्रणाम करने का क्रम भी कहां चलता है?

लक्ष्मण का दृष्टिसंयम भी कितना विलक्षण था। उसने कभी आंख उठाकर नहीं देखा कि भाभी ने हाथों में क्या पहना है? गले में क्या पहना है और कानों में क्या पहना है? इसी संयम की साधना से वह अद्भुत शक्ति का संचय कर पाया। इस युग के लोग इन दो बातों का सलक्ष्य अभ्यास करें तो अपने भीतर सोई हुई शक्तियों को जगाने में सफल हो सकते हैं।

-

प्रभु बनकर प्रभु की पूजा

राम और रावण का युद्ध दैवी और आसुरी शक्तियो का युद्ध था, ऐसा माना जाता है। युद्ध मे लक्ष्मण को शक्ति लगी और वह मूर्च्छित होकर गिर गया। राम की सेना मे सन्नाटा छा गया। लक्ष्मण को बचाने की चिन्ता सबके मन मे व्याप्त थी। समय पर नही उपचार मिला और लक्ष्मण की मूर्च्छा टूट गई। वह अगडाई लेकर उठ बठा। उस समय उसके चारो ओर मित्रो, स्वजनो का पूरा घेरा था। लक्ष्मण का मुस्कान भरा चेहरा देखकर सबकी उखडी हुई धडकने सहज गति से चलने लगी। शक्ति लगने के बाद लक्ष्मण को क्या महसूस हुआ ? यह जिज्ञासा सबके मन मे थी। उनकी आतुरता को लक्ष्मण समझ रहा था। उसने सबको आश्वस्त करते हुए कहा—

ईषन्मात्रमह वेदभि पूर्णं वेत्ति स राघव ।
वेदना राघवेन्द्रस्य केवल व्रणिनो वयम् ॥

बधुओ ! आप जानना चाहते हैं कि मुझे क्या हुआ ? मुझे तो केवल घटना का आभास मात्र है। पूरी बात तो श्री राम जानते है। आप यह भी सोच रहे होगे कि शक्ति के प्रहार से मुझे बहुत तकलीफ हुई। पर मैं आपको सही-सही बताना चाहता हू कि मेरे शरीर पर तो केवल व्रण है। वेदना का सवेदन श्री राम कर रहे है। आप उन्हे ही पूछ लीजिए कि उनको कितनी पीडा हुई ?

लक्ष्मण का यह कथन अपने ज्येष्ठ भ्राता के प्रति उसके सपूर्ण समर्पण का प्रतीक है। समर्पित व्यक्ति कभी अपनी चिन्ता नही करता। भारतीय सस्कृति मे समर्पण के सस्कार है। गुरु के प्रति शिष्यो का, अभिभावको के प्रति बच्चो का, अध्यापको के प्रति विद्यार्थियो का

समर्पण जितना हार्दिक होता है, उन्हे उतनी ही उपलब्धि होती है। आज दूसरी सस्कृति के आयातित मूल्यो ने समर्पण की चेतना को कुठित करना शुरू कर दिया है। यह स्थिति सुखद नही है।

समर्पण के आनन्द का अनुभव एक समर्पित व्यक्ति ही कर सकता है। समर्पण मे न कोई शर्त होती है और न कोई विकल्प। वहा तो अपने अस्तित्व को आराध्य के अस्तित्व मे विलीन कर दिया जाता है। बूद सागर मे अपने अस्तित्व का विलय कर स्वय सागर बन जाती है। इसी प्रकार प्रभु के प्रति समर्पित होने वाला व्यक्ति स्वय प्रभु बन जाता है।

स्वर्ण पात्र में धूलि

इस धरती पर ऐसे लोग भी रहते हैं, जो अपने आगन मे उगे हुए कल्पवृक्ष को उखाड कर धतूरे का पौधा उगाते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो मन आकाक्षाओ, अपेक्षाओ को पूरा करने वाले चिन्तामणि रत्न को दूर फक कर साधारण काच का टुकडा उठा लेते है। हाथी को बेचकर गधा खरीदने वाले लोग भी इस ससार मे मिल जाते हैं। अपनी अपनी सोच है और अपनी-अपनी काम करने की पद्धति। जीवन की पवित्रता को भूलकर केवल क्रियाकाण्डो मे उलझना उक्त प्रसगो की क्रियान्विति नही है तो और क्या है ?

स्वर्णपात्र को धूलि से भरने वाले और अमृत से पाव पखारने वाले लोगो की भी यहा कमी नही है। ऐसे लोगो की नासमझी पर कोई भी हस सकता है। पर क्या स्वर्णपात्र जैसे जीवन को व्यसनरूप धूलि से भरने वाले लोगो का भी कभी उपहास होता है ? अमृत सरीखे गुरु के वचनो को केवल समय पास करने का माध्यम मानने वाले लोगो की मूढता पर क्या किसी का ध्यान केन्द्रित होता है ? स्वर्णपात्र को व्यक्ति जब चाहे, औंधा करके धूलि झाड सकता है। पर दुर्व्यसनो और दुर्गुणो से भरे हुए जीवन को खाली करना बहुत कठिन होता है।

व्यसन का कोई एक ही प्रकार निश्चित नही होता है। जुआ, चोरी, शिकार, परस्त्रीगमन आदि आदि व्यसन है, वैसे ही आत्मख्यापन और परदोष दर्शन भी व्यसन है। आत्मख्यापन के व्यसन से पीडित लोग मौके-बेमौके अपनी प्रशसा करते रहते है। इसी प्रकार परदोष दर्शन की आदत जिन्हे हो जाती है, वे हजार अच्छाइया मे भी किसी बुराई पर ही अपनी दृष्टि टिकाएगे। जब तक मनुष्य का दृष्टिकोण सम्यक् नही होता है, ज्ञान और आचरण का पथ प्रशस्त नही हो सकता।

कल्याण का रास्ता

एक वास्तुशिल्पी के सामने तीन बड़े बड़े पाषाणखण्ड पड़े थे। उसने छेनी हाथ मे ली और एक-एक पाषाणखण्ड को तराशना शुरू कर दिया। एक पाषाण को उसने सिंह का आकार दिया, दूसरे को गाय का आकार दिया और तीसरे मे एक प्रतिमा उकेर दी। प्रतिमा की मंदिर में प्रतिष्ठा कर दी गई। सिंह और गाय मंदिर के मुख्य द्वार पर आमने सामने स्थापित कर दिए गए। सुबह-शाम लोग मंदिर मे आते। वे प्रतिमा को भगवान मानकर पूजा करते। एक दिन सन्त रामचरण के सामने यह प्रसग उपस्थित हुआ। उन्होंने काव्यात्मक शैली मे अपने विचार प्रस्तुत किए—

पर्वत पर पाषाण सिलावट खोद र ल्यायो,
घड़्यो सिंह अरु गाय एक घड हर पदरायो,
गाय देवे जो दूध ऊठकर कहरि मारे,
ए दोनू मत होय लवै वो हर निस्तारे,
कारज तीनू सारिखा फल करणी मे जोय,
रामचरण दो असत है तो एक सत्य किम होय ?।

श्री रामचरणजी अठारहवी सदी के प्रसिद्ध सत हुए है। उनका दृष्टिकोण स्पष्ट था और चिंतन मे क्रान्ति की चेतना थी। उन्होंने मंदिरो, मूर्तियो को देश की सास्कृतिक पहचान का मूल्य दिया। वहा के शान्त वातावरण को एकाग्रता और मानसिक शान्ति का निमित्त माना। पर यह कभी स्वीकार नही किया कि मंदिर के आगे सिर झुकाने या पूजा करने मात्र से कल्याण हो जाता है। कल्याण का रास्ता है चित्त की निर्मलता और आचरण की उच्चता। यह ऐसा रास्ता है, जो कभी विवाद के घेरे मे नहीं आ सकता।

नौका वही, जो पार पहुचा दे

एक राजा ने सब धर्माचार्यों को आमन्त्रित किया। धर्माचार्य आए। राजा बोला—अपने-अपने धर्म की श्रेष्ठता प्रमाणित करो। जो धर्म सबसे अधिक श्रेष्ठ होगा, उसे मैं राजधर्म के रूप मे मान्यता दूगा। राजा की बात सुन एक एक धर्माचार्य मच पर आने लगे। वे गरिमामय शब्दो मे अपने धर्म को श्रेष्ठ बताते और उसी को राजधर्म के रूप मे प्रतिष्ठित करने के सपने देखते। एक धर्माचार्य मच पर आए। वे मौन खडे हो गए। राजा ने बोलने का अनुरोध किया तो उन्होंने सुबह तक प्रतीक्षा करने का निर्देश दिया।

दूसरे दिन सूरज निकलते ही धर्माचार्य ने राजा को नदी के तट पर बुला लिया। वे बोले—राजन्! भूखे पेट नाव मे बैठकर उस पार चलें। वही मैं आपके सामने धर्म-चर्चा करूगा। राजा ने नाव मगाई। धर्माचार्य को वह पसन्द नही आई। दूसरी नौका आई, वह छोटी थी। तीसरी दीखने मे सुन्दर नही थी। चौथी बहुत बडी थी। इस प्रकार कोई नौका काम नही आई।

इधर धूप चढ रही थी। उधर राजा की भूख बढ रही थी। धूप और भूख ने राजा को बेचैन कर दिया। वह बोला—भते! हमे तो नदी के उस पार ही जाना है। नौका कैसी भी हो। पार पहुचाने मे एक एक से बढकर है। चलो बैठे, अब आप अधिक विलम्ब न करें।

धर्माचार्य ने अपनी रहस्य भरी आखे राजा के चेहरे पर टिकाते हुए कहा—राजन! आपको प्रश्न का समाधान मिला? बिना कुछ कहे समाधान कैसे होगा? राजा की यह बात सुन धर्माचार्य ने रहस्य खोलते हुए कहा—राजन्! नाव कैसी भी क्यो न हो, जाना तो नदी के पार ही है। जो इस पार से उस पार पहुचा दे, वह नाव अच्छी है।

जो धम आदमी को जीना सिखा दे, जो धर्म जीवन की विसगतियो एव विकृतियो को मिटा दे, वही धर्म सबसे अच्छा धर्म है। नाम और उपासना पद्धति के आधार पर कोई भी धर्म छोटा-बडा नही होता।

राजा को अन्धकार मे प्रकाश मिल गया। किसी एक धम को राजधम के रूप मे प्रतिष्ठित करने का उसका चिन्तन बदल गया। उसे एक अखण्ड और व्यापक धम का दर्शन हो गया।

जीवन का अभिशाप

जो चलता है, ठोकर खा सकता है। जो करता है, कुछ गलत कर सकता है। पर जो न चलता है और न कुछ करता है, वह सबसे बड़ी गलती करता है। निठल्लापन जीवन का अभिशाप है। जो कुछ नही करेगा, वह करना सीखेगा कैसे ? बच्चा जब चलना सीखता है। चलते चलते गिर पडता है। क्या गिरने के भय से उसको चलने से रोका जाता है ? रसोई बनाना सीखने वाली कन्या कभी रोटी जला लेती है, कभी सब्जी जला लेती है और कभी अपना हाथ भी जला लेती है। क्या इस कारण उसे भोजन बनाने से रोका जाता है ? कोई युवक नया व्यवसाय शुरु करता है। नए काम मे लाभ भी हो सकता है, नुकशान भी हो सकता है। क्या कभी नुक्सान के भय से नए काम को रोका जा सकता है ?

जो लोग कदम-कदम प संदिग्ध रहते हैं, कुछ भी करने का साहस नही करते, वे कभी अपने कर्तृत्व को उजागर नही कर सकते। कर्तृत्व उनका सामने आता है, जो कुछ करते रहते हैं। जो ठोकरें खाते हैं और उन्हे भविष्य मे सभल कर चलने की सीख मानते हैं, वे अस्खलित रूप से चलना सीख लेते हैं। जो लोग काम करते हैं और उसमे उपस्थित हर अवरोध को अनुभव का सूत्र मानकर काम करते रहते हैं, वे अच्छे अनुभवी बन जाते हैं। इसलिए कुछ भी न करने की गल्ती करके अपनी योग्यता पर जग लगाना उचित नही है।

विश्वास का आधार

जो मनुष्य अपने प्रति ईमानदार होता है, वही दूसरो के प्रति ईमानदार रह सकता है। ईमानदारी व्यक्तित्व का एक गुण है। सामाजिक जीवन मे यह विश्वास का आधार है। इसके बिना सफल सामूहिक जीवन की कल्पना भी असभव है। कोई व्यक्ति किसी को एक बार, दो बार धोखा देता है तो धोखा देना उसके व्यक्तित्व का अश बन जाता है। सवाल यह नही है कि वह किन परिस्थितियो मे ईमानदारी छोडता है। क्योकि परिस्थितिया तो आरोपित भी हो सकती हैं। प्रश्न है व्यक्ति की मानसिकता का। यदि उसकी मानसिकता ईमानदार रहने की है तो कठिन से कठिन परिस्थिति मे भी उसका त्याग नही कर सकता।

सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र को राज्य छोडने के लिए किसने विवश किया था ? वह स्वय के प्रति इतना अधिक ईमानदार था कि उसकी सत्यवादिता के आगे कभी कोई प्रश्न चिह्न नही लग सका। वे क्षण कितने भावुक और रोमाचक रहे होगे, जब उसने पत्नी तारा से अपने प्रिय पुत्र रोहिताश्व का कफन मागा था। तारा की विवशता उससे छिपी हुई नही थी। फिर भी वह अपने सिद्धान्त पर अडिग रहा।

एक बार मन फिसल गया तो बार-बार फिसलने की सभावना बनी रहती है। प्रथम बार गलत काम करने मे जो सकोच रहता है, वह बार-बार गलती दोहराने पर समाप्त हो जाता है। अपराधी मनोवृत्ति वाले ऐसे कई लोग हैं, जिन्हे अपना अपराध कभी अपराध के रूप मे महसूस ही नही होता। ऐसे लोग दूसरो का जितना अहित नही करते, अपना करते हैं। धोखाधडी मे प्रवृत्त व्यक्ति दूसरो को केवल

आर्थिक हानि पहुंचा सकते हैं। पर उससे उनकी अपनी आत्मा का अध पतन होता है, उसकी जिम्मेदारी किस पर आएगी ? ईमानदार व्यक्ति धोखा खा सकता है, किन्तु किसी को धोखा देना उसके वश की बात नही होती।

निज पर शासन । फिर अनुशासन

बुढिया अपने इकलौते पुत्र को लेकर सन्यासी के पास गई और बोली— बाबा ! मेरा बेटा गुड बहुत खाता है। इसे समझा दो। सन्यासी ने आंखे बन्द की और कहा—बुढिया मा ! इसे दो सप्ताह बाद लेकर आना। बुढिया चली गई। दो सप्ताह पूरे हुए और वह फिर अपने पुत्र के साथ आ गई। सन्यासी ने दो क्षण लडके की ओर गहरी दृष्टि से देखा। फिर आत्मीयता भरी आदेश की भाषा मे कहा—वत्स ! अधिक गुड खाना अच्छा नही होता। तुम आज से गुड खाना छोड दो।

बुढिया को कुछ अटपटा सा लगा। वह बोली—बाबाजी ! इतनी-सी बात के लिए आपने मुझे इत्ती दूर से दूसरी बार बुलाया। रास्ते मे कितनी परेशानी उठानी पडी। यह बात तो आप उसी दिन कह सकते थे। बुढिया की बात सुन सन्यासी मुस्कराया। उसने कहा—मा ! तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है। पर मैंने तुमको बिना मतलब दूसरी बार नही बुलाया है। उस दिन मैं इसे कुछ भी कहता, इस पर असर नही होता। क्योकि उस समय मैं स्वय गुड बहुत खाता था। इन पन्द्रह दिनो मे मैंने अभ्यास किया और गुड खाना छोड दिया। अब मैं गुड छोडने की बात कहता हू तो वह असरकारक हो सकती है।

सन्यासी का यह कथन बहुत महत्त्वपूर्ण है। जिन लोगो की कथनी और करनी मे समानता नही होती, जो पोथे के बैंगन और खाने के बैंगन अलग-अलग रखते हैं, उनका उपदेश कभी प्रभावी नही हो सकता। दूसरो को उपदेश देने से पहले अपना आचरण सुधारना जरूरी है। 'निज पर शासन फिर अनुशासन" इस घोष का यही तो तात्पर्य है। सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक या पारिवारिक, कोई भी क्षेत्र हो, स्वय पर शासन किए बिना दूसरो पर उपदेश झाडने वाला

व्यक्ति अपने मिशन में सफल नहीं हो सकता। हम दूसरों से जैसे व्यवहार की अपेक्षा रखें, पहले हमें उनके प्रति वैसा व्यवहार करना होगा। अन्यथा हम यह आशा छोड़ दें कि सामने वाला व्यक्ति हमारे चिन्तन और निर्देश के अनुसार ही वर्तन करे।

श्रम की सस्कृति

एक बार मेघराज ने घोषणा की कि बारह वर्ष तक पानी नही बरसेगा। सब लोगो ने इस घोषणा को सुना और वे भावी दुष्काल की कल्पना मे व्यथित हो गए। जेठ आषाढ का महीना आया। किसानो ने अपने हल उठाए और खेतो की ओर चल दिए। उन्हें खेतो मे हल चलाते देख मेघ ने कहा—वर्षा नही होगी। किसानो ने उनकी बात सुनी अनसुनी कर दी।

दूसरे वर्ष वर्षा का मौसम आया पर आसमान मे बादल नही मडराए। किसान अपने हल लेकर खेतो मे गए। मेघराज ने पिछले वर्ष की घोषणा याद दिलाते हुए कहा—आपको पता है कि बारह वर्ष तक वर्षा नही होगी ? किसान बोले - हा, हमे पता है, वर्षा नही होगी। फिर यह कठोर श्रम क्यो ? मेघराज के इस प्रश्न पर किसानो ने उत्तर दिया—हम जानते हैं कि वर्षा नही होगी। पर हम यह भी जानते है कि लगातार बारह वर्ष तक हम हल नही चलाएगे तो हमारे बच्चे हल चलाने की सस्कृति को ही भूल जाएगे। हम अपनी भावी पीढी को पगु बनाना नही चाहते, श्रम विमुख बनाना नही चाहते। पानी बरसे या नही, हम हल चलाएगे और अपने बच्चो को खेती करना सिखाएगे।

कहा जाता है कि किसानो का दृढ सकल्प देखकर मेघराज को अपना निर्णय बदलना पडा। स्पष्ट घोषणा के बावजूद उसको बरसना पडा। यदि किसान उस घोषणा से निराश होकर बैठ जाते तो उन्हे दोहरी मुसीबत का सामना करना पडता।

बीसवी सदी का आदमी श्रम परामुख होता जा रहा है। इक्कीसवी सदी मे प्रवेश करके तो वह कुछ करेगा ही नही, ऐसी सभावना पुष्ट

हो रही है। कम्प्यूटर का प्रयोग मनुष्य की मस्तिष्कीय शक्ति पर असर छोड़ेगा और रोबोट का प्रयोग उसकी शारीरिक शक्ति को जड़ीभूत बना देगा। ऐसी स्थिति में श्रम की संस्कृति का लोप होगा और मनुष्य का जीवन पूरी तरह से यान्त्रिक बनकर रह जाएगा।

विज्ञान का कितना ही विकास हो जाए, कितने ही नए नए यन्त्रों का निर्माण हो जाए, और कितनी ही सुख सुविधाएं उपलब्ध हो जाएं मनुष्य यदि श्रमशील नहीं रहेगा तो प्राप्त सुविधाओं का भी आनन्द के साथ उपभोग नहीं कर सकेगा।

रूपान्तरण का उपाय

शिष्य गुरु के पास गए। उनके मन मे कुछ प्रश्न थे। वे अपने प्रश्नो का समाधान चाहते थे। गुरु ने उनकी मानसिकता को समझा और प्रश्न करने की छूट दे दी। शिष्य बोले—गुरुदेव! पाच वर्ष हो गए। हम साधना कर रहे हैं। भगवद् भजन कर रहे हैं। पर अब तक मन शान्त नही हुआ। क्या करें? गुरु ने कहा—आज तो जाओ, दो चार दिन बाद आना। शिष्य चले गए। दो दिन बाद वे फिर आए। गुरु ने कहा—एक ताडी (देशी शराब) से भरा हुआ घडा लाओ। शिष्य एक-दूसरे का मुह देखने लगे। गुरु के आदेश के सामने एक प्रश्नचिह्न खडा हुआ, पर प्रतिवाद करने का साहस नही हुआ।

शिष्य ताडी से भरा घडा लाए। गुरु ने कहा—जाओ, इससे कुल्ले करो। ध्यान रहे, इसकी एक बूद भी गले से नीचे न जाने पाए। शिष्यो ने वैसा ही किया। घडा खाली कर वे गुरु के सामने आकर खडे हो गए। गुरु ने पूछा—कुल्ले कर लिए? शिष्यो की स्वीकृति पाकर गुरु ने फिर पूछा—शराब का नशा चढा? यह सुनकर शिष्य बोले—गुरुदेव! हमने ताडी की एक घूट भी गले मे नीचे नही उतारी। ऊपर-ऊपर से कुल्ले किए। इस प्रकार नशा कैसे चढ सकता है?

शिष्यो की बात सुन गुरु बोले—तुम्हे अपने प्रश्न का उत्तर मिला या नही? शिष्य सहम गए। गुरु ने उनको प्रतिबोध देते हुए कहा—शिष्यो! शराब गले के नीचे नही उतरी, इससे नशा नही चढा। इसी प्रकार भगवान का नाम भी जब तक होठो से छूटकर अन्त करण का स्पर्श नही करेगा, मन शान्त कैसे होगा? ऊपर-ऊपर की साधना से जीवन नही बदलता।

जीवन मे बदलाव आएगा ग्रन्थियो के स्राव बदलने से। ग्रन्थियो

के स्राव तब बदलेंगे, जब ध्यान के प्रकम्पनो से व्यक्ति भीतर तक प्रकम्पित हो जाएगा। व्यक्तित्व के रूपान्तरण का एकमात्र यही उपाय है। जो लोग ऊपर-ऊपर से तपस्या करते हैं, साधना करते हैं, जप करते हैं, प्रवचन सुनते हैं, पूजापाठ करते है, प्रार्थना करते है और भी बहुत कुछ करते हैं, किन्तु भीतर से खाली रहते हैं, वे कभी शान्ति का अनुभव नही कर सकते।

•

स्वर्ग कैसा होता है ?

एक युवक को रात के समय सपना आया। स्वप्न में उसने अपने दिवगत मित्र को देखा। उनकी यह मुलाकात एक लम्बे अन्तराल के बाद की मुलाकात थी। युवक मित्र को देख भावविह्वल हो गया। वह बोला—कहां से आए हो ? सब कुछ ठीक तो है ? मित्र बोला—तुमसे बिछुड़कर मैं स्वर्ग में चला गया था। इस समय वहीं से आ रहा हूं।

स्वर्ग का नाम सुन युवक कुछ अधिक ही उत्साहित हो गया। उसने स्वर्ग के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। वह पूछने लगा—स्वर्ग कैसा होता है ? वहां तुम लोग क्या करते हो ? क्या खाते हो ? कुछ तो बताओ। युवक की बात सुन उसका मित्र बोला—मैंने मरने के बाद जिस स्वर्ग को पाया और वहां के सुख का अनुभव किया, तुम उसे जीते जी पाना चाहते हो यह कैसे हो सकता है, जो सत्य मरने के बाद मिलने वाला है वह तुम्हें मिल जाएगा ?

यह एक प्रकार की दुर्बलता है कि मनुष्य खेती के लिए होने वाला श्रम तो नहीं करता पर अच्छी फसल चाहता है। दही मथने का श्रम नहीं करता, पर मक्खन पाना चाहता है। व्यवसाय में पुरुषार्थ का नियोजन नहीं करता, पर धनपति बनना चाहता है। पढ़ने में समय लगाकर मेहनत नहीं करता, पर परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होना चाहता है। ध्यान साधना का अभ्यास नहीं करता, पर योगी बनना चाहता है।

यह जीवन की विसंगति है। सामान्यतः मनुष्य विसंगतियों में जीने का आदी हो जाता है। किन्तु यह निश्चित है कि अनुरूप पुरुषार्थ के बिना वांछित लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। व्यक्ति के मरे बिना उस स्वर्गीय सुख का अनुभव नहीं हो सकता। इस तथ्य पर मनन करने वाला व्यक्ति कभी मुफ्तखोर नहीं बन सकता।

खतरा दुश्मन से दोस्ती का

एक लकडहारे ने वृक्ष काटने की योजना बनाई। वह जगल मे इधर-उधर घूमने लगा। उसके हाथ मे मात्र लौह की कुल्हाडी थी। उसे यो घूमते देख जगल के वृक्ष काप उठे। वे आपस मे खुसरपुसर करने लगे। उनकी घबराहट देखकर वटवृक्ष बोला—साथियो! डरो मत। यह लकडहारा हमारा कुछ नही बिगाड सकेगा। इसके हाथ मे जो कुल्हाडी है, वह अकिंचित्कर है। उसका तब तक कोई उपयोग नही है, जब तक हमारा कोई साथी दुश्मन से नही मिल जाएगा, उसका सहयोग नही करेगा। वटवृक्ष की बात पूरी तरह से सही प्रमाणित हुई। जगल कटना तब प्रारभ हुआ, जब लोहे की कुल्हाडी मे लकडी का बेंट लग गया।

यह बात केवल प्राकृतिक पदार्थों पर ही लागू नही है, मनुष्य पर भी पूरी तरह से घटित होती है। बडे-बडे राज्यो के पतन का कारण उनके दुश्मनो की सैन्यशक्ति से भी अधिक निजी लोगो का विश्वासघात बनी है। इतिहास मे ऐसे अनेक प्रसग आते हैं, जो शत्रुसेना द्वारा तोडे गए कुछ व्यक्तियो के कारण उनके राज्य पर विजय प्राप्त कर लेते है। शत्रु से हर व्यक्ति सावधान रहता है। किन्तु अपने ही भाई-बन्धुओ से किसी को खतरे का अन्देशा नही रहता। व्यक्ति न तो उनसे कोई रहस्य छिपाकर रखता है और न ही उनके द्वारा किए जाने वाले किसी विस्फोट की कल्पना करता है। उसे अपनी भूल का अहसास तब होता है, जब उसका आत्मीयजन भी दुश्मन के साथ दोस्ती का हाथ बढाता है और अपने तुच्छ स्वार्थ की पूर्ति के लिए अपने ही लोगो के लिए कब्रगाह खोद लेता है।

सियासत के नाम पर ऐसी घटनाओ का होना कोई नई बात नही

है। क्योकि वहां दलबदल एक आम रिवाज बन गया है। किन्तु जो लोग आर्थिक लाभ के लिए ऐसा जघन्य काम करते हैं, धार्मिक उन्माद के कारण टूटकर या किसी को तोडकर सामने वाले वर्ग, दल या संस्थान को नुकसान पहुचाते हैं, उन्हें कभी माफ नही किया जा सकता। नीति का जहा तक सवाल है, राजनीति मे भी ऐसी घिनौनी हरकतो को प्रश्रय देना गलत है। मनुष्य इस स्थिति को समझे। तुच्छ स्वार्थपूर्ति और अह पोषण की वृत्ति से ऊपर उठे, तभी इस समस्या का समाधान समव है।

सोना भी मिट्टी है

कुछ काम ऐसे हैं जिन्हे बहुत सरलता से किया जा सकता है। पर कुछ काम ऐसे भी होते हैं, जिन्हे करना हर आदमी के वश की बात नहीं होती। उपासना का जहा तक सवाल है, पढा-लिखा, अनपढ, बूढा-जवान, महिला-पुरुष, हर व्यक्ति उपासना कर सकता है। किन्तु तत्त्व-ज्ञान की गहराई मे उतरने का पुरुषार्थ सब लोग नही कर सकते। तत्त्वबोध दो प्रकार का होता है—शास्त्रीय दृष्टि से तत्त्व का ज्ञान और उस ज्ञान के अनुरूप आचरण। वही ज्ञान सफल और सार्थक होता है, जिसका प्रतिबिम्ब व्यक्ति के आचरण मे दिखाई दे सके।

वृद्ध दम्पति जगल से गाव की ओर जा रहे थे। आगे पति चल रहा था और उसके पीछे पत्नी। चलते-चलते पति को एक सोने का आभूषण पडा दिखाई दिया। उसने सोचा—हम दोनो ने सग्रह न करने का सकल्प ले रखा है। रोज की मेहनत और रोज का गुजारा। इस क्रम से हमे बहुत आनन्द का अनुभव हो रहा है। मेरी पत्नी भी सासारिक वस्तुओ से विरक्त है। पर वह है एक औरत। शायद आभूषण देखकर उसके मन मे लोभ जग जाए। यह सोचकर उसने आभूषण पर मिट्टी डाल दी। जिससे कि पत्नी उसे देख ही न पाए।

पति मिट्टी डालकर हटा ही था कि पत्नी वहा पहुच गई। उसने रुकने का कारण पूछा तो पति ने अपने मन की आशका बता दी। सारी बात सुनकर पत्नी बोली—मैं तो आपको बहुत बडा ज्ञानी मान रही थी, पर आश्चर्य है, आप तो सोने और मिट्टी मे भेद कर रहे हैं ? हमने जिस दिन सोने का त्याग किया था, उसे मिट्टी समझकर ही किया था। किन्तु आप उसे आज भी सोना समझ रहे है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अभी तक आपकी साधना अधूरी है।

पति को अपनी पत्नी की वात सुन अपार हर्ष हुआ। उसके चेहरे पर सात्त्विक गर्व की चमक फैल गई। वस्तुत आध्यात्मिक ज्ञान मे उसकी पत्नी उससे आगे थी।

जो लोग अपने ज्ञान और आचरण मे सामजस्य स्थापित कर लेते है, वे बहुत वडा काम करते हैं। पर, इस कोटि मे आने वाले लोगो की सख्या बहुत अधिक नही होती।

घर क्यो छोडना पडा

राम को घर क्यो छोडना पडा ? अध्यापक ने विद्यार्थियो से पूछा। एक विद्यार्थी खडा हुआ और बोला—सर ! उन्होने मकान का किराया नही चुकाया होगा।

जनक का धनुष किसने तोडा ? स्कूल का निरीक्षण करने आए एक इन्सपेक्टर ने बच्चो से प्रश्न किया। बच्चे एक दूसरे का मुह देखने लगे। उन्होने एक बच्चे को खडा करके पूछा तो वह बोला—महोदय ! मैंने धनुष देखा ही नही, मैं उसे तोडता कैसे ?

इसपेक्टर महोदय को बहुत बुरा लगा। उन्होने उस कक्षा के अध्यापक को बुलाकर शिकायत के लहजे मे कहा—मैंने बच्चो से पूछा कि जनक का धनुष किसने तोडा ? कोई बच्चा इसका जवाब नही दे रहा है। अध्यापक यह बात सुनकर सहम गया और धीमे से बोला—सर ! मेरी कक्षा के सभी बच्च ईमानदार हैं। ये झूठ कभी नही बोलते। अगर इनमे से किसी ने धनुष तोडा होता तो ये अवश्य ही अपनी गलती स्वीकार कर लेते। अध्यापक की टिप्पणी इसपेक्टर को चौकाने वाली थी।

जिस देश के शिक्षक अपनी सस्कृति, परम्परा और इतिहास का थोडा भी ज्ञान नही रखते, वे शिक्षक अपने विद्यार्थियो को पुस्तकीय ज्ञान के अतिरिक्त क्या सिखा पाएगे। केवल पुस्तके पढाने वाले अध्यापक अपने बच्चो को साक्षर तो बना सकते हैं, शिक्षित नही बना सकते। शिक्षा का उद्देश्य परीक्षा मे उत्तीण होना और डिग्री प्राप्त करना मात्र ही नही है। वह तो एक मापदण्ड है, विद्यार्थी की योग्यता का। लेकिन वही सब कुछ नही है। जब तक बच्चो को सास्कृतिक और चारित्रिक मूल्यो का बोध नही दिया जाएगा, उनका सर्वांगीण विकास नही हो सकेगा।

मशीन का स्क्रू ढीला

बंगाल के प्रसिद्ध कथाकार डा० विमलमित्र ने अपनी एक कहानी में सन् १९४०, दस मई की घटना का उल्लेख किया है। उसके अनुसार जर्मनी के साथ हालैण्ड की लड़ाई शुरू हो गई। जर्मन देश सब दृष्टियों से सक्षम था। हालैण्ड गरीब था। उसने व्यापक स्तर पर युद्ध की तैयारी की। हालैण्ड के नागरिक सब प्रकार की सुख-सुविधाओं का त्याग कर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गए। उन्होंने सुख-सुविधाओं से आगे जीवन का त्याग करने की तैयारी कर ली। इस बीच विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। हालैण्ड सघन अंधकार में डूब गया। रोशनी गुल हो गई। ट्रामें बन्द हो गईं। पीने का पानी नहीं मिला। कल-कारखानों में अवरोध आ गया। सारे काम थम गए।

यह सब क्यों हुआ? कैसे हुआ? यह किसी का देशद्रोह तो नहीं है? इस प्रकार प्रश्न उपस्थित होने लग गए। आखिर बारीकी से जांच शुरू हुई। रहस्य खुला—हालैण्ड की पावर हाउस की मशीन का एक छोटा-सा स्क्रू ढीला हो गया। यह सारा अवरोध उसी की बदौलत आया है।

कितनी वेधक है यह घटना। आज संसार में जो आपाधापी, हिंसा, मारकाट, आर्थिक भ्रष्टाचार, आतंकवाद आदि जन्म ले रहे हैं, पनप रहे हैं, क्या वे सब अकारण हो रहे हैं? किसी ने खोजबीन की इनके सम्बन्ध में? कोई आयोग बैठा इनके मूल उत्स को पकड़ने के लिए? इन अवांछनीय परिस्थितियों से निपटने की चिन्ता किसी को है? मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आज संसार की एक मशीन खराब हो गई है। खराबी कोई बहुत बड़ी नहीं है। उसका एक छोटा-सा स्क्रू खराब

हो गया है। उसी के कारण यह सब घटित हो रहा है। वह मशीन है मनुष्य और स्क्रू है उसका चरित्र। जब तक मनुष्य का चरित्र बल ऊंचा नहीं होगा, संसार की बढती हुई समस्याओं का समाधान नहीं होगा।

सवाद आत्मा के साथ

किसान खेत मे पानी दे रहा था। पास ही रखा हुआ ट्राजिस्टर बोल रहा था। इन्दौर व भोपाल की ताजा खबरें आ रही थी। अचानक नाली टूट गई। पानी बह गया। किसान को गुस्सा आया। उसने ट्राजिस्टर पर डडा मारते हुए कहा—कमबख्त इन्दौर की खबरे दे रहा है और नाली टूटने की सूचना तक नही दी।

ट्राजिस्टर दूर-दूर के सवाद प्रसारित करता है और उसके निकट घटित होने वाली घटनाओ के सबध मे मौन रहना है, यह अस्वाभाविक नही है। क्योकि ट्राजिस्टर यत्र है। उसे निकट दूर का कोई बोध नही है। रेडियो स्टेशन से जो कुछ प्रसारित होता है, उसी को वह उगल देता है। आश्चर्य तो इस बात का है कि विवेकशील मनुष्य भी दूसरो के बारे मे जितना जानता है खुद के बारे मे नही जानता।

सुबह उठते ही वह अखबार पढता है। उसमे अधिकाश सवाद और सूचनाए दूसरो के बारे मे होती हैं। विश्व मे कहा, क्या सनसनीखेज घटना घटी है, अखबार उसे प्राथमिकता देता है। रेडियो और दूरदर्शन भी यही काम करते है। क्योकि ये सब व्यवसाय से जुडे हुए हैं। व्यवसायबुद्धि कभी परमार्थ या नैतिक मूल्यो को महत्त्व नही दे सकती।

अखबार आदि की बात छोड भी दें तो भी कितन लोग ऐसे है जो पदार्थ से हटकर अपने बारे मे सोचने वाले हैं। भारतीय सस्कृति मे आत्मदर्शन का जो मूल्य है उसे समझकर आत्महित मे प्रवृत्त होने वाले लोग अगुलियो पर गिने जा सकते हैं।

इस बहिर्दर्शन या पदार्थदर्शन की वृत्ति को छोडकर व्यक्ति आत्मदर्शी बनेगा तभी वह आत्मा के साथ सवाद स्थापित कर सकेगा और तभी उसे भीतर की, निकट की सूचनाए प्राप्त हो सकेंगी।

धर्म के चार द्वार

तलवार की धार तीखी होती है, पर क्रोध की धार उससे भी अधिक तीक्ष्ण है। सर्प का दश मारक होता है, पर क्रोध का दश और अधिक तीव्रता से मारने वाला होता है। क्रोध ऐसी ज्वाला है, जो दूसरे को जलाती है और उसे भी जलाती है, जो उसका आश्रयदाता है। क्रोध का उन्माद व्यक्ति को पागल बना देता है। क्रोधी व्यक्ति का विवेक समाप्त हो जाता है और शक्ति क्षीण हो जाती है। इसी दृष्टि से भगवान महावीर ने क्षमा को धर्म का पहला दरवाजा बताया है।

धर्म का दूसरा द्वार है निर्लोभता। लोभ की चेतना आसक्ति को बढाती है। आसक्त व्यक्ति अपने हित-अहित का चिन्तन किए बिना अर्थ-प्राप्ति की अधी दौड मे भाग लेता है। दौडते दौडते वह इतना थक जाता है कि उसमे कुछ विशिष्ट काम करने का उत्साह ही पैदा नही होता।

सरलता धर्म का तीसरा द्वार है। इस द्वार मे उसी का प्रवेश हो सकता है, जो छलकपट से दूर रहकर सहज जीवन जीता है, भीतर और बाहर से एकरूप रहता है।

चौथा द्वार है मृदुता। जिस व्यक्ति के जीवन मे धम का स्पर्श हो जाता है, वह किसी के प्रति कठोर व्यवहार नही कर सकता। उसके स्वभाव मे इतना लचीलापन रहता है कि वह किसी भी स्थिति मे झुक सकता है।

क्षमा, निर्लोभता, सरलता और मदुता—ये चार एसे तत्त्व हैं, जो व्यक्ति की जीवनी शक्ति को बढाते हैं। जो लोग अपने आपको धार्मिक मानते हैं, उन्हे इन कसौटियो पर स्वय को परखना चाहिए। यदि इन तत्त्वो का जीवन मे थोडा भी विकास नही है और इन्हे विकसित करने

का लक्ष्य भी नही, उन लोगो की धार्मिकता के आगे प्रश्नचिह्न लग जाता है। धर्म के इन चार द्वारो मे प्रवेश करके ही व्यक्ति धार्मिक बन सकता है और धार्मिक जीवन के आनन्द का अनुभव कर सकता है।

सबसे सुन्दर फूल

यह ससार एक वाटिका है। मनुष्य इस वाटिका के पेड पौध है। इन पौधा का सबसे सुन्दर फूल होता है 'बालक'। रग-विरगे फूल मन को मोह लेते है। इसी प्रकार बालक भी सबका मन मोह लेता है। उसका हसना, रोना, रूठना, तुतलाकर बोलना, ठुमक ठुमक कर चलना सब कुछ अच्छा लगता है। बालक का जन्म इसीलिए नही होता कि वह सबका मन मोहता रहे। वह परिवार की रीढ होता है और राष्ट्र का भविष्य होता है। उसे स्वस्थ रखना और उसे सवारना सबसे ज्यादा जरूरी है।

बालक के जीवन को सवारने के लिए उसे शुरु से ही अच्छे सस्कार देने की अपेक्षा है। ये सस्कार उसे अपनी मा से मिलते हैं, साथियो से मिलते हैं, सहपाठियो से मिलते हैं शिक्षको से मिलते हैं और पारिवारिक वातावरण से मिलते हैं। हर मा का यह सपना होता है कि उसका बच्चा अच्छा बने। बच्चे मे अच्छा बनने की सभावनाए भी होती है। वे सभावनाए उजागर होती है उसके पालन-पोषण से। प्रतिभाशील बच्चे का भी पालन ढग से न हो तो उसकी प्रतिभा कुठित हो जाती है। अच्छे वातावरण मे लालन-पालन हो तो साधारण बच्चा भी शिखर तक पहुच सकता है।

बच्चे की हर क्रिया पर सूक्ष्मता से ध्यान देना चाहिए। वह क्या चाहता है? क्यो चाहता है? उसका झुकाव किस ओर है? उसकी रुचि किसमे है—खेलकूद मे है या पढने मे है? वह किसी का कहना मानता है या नही? किसी भी काम के लिए बडो द्वारा टोके जाने पर वह क्या करता है? अपने बारे मे वह स्वय ही सोचता है या बडो की सलाह लेता है? उसका व्यवहार कैसा है? वह कुछ रचनात्मक काम करना

का लक्ष्य भी नही, उन लोगो की धार्मिकता के आगे प्रश्नचिह्न लग जाता है। धर्म के इन चार द्वारो मे प्रवेश करके ही व्यक्ति धार्मिक बन सकता है और धार्मिक जीवन के आनन्द का अनुभव कर सकता है।

सबसे सुन्दर फूल

यह ससार एक वाटिका है। मनुष्य इस वाटिका के पेड पौधे है। इन पौधो का सबसे सुन्दर फूल होता है 'बालक'। रग-विरगे फूल मन को मोह लेते हैं। इसी प्रकार बालक भी सबका मन मोह लेता है। उसका हसना, रोना, रूठना, तुतलाकर बोलना, ठुमक ठुमक कर चलना सब कुछ अच्छा लगता है। बालक का जन्म इसीलिए नही होता कि वह सबका मन मोहता रहे। वह परिवार की रीढ होता है और राष्ट्र का भविष्य होता है। उसे स्वस्थ रखना और उसे सवारना सबसे ज्यादा जरूरी है।

बालक के जीवन को सवारने के लिए उसे शुरू से ही अच्छे सस्कार देने की अपेक्षा है। ये सस्कार उसे अपनी मा से मिलते हैं, साथियो से मिलते हैं, सहपाठियो से मिलते हैं शिक्षको से मिलते हैं और पारिवारिक वातावरण से मिलते हैं। हर मा का यह सपना होता है कि उसका बच्चा अच्छा बने। बच्चे मे अच्छा बनने की सभावनाए भी होती है। वे सभावनाए उजागर होती है उसके पालन पोषण से। प्रतिभाशील बच्चे का भी पालन ढग से न हो तो उसकी प्रतिभा कुठित हो जाती है। अच्छे वातावरण मे लालन-पालन हो तो साधारण बच्चा भी शिखर तक पहुच सकता है।

बच्चे की हर क्रिया पर सूक्ष्मता से ध्यान देना चाहिए। वह क्या चाहता है? क्यो चाहता है? उसका झुकाव किस ओर है? उसकी रुचि किसमे है—खेलकूद मे है या पढने मे है? वह किसी का कहना मानता है या नही? किसी भी काम के लिए बडो द्वारा टोके जाने पर वह क्या करता है? अपने बारे मे वह स्वय ही सोचता है या बडो की सलाह लेता है? उसका व्यवहार कैसा है? वह कुछ रचनात्मक काम करना

चाहता है या ध्वस मे रुचि रखता है ? वह अपने हम उम्र बच्चो के साथ खेलता है या बडो के बीच मे जाने की कोशिश करता है ? इन सब प्रश्नो का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाए और बच्चे को सही दिशा मे मोडा जाए तो उसकी स्वस्थ मानसिकता का विकास हो सकता है।

प्रभाव वातावरण का

बालक के निर्माण मे स्कूल का बहुत बडा हाथ होता है। जब से बच्चा स्कूल जाने लगता है, उसके माता पिता एक सीमा तक जिम्मेवारी से मुक्त हो जाते हैं। स्कूल काल मे वे पूरी तरह से शिक्षको पर निर्भर होते हैं। शिक्षक उन्हे केवल पुस्तक ही नही पढाते, जीवन की समग्र शिक्षा देना चाहते हैं। जिन शिक्षको मे ऐसी चाह होती है, वे बच्चो की प्रत्येक गतिविधि के प्रति सजग रहते हैं। वे अपने स्कूल का वातवरण भी ऐसा रखना चाहते हैं, जिससे बच्चो को प्रेरणा मिल सके। स्कूल मे प्रवेश करते ही बच्चे अपने लक्ष्य के प्रति सजग हो जाए, इस दृष्टि से अध्ययनकक्षो की दीवारो पर कुछ वाक्य भी अकित रहते हैं। बच्चे कक्षा मे प्रवेश करें, उससे पहले एक क्षण रुककर उन वाक्यो को पढे और सोचें—

- अध्ययन के प्रति रुचि है या नही ?
- अध्ययन का लक्ष्य क्या है ?
- अध्यापक के प्रति सम्मान के भाव हैं या नही ?
- क्या आप प्रसन्नचित्त हैं ?
- क्या आपने कल का काम कर लिया है ?
- भावी राष्ट्र आपकी प्रतीक्षा मे है। क्या उसके अनुरूप जीवन बनाने का लक्ष्य है ?
- क्या आप अपने राष्ट्र के सपूर्ण नागरिक बनने के लिए कटिबद्ध हैं ?

इस प्रकार के वाक्य पढने से बच्चो के कोमल मस्तिष्क पर सहज ही एक प्रभाव पडता है। ऐसा प्रभाव जो मिटाने पर भी नही मिट सकता।

मुक्ति का मार्ग

एक अनुभवी सन्त के पास कुछ बच्चे गए। बच्चो ने हाथ जोडे, सन्त के चरणो मे प्रणाम किया और कुछ पूछने की मुद्रा मे खडे हो गए। सन्त ने पूछा—क्यो आए हो बच्चो ! एक बच्चा पूरी शालीनता के साथ बोला—गुरुदेव ! हम कुछ पूछने आए हैं। क्या आप हमे बताएगे कि मुक्ति का मार्ग क्या है ?

सन्त होले से मुस्कराए और बोले—मुक्ति का मार्ग जानना चाहते हो ? ठहरो, पहले एक काम करो। फिर तुम्हें अपने प्रश्न का उत्तर मिलेगा। तुम सब कब्रिस्तान मे जाओ। वहा जो लोग कब्रो मे सोए हैं, उन्हे गालिया दो और उन पर पत्थर मारो।

बच्चे सन्त का आदेश सुन हैरान हो गए। कुछ कहने की उनमे हिम्मत नही थी। वे उठे, कब्रिस्तान मे गए। वहा उन्होने पत्थर फेंके, गालिया दी और लौट आए।

सन्त ने बच्चो से कहा—एक बार तुम फिर से कब्रिस्तान जाओ। इस बार अपने साथ फूल लेकर जाना। कब्र मे सोए हुए लोगो पर फूल बरसाओ और उनको जी भरकर प्रशसा करो।

बच्चो की समझ मे कुछ भी नही आ रहा था। फिर भी उन्हे गुरु के आदेश का पालन करना था। वे गए। उन्होने कब्रो पर फूल चढाए, प्रशसा की और लौट आए।

सन्त ने अपने रहस्यमय आदेशो का भेद खोलने के लिए पूछा—बच्चो ! तुमने कब्रो पर पत्थर मारे, गालिया दी, क्या उनकी ओर से कोई उत्तर मिला ? बच्चो ने कहा—गुरुदेव ! वहा हमको किसी ने कुछ भी नही कहा।

सन्त ने फिर पूछा—तुम दूसरी बार वहा गए। तुमने कब्रो पर फूल

चढाए। उनकी प्रशसा की। क्या उनमें से कोई बोला नही ? गुरुदेव ! वे सब जिन्दा नही थे। वे कैसे बोल सकते थे? बच्चो ने उत्तर दिया।

सन्त ने उनको बोधपाठ देते हुए कहा—बच्चो ! यही है मुक्ति का मार्ग। जो व्यक्ति गाली देने पर और प्रशसा करने पर एक समान रह सकता है। जो पत्थर बरसाने पर और फूल बरसाने पर एक समान रह सकता है। गाली देने वाले और पत्थर बरसाने वाले पर गुस्सा नही करता तथा प्रशसा करने वाले और फूल बरसाने वाले पर खुश नही होता, वह मुक्ति का मार्ग पा लेता है। तुम जानना चाहोगे, वह कौन-सा मार्ग है ? वह मार्ग है समता। तुम सब समता का अभ्यास करो। मुक्ति का मार्ग तुम्हारे सामने है।

झूठ का दुष्परिणाम

व्यक्ति को महान् बनाने वाले अनेक गुण हैं। उनमे सबसे बडा गुण है सत्य बोलना। सत्यवादी व्यक्ति का मन और वचन एक होता है। वह कभी गलती करके छिपाता नही है। वह सबका विश्वासपात्र बन जाता है। कभी भूल से उसके मुह से गलत बात भी निकल जाए तो कोई प्रश्न पैदा नही होता। इसके विपरीत झूठ बोलने वाला सबका विश्वास खो देता है। समय पर वह सत्य भी बोलेगा तो उसमे झूठ की गन्ध आएगी।

एक बालक गडरिया अपनी भेड व बकरियो को चराने जगल मे जाता था। एक दिन उसे मजाक सूझी। वह जोर से चिल्लाने लगा—भेडिया आ गया, भेडिया आ गया। आसपास के खेतो मे काम करने वाले किसान दौडकर आए। वहा न कोई भेडिया था, न कोई दूसरा जगली जानवर। गडरिया अपनी भेडो के पास खडा हस रहा था। किसान उसे भोला बालक समझ लौट गए।

कुछ दिन बीते। गडरिए ने वैसे ही चिल्लाना शुरू कर दिया। कुछ क्षणो तक वहा कोई नही आया। गडरिया रोने लगा। रोने की आवाज सुन किसान दौडकर आए। उनके आने पर वह वैसे ही हसता हुआ बोला—मैंने तो ट्रिक खेला था।

दिन बीते, महीने बीते। एक दिन वहा वास्तव मे ही भेडिया आ गया। वह भेडो पर झपटा। गडरिया चीखा। आसपास के खेतो मे काम करने वाले किसानो ने उसकी चीख सुनी। पर उन्होने सुना-अनसुना कर दिया। क्योकि वह पहले भी इस प्रकार कर चुका था।

किसान नही आए। गडरिया चिल्लाता रहा। जब बहुत देर तक उसका चिल्लाना बन्द नही हुआ तो किसान हाथो मे लाठिया लेकर

वहा आए। उन्होने देखा—गडरिया एक ओर खडा-खडा रो रहा है। दूसरी ओर भेडिया उसकी तीन-चार भेडो को मारकर खा रहा है। उन्होने प्रयत्न किया और भेडिए को वहा से भगाया।

गडरिया रोता-रोता बोला—मैंने आपको कितना पुकारा ? आप आए नही। मेरी भेडें मर गईं। किसानो ने कहा—हम क्या करें ? तुमने झूठ बोलकर अपना विश्वास खो दिया। हमने सोचा, यह यो ही चीखता है। गडरिये को अपनी भूल का भान हो गया। अगर वह हसी मजाक मे झूठ नही बोलता तो अपनी भेडो को नही खोता।

जो बच्चे महान बनना चाहते हैं, अपने जीवन में बडा काम करना चाहते हैं, उनको सबसे पहले यह पाठ पढना चाहिए कि वे अपने जीवन में कभी झूठ नही बोलेंगे।

परीक्षण योग्यता का

राजा प्रसेनजित के सौ पुत्र थे। वह उनकी योग्यता का परीक्षण करना चाहता था। उसने सौ थालियो मे भोजन परोसा और उन्हे भोजन के कमरे मे रखवा दिया। सब राजकुमार कमरे मे आए और भोजन करने बैठ गए। भोजन शुरू करने की घण्टी बजी। उसके साथ ही शिकारी कुत्ते छोड दिए गए। कुत्ते थालियो पर झपटे। निन्नानवे राजकुमार उनके भय से खाने की थालिया छोडकर भाग गए। सबसे छोटा राजकुमार वही जमकर बैठा रहा। उसने आसपास की थालिया अपने पास सरका ली। कुत्ते उसके पास आते तो वह उन थालियो से थोडा-थोडा भोजन लेकर उनके सामने फेंक देता। वे उतना खाते तब तक वह दो चार ग्रास स्वय ले लेता। इस प्रकार उसने भर पेट भोजन कर लिया।

भोजन के लिए जितना समय रखा गया था, उसके पूरा होने पर राजा ने सब राजकुमारो को बुलाया। राजकुमार आए। राजा ने पूछा—तुम लोगों ने भोजन कर लिया? निन्नानवे राजकुमार एक साथ बोल उठे—हम भोजन कैसे करते? थाली पर बठते ही तो वहा किसी ने कुत्ते छोड दिए। वे शिकारी कुत्ते हमे भोजन करने देते! हम सब भूखे हैं।

छोटा राजकुमार खडा होकर बोला—पिताजी! सब भूखे नही हैं। मैं भोजन करके आया हू। राजा ने पूछा—तुमने भोजन कैसे कर लिया? क्या तेरे पास कुत्ते नही आए? राजकुमार ने कुत्तो के आने और दूर हटाने की सारी बात बता दी। राजा राजकुमार के बुद्धि-कौशल से बहुत खुश हुआ। उसने सबसे छोटे पुत्र को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

जो व्यक्ति बाट-बाट कर खाना जानता है, वह कभी भूखा नही रहता । जो अकेला ही खाना चाहता है, उसकी ओर सब झपट्टा मारते हैं। बाट बाट कर खाना और मोक्ष जाना, यह कहावत भी इसी बात की ओर सकेत करती है। जो बटवारा करके नही खाता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति नही होती, यह बात जैन शास्त्रो मे भी बताई गई है। जो बच्चे आपस मे मिल-बाटकर खाते हैं, उनमे कभी झगडा नही होता और वे छोटे राजकुमार की तरह परीक्षा मे पास हो जाते हैं।

जब आए सन्तोष धन

एक भिखारी पीठ पर झोला लादे जा रहा था। उसने मन ही मन सोचा—मेरी कोई बडी इच्छा नही है। खाने के लिए भोजन मिल जाए और पहनने के लिए कपडे मिल जाए। बस, और कुछ नही चाहिए। सौभाग्य से एक देवी प्रकट हुई। वह उसकी दशा देखकर बोली—तुझे क्या चाहिए? उसने झट से अपनी सोची हुई बात बता दी। देवी ने कहा—मैं तुझे इतना सोना दूगी, जिससे जीवन भर भोजन और कपडे मिलते रहेंगे। तुम अपने झोले का मुह खोलो। झोले के भीतर जो गिरेगा, वह सोने का सिक्का होगा। पर नीचे गिरते ही मिट्टी हो जाएगा।

यह बात सुन भिखारी बहुत खुश हुआ। उसने अपने झोले का मुह खोल दिया। देवी उसमे सिक्के गिराने लगी। उसे जरूरत से अधिक सिक्के मिल गए। फिर भी उसने झोले का मुह बन्द नही किया। देवी ने कहा—अब तेरे पास काफी सिक्के हो गए। अब मैं बस करू? भिखारी बोला—नही मा! थोडे और दो।

देवी ने दो-तीन बार उसे सजग किया कि उसका झोला कमजोर है, वह अधिक भार सहन नही कर सकेगा। पर भिखारी का मन नही भरा। उसने कहा—मा, बस थोडे से और। देवी ने कुछ सिक्के और गिराए कि नीचे से झोला फट गया। सब सिक्के मिट्टी मे गिरे और मिट्टी हो गए। भिखारी को जब तक पता चला, देवी जा चुकी थी। उसे अपने लोभ का फल मिल गया।

जो लोग मेहनत करते हैं, उन्हे बहुत कुछ मिल सकता है। जिन लोगो का भाग्य अच्छा होता है, उन्हें भी मनचाहा मिल जाता है। पर जिनके मन मे सन्तोष नही होता, उन्हें कुछ भी नही मिलता। यदि

भिखारी की तरह मिल जाए तो उसके पास टिक नहीं पाता और टिक भी जाए तो वे उसका ठीक-ठीक उपयोग नहीं कर सकते। जो लोग सन्तोष करना जानते है, उनके लिए रुपए पैसे की कोई कीमत नहीं है। इसी बात को एक कवि ने लिखा है—

गो धन गज धन वाजि धन और रतन धन खान।
जब आवे सन्तोष धन सब धन धूरि समान॥

पूजा पुरुषार्थ की

एक विद्यार्थी पढता था। पढने मे वह तेज था। उसकी बुद्धि अच्छी थी और वह मेहनत भी पूरी करता था। वह अपनी कक्षा मे हमेशा प्रथम रहता था। उसकी मेहनत देखकर विद्या की देवी सरस्वती खुश हुई। वह एक दिन विद्यार्थी के पास आकर खडी हो गई। विद्यार्थी दीए के प्रकाश मे पढ रहा था। उसने इधर-उधर आख उठाकर भी नही देखा। बालक की एकाग्रता पर देवी को बडा आश्चर्य हुआ। देवी बोली—बच्चे! देखो। तेरे सामने कौन है? विद्यार्थी ने आखें ऊची उठाई। सामने खडी ममतामयी महिला को उसने देखा, प्रणाम किया और पुन पढने लग गया।

देवी बच्चे की तल्लीनता देखकर मुग्ध हो गई। वह उसके साथ बात करना चाहती थी। उसने पूछा—वत्स! तेरे सामने कौन है? तू मुझे जानता है? बालक खडा हुआ और विनम्र भाव से बोला—मा! मैं नही जानता। देवी ने कहा—वत्स! मैं विद्या की देवी सरस्वती हू। तेरी मेहनत देखकर मैं बहुत प्रसन्न हू। मैं तुझे कुछ देना चाहती हू। बोल, क्या लेगा? विद्यार्थी बोला—मा! आपने बडी कृपा की। मुझे दर्शन दिए। मुझे अभी किसी चीज की जरूरत नही है।

छोटे बच्चो के मन मे मिठाई, खिलौनो आदि का बहुत आकर्पण होता है। पर वह विद्यार्थी इन सबमे रस नही ले रहा था। देवी ने उससे कहा—तू कोई वरदान माग ले। विद्यार्थी ने सोचा—मेरी मा ने मुझे मेहनत करना सिखाया है, फिर मैं भिखारी क्यो बनू? वह कुछ बोला नही। देवी बोली—तू चाहे तो मैं तुझे बिना पढे ही पास कर दूगी। विद्यार्थी इस बात के लिए भी तैयार नही हुआ। आखिर देवी बोली—वत्स! मैं कुछ दिए बिना लौटती नही। तुझे कुछ तो मागना

ही होगा। विद्यार्थी का मन मागने के लिए राजी नहीं था। फिर भी देवी का इतना आग्रह देखकर वह बोला—अच्छा मा ! एक काम करो, आप मुझे कुछ देना ही चाहती हैं तो मेरे इस दीए मे थोडा-सा तेल डाल दें। ताकि दीया बुझे नही और मेरी पढाई मे विघ्न न हो।

देवी विद्यार्थी की इस विवेकपूर्ण माग को सुनकर उसके प्रति अधिक दयालु हो उठी। वह उसे बहुत कुछ देना चाहती थी। किन्तु विद्यार्थी कुछ भी लेने के लिए तैयार नही था। आखिर देवी दीए में तेल भरकर चली गई और विद्यार्थी पढता रहा। जो विद्यार्थी इतनी लगन के साथ मेहनत करते हैं, वे ही राष्ट्र के निर्माण मे अपना योगदान दे सकते हैं। आलसी और मुफ्तखोर विद्यार्थी कभी अपने देश को ऊचा नही उठा सकते।

वसुधैव कुटुम्बकम्

राष्ट्रीय एकता एक अच्छा माध्यम है, बुराइयो से बचने और अच्छाइयों को विकसित करने का। ईर्ष्या, द्वेष, निहित स्वार्थ, जातीय और साम्प्रदायिक घृणा—ये या इस प्रकार के जो अन्य दुर्गुण है, ये सब हिंसा के रूप हैं। राष्ट्रीय एकता को सबसे बड़ा खतरा हिंसा से है। जैसे-जैसे हिंसा बढती है, वैसे वैसे राष्ट्रीय एकता की नीव कमजोर होती चली जाती है। राजनीतिक महत्त्वाकाक्षा ने अलगाववाद को प्रोत्साहन दिया। साम्प्रदायिकता के आधार पर भी अलगाववाद सिर उठाता रहा। यदि राष्ट्रप्रेम विकसित हो तो जातीयता, साम्प्रदायिकता और राजनीतिक महत्त्वाकाक्षा—ये सब दूसरे नम्बर पर आ जाते हैं। फिर राष्ट्र के विघटन का खतरा नहीं रहता।

यह खेद का विषय है कि आज हिन्दुस्तान मे जातीयता, साम्प्रदायिकता और राजनीतिक महत्त्वाकाक्षा प्रथम नम्बर पर है और राष्ट्रप्रेम दूसरे, तीसरे, चौथे, या किसी नम्बर पर हैं अथवा नहीं, यह भी पता नही है। कुछ राष्ट्र अनैतिकता से एक सीमा तक बचे हुए हैं। उसका हेतु पारलौकिक चिन्तन या आध्यात्मिक विकास नही, किन्तु राष्ट्रप्रेम है। व्यक्ति का अपने परिवार के प्रति प्रेम होता है तो वह उसके साथ विश्वासघात नही करता। यदि वैसा ही प्रेम राष्ट्र के प्रति हो जाए तो वह राष्ट्र के साथ विश्वासघात कैसे करेगा?

मानवीय एकता मे हमारा विश्वास है। हम 'वसुधैव कुटुम्बकम्' इस आदर्श वाक्य को कभी उपेक्षित करना नही चाहते। किन्तु राष्ट्रीय एकता का जो प्रायोगिक मूल्य है, उसकी उपेक्षा भी नही की जा सकती। इसकी उपेक्षा हुई है। इससे हिंसा को प्रोत्साहन ही मिला है। नैतिक विकास, चारित्रिक विकास, पारस्परिक सौहार्द, संगठन, अनु-

शासन—इन सब दृष्टियो से राष्ट्रीय एकता को ज्योति स्तम्भ बनाया जा सकता है। उसकी प्रकाश रश्मियो से युवा मानस अपना पथ देख सकता है।

राष्ट्रीय एकता को पुष्ट करने का दायित्व सबका है। पर इसका बडा हिस्सा मैं युवा पीढी के कधो पर देखना चाहता हू। 'अखिल भारतीय तेरापथ युवक परिषद्' ने मेरी इस चाह को पकडा है और 'राष्ट्रीय एकता रैली' का आयोजन कर युवको मे भावना जगाने और वातावरण बनाने का काम किया है। मैं देश की युवा पीढी को आह्वान करता हू कि वह स्थिति की गम्भीरता को समझे, प्रवृत्ति के परिणामो पर विचार करे और प्रेम, मैत्री, समता, सद्भावना, सहिष्णुता आदि मूल्यो को विकसित करे। ऐसा करके ही वह राष्ट्रीय एकता की प्रतिमा को खण्डित करने वाली मानसिकता एव प्रवृत्तियो का सशक्त प्रतिरोध कर सकती है।

महामारी चरित्रहीनता की

देश मे कोई महामारी फैलती है तो सब राज्य सरकारे हिल उठती है। उसके निराकरण के लिए व्यापक तैयारियाँ की जाती हैं। चिकित्सको को उस समय युद्धस्तर पर काम करना होता है। आज इस देश मे ही नही, पूरे विश्व मे एक महामारी का प्रकोप है। समग्र मानव जाति उससे ग्रस्त है। फिर भी ऐसा लगता है मानो इस विषय मे किसी को चिन्ता नही है। वह महामारी है"चरित्रहीनता" दूसरे शब्दो मे उसे मानवीय मूल्यो की उपेक्षा भी कहा जा सकता है। हमारे देश मे अणुव्रत आन्दोलन एक ऐसा अभियान है, जो इस महामारी की चिकित्सा करने के लिए सकल्पित है।

कोई भी चिकित्सा पद्धति हो, उसमे योग्य चिकित्सको की नितान्त अपेक्षा रहती है। इस बीमारी की चिकित्सा के लिए शिक्षक चिकित्सक का दायित्व निभाए तो बहुत काम हो सकता है। इस दृष्टि से पहली बार अखिल भारतीय स्तर पर शिक्षक-समद की परिकल्पना की गई है। उसका प्रथम अधिवेशन विद्याभूमि राणावास मे हो रहा है। शिक्षको ने इसके लिए अच्छा उत्साह दिखाया है। उनके सकारात्मक रुख को देखकर कुछ नई सभावनाए की जा सकती हैं। इनके तीन कारण है—

- शिक्षक वर्ग प्रबुद्ध होता है। वह स्थिति की गभीरता को समझता है। उसके थोडे से सुनियोजित प्रयास से बहुत काम हो सकता है।
- शिक्षक गुरु-स्थानीय होते हैं। देश की भावी पीढी का भविष्य उनके हाथ मे होता है। विद्यार्थियो को प्रारम्भ से ही नैतिक सस्कारो मे ढाल दिया जाए तो देश को उज्ज्वल भविष्य देने

वाली पीढी आगे आ सकती है।

- शिक्षको मे चरित्रनिष्ठा का विकास देश के लिए ठोस उपलब्धि हो सकती है।

कोई भी काम हो, उसके लिए पुरुषार्थ तो करना ही होगा। शिक्षक इस त्रिदिवसीय आयोजना मे पूरे मन से जुडे और चरित्र-हीनता की महामारी के उपचार मे हार्दिक भाव से अपनी सेवाए अर्पित करे, यह उनके दायित्व की प्रेरणा है।

लेखक की प्रमुख कृतियाँ

- भानुयशाविलास
- डालिम चरित्र
- मगन चरित्र
- माणक महिमा
- चन्दन की चुटकी भली
- नन्दन निकुंज
- सोमरस
- भरतमुक्ति
- पानी में मीन पियासी
- अणुव्रत गीत
- अणुव्रत के आलोक में
- अनतिकता की धूप अणुव्रत की छतरी
- अणुव्रत गति प्रगति
- क्या धर्म बुद्धिगम्य है
- अणुव्रत के सन्दर्भ में
- विचार दीर्घा
- मनोनुशासनम्
- मुक्तिपथ
- विचारवीथी
- समता की आंख चरित्र की पांख
- जैन सिद्धान्त दीपिका
- प्रेक्षा-अनुप्रेक्षा

आदि